ऋषि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार और विज्ञापन

[प्रथम भाग]

[पूर्ण संख्या १] पत्र-सूचना

[श्रीमद् गुरुवर्य स्वामी विरजानन्द सरस्वती, मथुरा]
शङ्कासमाधानार्थं ।[1]
आगरा[2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या २] पत्र-सूचना

[श्रीमद् गुरुवर्य स्वामी विरजानन्द सरस्वती, मथुरा]
शङ्कासमाधानार्थं ।[3]
ग्वालियर[4]

—:o:—

---

१. ऋ० द० ने स्वलिखित आत्मचरित में आगरा से शङ्कासमाधानार्थं अनेक पत्र लिखने का उल्लेख किया है (यहां हमने निर्देशार्थ एक पत्र-सूचना छापी है) द्र०—'दयानन्द लघुग्रन्थ-संग्रह' में मुद्रित 'आत्मचरित' पृष्ठ ३४।

२. आगरा में वैशाख संवत् १९२० से आश्विन १९२१ तक तदनुसार अप्रेल-मई सन् १८६३ से सितम्बर-अक्टूबर १८६४ तक रहे थे।

३. ऋ० द० ने आत्मचरित में ग्वालियर से अनेक पत्र लिखने का संकेत किया है (यहां एक पत्र-सूचना छापी है) द्र०—वही, आत्मचरित पृष्ठ ३४।

४. ग्वालियर में माघ कृष्णा १२, संवत् १९२१ से वैशाख शुक्ला १२, १३ संवत् १९२२ (२५ जनवरी से ७-८ मई १८६५) तक रहे थे।

[पूर्ण संख्या ३] विज्ञापन-सूचना

शास्त्रार्थ के लिये (ग्वालियर)।[1]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ४] उत्तर-पत्र-सूचना

[स्वामी गोपालानन्द परमहंस, जयपुर][2]
प्रश्न का उत्तर।[3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५] प्रश्न-पत्र-सूचना

संस्कृत पाठशाला जयपुर के पण्डितों को प्रश्न लिख कर भेजे।[4]
[इनमें निम्न दो प्रश्न थे—]
१—कल्म चाक्कि भवति ?
२—येन कर्मणा सर्वे धातवः सकर्मका भवन्ति किं तत्कर्म ?

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६] उत्तर-प्रश्न-पत्र-सूचना

[जती जी, जैन साधु, जयपुर]
जती जी के आठ प्रश्नों का उत्तर तथा जैन मत पर आठ प्रश्न।[5]

—:o:—

---

१. इसका निर्देश पं० लेखराम कृत जीवनचरित, हिन्दी सं० पृष्ठ ५४ पर मिलता है।

२. जयपुर कार्तिक १९२२ से चैत्र कृष्णा ५, १९२२ (अक्टूबर नवम्बर सन् १८६५ से ६ मार्च १८६६) तक रहे थे।

३. इसका निर्देश पं० देवेन्द्र नाथ संकलित जीवनचरित पृष्ठ ७८ में मिलता है।

४. इसकी सूचना पं० लेखराम कृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ५५ में मिलती है।

५. इसकी सूचना पं० लेखराम कृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ५७ में मिलती है।

[पूर्ण संख्या ७] तत्त्व-बोध पर्चे की सूचना

[ठाकुर साहब (रणजीत सिंह) अचरोल (जयपुर)]
तत्त्व-बोध का पर्चा (दो पृष्ठ का) ।[1]
जयपुर

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८] पत्र-सारांश

'यदि कोई रामानुज सम्प्रदायवाला हम से शास्त्रार्थ करना चाहे तो यहां आजावे, अन्यथा हम गोघाट पर चलते हैं। [पुष्कर, सं० १९२२, ज्येष्ठ, मई-जून[2] १८६५ ई०।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ९] पत्र-सारांश

[अचरोल के ठाकुर साहब के नाम]
'हमारा विचार अब आगे को जाने का है।
[पुष्कर, सं० १९२२, ज्येष्ठ, मई-जून १८६५][3]

—:०:—

[पूर्ण संख्या १०] विज्ञापन-सारांश

जिस किसी को मूर्तिपूजा आदि पर सन्देह हो, वह हम से आकर शास्त्रार्थ कर ले।[4]

[अजमेर][5]

—:०:—

१. इस पर्चे की सूचना पं० लेखराम कृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ५८ पर मिलती है।

२. यह पत्र पं० रामघन दशमाली पण्डा पुष्कर निवासी को लिखकर दिया था। द्र०—पं० लेखरामजी कृत जीवनचरित,हिन्दी अनुवाद, पृ० ६१।

३. स्वामीजी ने एक पत्र उनको (=अचरोल के ठाकुर साहब को) लिखा। द्र०—पं० लेखरामजी कृत जीवनचरित, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ६३।

४. यह विज्ञापन सारांश पं० लेखराम कृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ६४ पर मिलता है।

५. ज्येष्ठ (द्वितीय) सं० १९२३ (मई-जून १८६६) में द्वितीय बार

[पूर्ण संख्या ११] उत्तर-पत्र-सूचना

[पं० रामरतन (रामसर) अजमेर][1]
सम्भवतः दस प्रश्नों के उत्तर[2]
[उनमें से एक प्रश्न का उत्तर—]

यद्यपि संन्यासी को एक स्थान पर तीन दिन से अधिक नहीं रहना चाहिये, परन्तु जहां अंधकार फैल रहा हो वहां उपदेश के लिए अधिक रहना भी उचित है।

—:०:—

[पूर्ण संख्या १२] पत्र-सूचना

[रामसनेहियों के महन्त, अजमेर]
रामसनेहियों के मत के खण्डन विषयक पत्र[3]

—:०:—

[पूर्ण संख्या १३] भागवत-अशुद्धिपत्र-सूचना

[पण्डितवर्ग, अजमेर]
तीन चार पत्रों में भागवत की अशुद्धियों का निर्देश।[4]

—:०:—

[पूर्ण संख्या १४] पत्र-सूचना

[ठाकुर रणजीतसिंह, अचरोल (जयपुर)][5]

अजमेर आये थे। तब का वर्णन है।

१. पण्डित लेखरामजी कृत जीवनचरित हिन्दी संस्करण, पृष्ठ ६६ पर इनका निर्देश है।

२. इस उत्तर-पत्र की सूचना पं० लेखराम कृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ६६ पर मिलती है।

३. इस पत्र-सूचना का निर्देश पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जी० च० पृष्ठ ६२ में मिलता है।

४. इसकी सूचना पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जी० च० पृष्ठ ६४ में है।

५. पं० लेखरामकृत जीवनचरित में पृष्ठ ७५ पर लिखा है कि स्वामी जी ने हरिद्वार पहुँचकर एक चिट्ठी ठाकुर रणजीतसिंह अचरोल के नाम भेजी। इस की सूचना पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित में भी है।

हरिद्वार से (संवत् १९२४, सन् १८६७ ई०)

—:o:—

[पूर्ण संख्या १५] सामान भेजने की सूचना

[गुरुवर्य स्वामी विरजानन्दजी सरस्वती, मथुरा]

पण्डित दयाराम के हाथ एक पुस्तक महाभाष्य और पैंतीस रुपया रोकड़ा और एक थान मलमल भेजा।[1]

—:o:—

[पूर्ण संख्या १६] पत्र-सूचना

[अङ्गद शास्त्री पीलीभीत वाले को][2]

[कर्णवास, सं० १९२५ ज्येष्ठ से कार्तिक, सन् १८६८, मई से अक्टूबर][3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या १७] पत्र-सूचना

[अङ्गद शास्त्री, पीलभीत]

उत्तर में लम्बा पत्र।[4]

[कर्णवास सं० १९२५ ज्येष्ठ से कार्तिक तक]

—:o:—

[पूर्ण संख्या १८] पत्र-सारांश

[चिदानन्द साधु, सोरों]

तुम मेरे समीप आओ वा मुझे अपने पास बुलाओ और

---

१. हरिद्वार से उक्त सामान भेजने की सूचना पंडित लेखरामजी कृत जीवनचरित हिन्दी संस्करण पृष्ठ ७५ में मिलती है।

२. द्र० — पं० लेखराम कृत जीवनचरित, पृष्ठ ९४। तथा पं० देवेन्द्रनाथ कृत जीवनचरित, पृष्ठ ११२।

३. यहां (कर्णवास) स्वामीजी पांच मास रहे थे। पं० लेखरामजी कृत जीवनचरित, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ८४।

४. इसकी सूचना पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित पृष्ठ ११५ में है।

शास्त्रार्थ कर लो।[1]

—:०:—

[पूर्ण संख्या १९] पत्र-सूचना

[अङ्गद शास्त्री पीलीभीत वाले, अम्बागढ़]

पत्र का उत्तर।[2]

—:०:—

[पूर्ण संख्या २०] उत्तर-पत्र-सूचना

[पं० जगन्नाथ बरेली वाले, अम्बागढ़]

प्रश्न के उत्तर में।[3]

—:०:—

[पूर्ण संख्या २१] पत्र-सूचना

[पं० गङ्गादत्त (कन्नौज) के नाम]

[4]शुद्ध गायत्री का उपदेश करने के विषय में।

[कन्नौज, सं० १९२६, आषाढ़, सन् १८६९]

—:०:—

[पूर्ण संख्या २२] विज्ञापन-पत्रम्[5]

श्रीरस्तु॥ ऋग्वेदः १, यजुर्वेदः २, सामवेदः ३, अथर्ववेदः ४।

---

१. इस पत्र की सूचना प० देवेन्द्रनाथ संकलित जी० च० पृ० १२० में है।

२. इस पत्र की सूचना प० देवेन्द्रनाथ स० जी० च० पृ० १२२ में है।

३. इस पत्र की सूचना प० देवेन्द्रनाथ स० जी० च० पृ० १२२ में है।

४. मुझको सिफारिशी पत्र लिख देना है। द्र०—पं० लेखरामजी कृत जीवनचरित, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ९३।

५. पं० लेखराम कृत उर्दू जीवनचरित्र पृ० ५९७-५९८ (हिन्दी स०,पृ० ६३२-६३३) पर उद्धृत। इससे पहले जीवनचरित्र में निम्नलिखित पंक्तियां हैं—

"पं० हृदयनारायण वकील ने बयान किया कि एक विज्ञापन स्वामीजी

एतेषु चतुर्षु वेदेषु कर्मोपासनाज्ञान-काण्डानां निश्चयोऽस्ति ॥ तत्र संध्यावन्दनादिरश्वमेधान्तः कर्मकाण्डो वेदितव्यः । यमादिः समाध्यन्त उपासनाकाण्डश्च बोद्धव्यः । निष्कर्मादिः परब्रह्मसाक्षात्कारान्तो ज्ञानकाण्डो ज्ञातव्यः[2] ॥

आयुर्वेदः ५, तत्र चिकित्साविद्यास्ति ॥ तत्र **चरकसुश्रुतौ** द्वौ ग्रन्थौ सत्यौ विज्ञातव्यौ ॥

धनुर्वेदः ६, तत्र शस्त्रास्त्रविद्यास्ति ॥

गान्धर्ववेदः ७, तत्र गानविद्यास्ति ॥

अथर्ववेदः ८, तत्र शिल्पविद्यास्ति ॥

एते चत्वारो वेदानामुपवेदा यथासंख्यं वेदितव्याः ॥

शिक्षा[3] वेदस्था ९, [यहां 'वेदस्य' ऐसा शुद्ध पाठ होना चाहिये —सम्पादक ।] तत्र वर्णोच्चारणविधिरस्ति ॥

की आज्ञा से मैंने प्रामाणिक पुस्तकों का संस्कृत में छपवाया था। यह संस्कृत में स्वयं स्वामीजी ने लिख कर दिया था। जब छप कर आया, तो उसकी छापे की अशुद्धियों को स्वामीजी ने स्वयं शोधा था। और कहा कि —देखो मूर्ख ने छापने में कितनी अशुद्धियां कर दीं। एक प्रति स्वामीजी की शोधी हुई हमारे पास विद्यमान है। शेष उस समय बांट दी थीं। वह आपको देता हूँ," इति।

विशेष—जीवनचरित के हिन्दी संस्करण की जो पृष्ठसंख्या इस संग्रह में दी है, वह 'आर्यसमाज, सीताराम बाजार, दिल्ली' द्वारा संवत् २०२८ में प्रकाशित प्रथम संस्करण की है। अन्य संस्करणों में पृष्ठसंख्या में भेद हो गया है।

१. निश्शेषेण+चयः = चयनं समूह इति यावत्।

२. तुलना करो—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, प्रतिज्ञाविषय, पृष्ठ ३८३—चारों वेदों में ज्ञान कर्म और उपासना इन तीन विद्याओं का वर्णन होने से चारों वेदों को 'त्रयी' या 'त्रयी-विद्या' भी कहते हैं। वेद शब्द विद्या=ज्ञान का पर्यायवाची है। इसलिये चारों वेदों के लिये ब्राह्मणग्रन्थों में '**त्रीन् वेदान्**' आदि प्रयोग भी उपलब्ध होते हैं।

३. यहां 'शिक्षा' से अभिप्राय पाणिनीय शिक्षा से है। पाणिनीय शिक्षा के नाम से श्लोकबद्ध एक शिक्षाग्रन्थ प्रसिद्ध है। इसके दो पाठान्तर हैं। ऋग्वेदीय पाठ में ६० श्लोक हैं, और यजुर्वेदीय में ३५ श्लोक। कई लेखकों के मतानुसार पाणिनि के अनुज पिङ्गल ने किसी पाणिनीय शिक्षा के आधार पर इसे श्लोकबद्ध किया है। यह शिक्षा वस्तुतः पाणिनीय नहीं है। वास्त-

कल्पः १०, तत्र वेदमन्त्राणामनुष्ठानविधिरस्ति ॥

व्याकरणम् ११, तत्र शब्दार्थसम्बन्धानां निश्चयोऽस्ति । तत्र द्वौ ग्रन्थावष्टाध्यायीव्याकरणमहाभाष्याख्यौ सत्यौ वेदितव्यौ ॥

निरुक्तम् १२, तत्र वेदमन्त्राणां निरुक्तयः सन्ति ॥

छन्दः १३, तत्र गायत्र्यादिछन्दसां लक्षणानि सन्ति ॥

ज्योतिषम् १४, तत्र भूतभविष्यद्वर्तमानानां ज्ञानमस्ति । तत्रैका भृगुसंहिता[1] सत्या वेदितव्या ॥

विक पाणिनीय शिक्षा सूत्रबद्ध थी। उसके अनेक सूत्र व्याकरण के प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। इस सूत्रबद्ध शिक्षा का एकमात्र खण्डित हस्तलेख ऋषि दयानन्द को सं० १९३६ में प्राप्त हुआ था, और उसे उन्होंने आर्य-भाषा व्याख्या सहित **'वर्णोच्चारणशिक्षा'** के नाम से प्रसिद्ध किया था। देखो—हमारा "ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास" पृष्ठ १५५-१५८, तथा "संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास" भाग १, पृष्ठ २३६-२३९, सं० २०३० का संस्क०)। इस मूलभूत पाणिनीय शिक्षा को एक अन्य हस्तलेख के आधार पर **शिक्षासूत्राणि** में हमने प्रकाशित किया है।

अत: वास्तविक पाणिनीय शिक्षा ऋषि दयानन्द को सं० १९३६ में प्राप्त हुई, अत: यहां (सं० १९२६ के इस विज्ञापन में) ऋ० द० को, श्लोकबद्ध पाणिनीयशिक्षा के नाम से जो प्रसिद्ध ग्रन्थ है, वही अभिप्रेत रहा होगा। अष्टाध्यायीभाष्य, जिसकी रचना ऋषि दयानन्द ने श्रावण वदी २ सं० १९३५ (१५ अगस्त १८७८) से कुछ पूर्व की थी (देखो – ऋ० द० ग्रन्थेतिहास, पृष्ठ ११४-१२०), उसके प्रारम्भिक भाग में भी श्लोकबद्ध पाणिनीय शिक्षा के ही वचन उद्धृत हैं। सौवर की भूमिका में याज्ञवल्क्यशिक्षा का श्लोक भी उद्धृत है। अत: यहां यह भी सम्भव है कि—उक्त निर्देश में किसी ग्रन्थविशेष की ओर संकेत न होकर सामान्य शिक्षा-शास्त्र की ओर संकेत हो।

१. यह 'भृगुसंहिता' आर्षग्रन्थ है। वर्तमान में लोक में प्रसिद्ध जन्मफल-निदर्शक ग्रन्थ नहीं है। द्र०—सं० १९३२ (सन् १८७५) का छपा सत्यार्थ-प्रकाश, पृष्ठ ८६—"ज्योतिषशास्त्र में जो फलविद्या है, सो व्यर्थ है। **भृग्वादि मुनियों के लिखे सूत्ररूप और भाष्यों को पढ़ें।** मुहूर्तचिन्तामण्यादिक जाल ग्रन्थों को कभी न पढ़ें।" आर्यसमाज फर्रुखाबाद द्वारा धर्म-सभा फर्रुखाबाद के ऋषि दयानन्द के लिखाये प्रश्नों के जो उत्तर १२

एतानि षट् वेदाङ्गानि वेदितव्यानि ॥

इमाश्चतुर्दशविद्याश्च[1] ॥

ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्डक-माण्डूक्य-तैत्तिरी[य]-ऐतरेय-छान्दोग्य-बृहदारण्यक-श्वेताश्वतर-कैवल्योपनिषदो द्वादश[2] १५. अत्र

अक्टूबर सन् १८७६ को भेजे गये थे, उनमें तेरहवें प्रश्न के उत्तर में भृगुसिद्धान्त को आप्त प्रामाणिक ग्रन्थ और उसमें केवल गणित विद्या का निर्देश माना है।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के लेखनकाल (भाद्र शु० १, सं० १९३३) के दो वर्ष पश्चात् मौ० मुहम्मद कासिम के पत्र के उत्तर में १५ अगस्त १८७८ के पत्र में ऋषि दयानन्द ने लिखा है—"श्रीमान् जी! मैंने उस (कानपुर के) शास्त्रार्थ में पवित्र वेद के २१ विभिन्न व्याख्याओं की सत्यता स्वीकार की थी और **अब भी उनके ठीक होने का स्वीकार करता हूं**"।

यतः ऋ० द० सं० १९३६ (सन् १८७९) तक भृगुसंहिता को सत्य आर्षग्रन्थ मानते थे, अतः यहां निर्दिष्ट 'भूतभविष्यद्वर्तमान-ज्ञान' का तात्पर्य गणितविद्या से ज्ञात होनेवाले तीनों कालों के तिथि-नक्षत्र सूर्य-चन्द्र-ग्रहण आदि विषयक ज्ञान से ही है।

१. ऐसा ही निर्देश ऋषि दयानन्द ने यजुर्वेद ९।३४ के भाष्य में किया है—**'चत्वारो वेदाश्चत्वार उपवेदाः षडङ्गानि च मिलित्वा चतुर्दश विद्याः।'** चतुर्दश विद्याओं का उल्लेख ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषय (पृष्ठ ३१४) तथा संस्कारविधि के वेदारम्भसंस्कार के अन्त (पृष्ठ १३२) में भी मिलता है। पुराणों में चौदह विद्याओं की गणना निम्न प्रकार की है—

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।

धर्मशास्त्रं पुराणं च विद्यास्त्वेताश्चतुर्दश ॥ वायुपुराण ६१।७८॥

यही श्लोक कुछ पाठभेद से विष्णु पु० अंश ३, अ० ६, श्लोक २८ में मिलता है।

उक्त पुराणोक्त चौदह विद्याओं में आयुर्वेद धनुर्वेद गान्धर्ववेद और अर्थशास्त्र (=अथर्ववेद) को जोडने से १८ विद्यायें हो जाती हैं। द्र०—वायु पु० ६१।७९; विष्णु पु० अंश ३, अ० ६, श्लोक २९॥

२. आगे पूर्णसंख्या १० पर मुद्रित विज्ञापनपत्र में 'ईश केन कठ प्रश्न मुण्डक माण्डूक्य तैत्तिरीय ऐतरेय छान्दोग्य और बृहदारण्यक दश उपनिषदें

ब्रह्मविद्यैवास्ति ॥

शारीरकसूत्राणि १६, तत्रोपनिषन्मन्त्राणां व्याख्यानमस्ति[1] ॥

कात्यायनादीनि सूत्राणि[2] १७, तत्र निषेकादिश्मशानान्तानां संस्काराणां व्याख्यानमस्ति ॥

योगभाष्यम् १८, तत्रोपासनाया ज्ञानस्य च साधनानि सन्ति ॥

वाकोवाक्यमेको ग्रन्थः १९, तत्र वेदानुकूला तर्कविद्यास्ति[3] ॥

मनुस्मृतिः २०, तत्र वर्णाश्रमधर्माणां व्याख्यानमस्ति, वर्णसंकरधर्माणाञ्च ॥

महाभारतम् २१, तत्र शिष्टानां[4] जनानां लक्षणानि सन्ति, दुष्टानां[4] जनानाञ्च ॥

एतान्येकविंशति[5] शास्त्राणि सत्यानि वेदितव्यानि ॥

गिनाई हैं। तथा पूर्णसंख्या ३५ पर मुद्रित विज्ञापनपत्र में 'ईश' की गणना न करके दस संख्या की पूर्ति के लिये 'मंत्रैयी' का निर्देश मिलता है। श्वेताश्वतर और कैवल्य उपनिषदों का दोनों विज्ञापनपत्रों में उल्लेख नहीं है।

१. वेदान्तसूत्रों की रचना प्रधानतया औपनिषद-वाक्यों के विचार के लिये हुई है। अतः अप्रत्यक्षरूप से उसे उपनिषद्-वाक्यों का व्याख्यान कह सकते हैं।

२. यहां 'कात्यायनादीनि सूत्राणि' से गृह्यसूत्र अभिप्रेत हैं। यह अगले विवरण से स्पष्ट है। गृह्यसूत्रों का 'कल्प' संज्ञक वेदाङ्ग में अन्तर्भाव हो जाता है।

३. **वाकोवाक्यम्—उक्ति प्रत्युक्तिरूपं तर्कशास्त्रम्।** गौतमधर्मसूत्र, मस्करीभाष्य ८।६॥ नामिक के प्रारम्भ में 'वाकोवाक्य' का अर्थ 'दर्शनशास्त्र' मिलता है।

४. यहां 'शिष्टानाम्' से अभिप्राय 'पण्डितानाम्' से है। इसी प्रकार 'दुष्टानाम्' से अभिप्राय 'मूर्खाणाम्' से है। पण्डितों और मूर्खों के लक्षण महाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत विदुरनीति अ० १ में श्लोक २०-४५ तक देखने चाहियें।

५. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषय (पृष्ठ ३१४) में चार वेद, चार उपवेद, छः वेदाङ्ग, छः उपाङ्ग मिलाकर २० ग्रन्थ गिनाये हैं। अजमेरमुद्रित संस्करण में '**मिलित्वा बहू भवन्ति**' अपपाठ है।

एतेष्वेकविंशतिशास्त्रेष्वपि व्याकरण-वेद-शिष्टाचारविरुद्धं यद्वचनं तदप्यसत्। एतेभ्य एकविंशतिशास्त्रेभ्यो ये भिन्ना ग्रन्थाः सन्ति, ते सर्वे गप्पाष्टकाख्या वेदितव्याः। गपृ[1] मिथ्यापरिभाषणे। अस्मात् पः प्रत्ययः॥ गपयते[2] यत्तद् गप्पम्॥

> अष्टौ गप्पानि यत्र स्युर्गप्पाष्टकं तद्विदुर्बुधाः।
> अष्टौ सत्यानि यत्रैव तत्सत्याष्टकमुच्यते॥

कान्यष्टौ गप्पानीत्यत्राह—

मनुष्यकृता: सर्वे ब्रह्मवैवर्तपुराणादयो ग्रन्था: प्रथमं गप्पम्—१।
पाषाणादिपूजनं देवबुध्या द्वितीयं गप्पम्—२।
शैवशाक्तवैष्णवगाणपत्यादय: सम्प्रदायास्तृतीयं गप्पम्—३।
तन्त्रग्रन्थोक्तो वाममार्गश्चतुर्थं गप्पम्—४।
भङ्गादिनशाकरणम् पञ्चमं गप्पम्—५।
परस्त्रीगमनं षष्ठं गप्पम्—६।
[3]चौरीति सप्तमं गप्पम्—७।

---

१ अगले वाक्य में 'गपयते' प्रयोग उपलब्ध होने से प्रतीत होता है कि यहां मुद्रणदोष से 'गप' अदन्त धातु के स्थान में 'गपृ' ऋकारान्त छप गया है। अदन्त मानने से 'गपयते' में उपधा को वृद्धि नहीं होती। धातु-पाठ में यह धातु साक्षात् पठित नहीं है, परन्तु इस प्रकरण के "**बहुलमेतन्नि-दर्शनम्**' इस गणसूत्र से प्रयोग के अनुसार धातुपाठ में अनुक्त धातुयें भी स्वीकार की जाती हैं।

२ यहां 'गप्यते यत्तद् गप्पम्' पाठ होना चाहिये।

३ संस्कृतभाषा में '**चौरी**' शब्द चोर की स्त्री, और 'चोरी' इन दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है। चोर की स्त्री का बोधक शब्द "**चुरा शीलमस्य स चौरः, स्त्री चेत् चौरी**।' यहां चुरा (=चोरी) शब्द से **छत्रादिभ्यो णः** (अ० ४।४।६२) से ण प्रत्यय होता है। '**क्वचित्स्वार्थिका अप्यनुवृत्तानि कार्याणि भवन्ति**' इस नियम से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् होकर 'चौरी' शब्द निष्पन्न होता है। प्रकृत पाठ में 'चोरी' के अर्थ में चौरी पद प्रयुक्त है। यह '**चोरस्य कर्म**' इस अर्थ में **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** (अ० ५।१।१२४) से चोर शब्द से ष्यञ् प्रत्यय, और स्त्रीलिङ्ग में प्रत्यय के षित् होने से **षिद्गौरादि-**

कपटच्छलाभिमानानृतभाषणमष्टमं गप्पम्[—८]।

एतान्यष्टौ गप्पानि त्यक्तव्यानि ॥

कान्यष्टौ सत्यानीत्याह—

ऋग्वेदादीन्येकविंशतिशास्त्राणि परमेश्वरर्षिरचितानि प्रथमं सत्यम् १॥

ब्रह्मचर्याश्रमेण गुरुसेवास्वधर्मानुष्ठानपूर्वकं वेदानां पठनं द्वितीयं सत्यम् २॥

वेदोक्तवर्णाश्रमस्वधर्मसन्ध्यावन्दनाग्निहोत्राद्यनुष्ठान तृतीयं सत्यम् ३॥

यथोक्तदारादिगमनं पञ्चमहायज्ञानुष्ठानमृतुकालस्वदारोपगमनं श्रौतस्मार्ताचाराद्यनुष्ठानं चतुर्थं सत्यम् ४॥

शमदमतपश्चरणयमादिसमाध्यन्तोपासनासत्सङ्गपूर्वकं वानप्रस्थाश्रमानुष्ठानं पञ्चमं सत्यम् ५॥

विचारविवेकवैराग्यपराविद्याभ्याससन्यासग्रहणपूर्वक सर्वकर्मफलत्यागाद्यनुष्ठान षष्ठ सत्यम् ६॥

ज्ञानविज्ञानाभ्यां सर्वानर्थजन्ममरणहर्षशोककामक्रोधलोभमोहसङ्गदोषत्यागानुष्ठानं सप्तमं सत्यम् ७॥

अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशतमोरजःसत्वसर्वक्लेशनिवृत्तिः पञ्चमहाभूतातीतमोक्षस्वरूपस्वाराज्यप्राप्तिः अष्टम सत्यम् ८॥

एतान्यष्टौ सत्यानि ग्रहीतव्यानि ॥ इति ॥

दयानन्दसरस्वत्याख्येनेदम्पत्रं रचितम्, तदेतत्सज्जनैर्वेदितव्यम्॥

शोलेतूर में छपा[1]।

—:०:—

स्यन्च (अ० ४।१।४१) से ङीष् प्रत्यय होकर निष्पन्न होता है 'चोरस्य कर्म चौर्यम्, स्त्रियां चौरी।' स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय के परे हलस्तद्धितस्य (६।४।१५०) से यकार का लोप होता है।

१. यह विज्ञापन कानपुर में दिया गया था। वहीं शोलेतूर यन्त्रालय में छपा।

इस विज्ञापन का उल्लेख कानपुर के उर्दू समाचार पत्र शोलेतूर के २७ जुलाई १८६९ के अङ्क भाग १० संख्या ३० में है। इससे ज्ञात होता है कि

पूर्ण[1] संख्या २२(पृष्ठ ६-१२)संस्कृत विज्ञापन का भाषानुवाद

'कल्याण हो। १ ऋग्वेद, २ यजुर्वेद, ३. सामवेद, ४. अथर्ववेद— इन चारों वेदों में कर्म, उपासना, ज्ञानकाण्ड का निश्चय है। उन में सन्ध्या उपासना से लेकर अश्वमेध तक कर्मकाण्ड जानना चाहिए। यम से लेकर समाधि तक उपासना काण्ड जानें। निष्कर्म से लेकर परब्रह्म के साक्षात्कार तक ज्ञानकाण्ड समझें।५. आयुर्वेद —में चिकित्सा विद्या है, जिसके दो ग्रन्थ चरक और सुश्रुत सत्य जानो। ६. धनुर्वेद – उसमें शस्त्रास्त्र विद्या है। ७. गान्धर्ववेद — मे गानविद्या है। ८ अर्थवेद—में शिल्पविद्या **कलाकौशल और भवननिर्माण की विद्या है।** यह चारों वेदों के क्रमशः चार उपवेद हैं। ९. शिक्षा – उसमें वर्णोच्चारण की विधि है। १०. कल्प — उसमें वेदमन्त्रों के (द्वारा यज्ञ आदि के) अनुष्ठान की विधि है। ११. व्याकरण – उसमे शब्द, अर्थ और उनके परस्पर सम्बन्ध का निश्चय है। उसके प्रामाणिक ग्रन्थ अष्टाध्यायी और महाभाष्य दो हैं; दोनों को सत्य जानना चाहिए। १२ निरुक्त उसमें वेद-मन्त्रों की निरुक्तियां हैं। १३. छन्द– में गायत्री आदि छन्दों के लक्षण हैं। १४ ज्योतिष— उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान का ज्ञान

यह विज्ञापन २० जुलाई के समीप में, अर्थात् आषाढ़ सं० १९२६ के अन्त में छपा होगा।

काशी का प्रसिद्ध शास्त्रार्थ इस विज्ञापन के पश्चात् मङ्गलवार १६ नवम्बर सन् १८६९ (कार्तिक सुदि १२, सं० १९२६) में हुआ। छल-कपटदर्पण के कर्ता ने अशुद्ध विज्ञापन छाप कर अपने स्वभावानुकूल ऋषि पर अनेक मिथ्या कटाक्ष किये।

प्रामाणिक ग्रन्थों की जो सूची इस विज्ञापन में दी गई है, ठीक उसी प्रकार की एक सूची ऋषि दयानन्द सरस्वती ने बनारस संस्कृत कालेज के प्रिंसिपल डाक्टर रुडल्फ हार्नले को काशीशास्त्रार्थ से कुछ दिन पहले अपने हाथ से लिख कर दी थी। देखो **The Arya Samaj, by L. Lajpat Rai** दूसरा संस्करण, लाहौर, पृष्ठ ४६।

१. यह भाषानुवाद हमने प० लेखरामकृत जी० च० हिन्दी स० पृष्ठ ६३३-६३४ से लिया है। इसके साथ सम्बद्ध टिप्पणियां संस्कृत पाठ के नीचे देखें।

है; इसमें केवल एक ही ग्रन्थ भृगुसंहिता सत्य जानना चाहिये। यह छः वेदाङ्ग हैं। यही चौदह विद्या हैं। १५ उपनिषद् अर्थात् ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, श्वेताश्वतर, कैवल्य—यह बारह उपनिषदें हैं। इनमें ब्रह्मविद्या है। १६ शारीरकसूत्र में उपनिषत् के मन्त्रों की व्याख्या है। १७. कात्यायन आदि सूत्र—इनमें जन्म से लेकर श्मशान तक संस्कारों की व्याख्या है। १८ योगभाष्य में उपासना और ज्ञान के साधन हैं। १९. वाकोवाक्य इस एक ग्रन्थ में वेदों के अनुकूल तर्क करने की विधि है। २०. मनुस्मृति में वर्णाश्रमधर्मों के व्याख्यान हैं और वर्णसंकरों के धर्मों के भी। २१. महाभारत में अच्छे लोगों और दुष्टजनों के लक्षण हैं।

इन इक्कीस शास्त्रों को सत्य जानो परन्तु इन इक्कीस शास्त्रों में भी जो वचन व्याकरण, वेद और शिष्टाचार के विरुद्ध हो—वह असत्य है।

इन इक्कीस शास्त्रों के अतिरिक्त जो ग्रन्थ हैं, उन सबको **"गप्पाष्टक"** जानो। गप्प कहते हैं मिथ्याभाषण को और फिर जिसमें आठ गप्प हों उसको बुद्धिमान् "गप्पाष्टक" कहते हैं और जिसमें आठ सत्य हों उसको "सत्याष्टक" कहते हैं। **अब आठ गप्प कौनसी हैं**—१- मनुष्य के बनाये हुए ब्रह्मवैवर्त से लेकर पुराणादि सब ग्रन्थ—यह पहली गप्प है। २—पाषाण आदि में देवता की बुद्धि (भावना) रख कर उनकी पूजा करना -यह दूसरी गप्प है। ३—शैव, शाक्त, वैष्णव, गाणपत्य आदि सम्प्रदाय-यह तीसरी गप्प है। ४- तन्त्र ग्रन्थों में कहा हुआ वाममार्ग मत चौथी गप्प है। ५ भांग आदि नशों का प्रयोग करना यह पांचवी गप्प है। ६—परस्त्रीगमन यह छठी गप्प है। ७ चोरी करना यह सातवीं गप्प है। ८—छल, अभिमान, मिथ्याभाषण—यह आठवी गप्प है। यह आठ जो गप्पें हैं—इनको छोड़ देना चाहिए।

अब आठ सत्य कौनसे हैं वह कहते हैं—१—ऋग्वेद आदि इक्कीस शास्त्र परमेश्वर और ऋषियों के बनाये हुए -यह सब पहला सत्य है। २—ब्रह्मचर्याश्रम से गुरु की सेवा, अपने धर्म के अनुष्ठान के अनुसार वेदों का पढ़ना दूसरा सत्य है। ३—वेदोक्त वर्णाश्रम के अनुसार अपने-अपने धर्म सन्ध्या, वन्दना, अग्निहोत्र

का अनुष्ठान तीसरा सत्य है। ४—शास्त्र के अनुसार अपनी स्त्री से सम्बन्ध और पञ्चमहायज्ञों का अनुष्ठान, ऋतुकाल में अपनी स्त्री से गमन करना, श्रुति और स्मृति के अनुसार चालचलन रखना—यह चौथा सत्य है। ५—दम, तपश्चरण, यम आदि से लेकर समाधि तक उपासना और सत्सङ्गपूर्वक वानप्रस्थाश्रम का अनुष्ठान करना पांचवां सत्य है। ६—विचार, विवेक, वैराग्य, पराविद्या का अभ्यास और सन्यासग्रहण करके सब कर्मों के फल की इच्छा न करना—यह छठा सत्य है। ७—ज्ञान और विज्ञान से समस्त अनर्थ से उत्पन्न होनेवाले जन्म, मरण, हर्ष, शोक, काम, क्रोध, लोभ, मोह, सङ्गदोष के त्यागने का अनुष्ठान सातवां सत्य है। ८—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश, तम, रज, सत्व सब क्लेशों की निवृत्ति, पञ्चमहाभूतों से अतीत होकर मोक्ष-स्वरूप और आनन्द को प्राप्त होना आठवां सत्य है। यह आठों सत्य ग्रहण करने चाहियें। इति।

दयानन्द सरस्वती ने यह पत्र रचा—यह भी सज्जनों को जानना चाहिए। ("शोलयेतूर" मुद्रणालय में छपा)

—:o:—

[पूर्ण संख्या २३] पत्र-सारांश

श्रेष्ठोपमायोग्याय गङ्गादत्तशर्मणे आशीर्वाद.।

यहां (फर्रुखाबाद में) आप पन्नीलाल साहूकार की पाठशाला में पढ़ाने का कार्य करें।[1]

दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या २४] मनि आर्डर-सूचना

मार्ग व्यय के लिए १० रुपये भेजे जा रहे हैं।[2]

—:o:—

१. इस पत्र की सूचना पूर्ण संख्या २५ के पृ० १७ पं० २-३ में तथा पं० लेखरामकृत जीवनचरित हिन्दी सं० पृष्ठ २४९ में मिलती है। यह पत्राशय हमने प्रसङ्ग के अनुसार बनाया है। मूल पत्र पूर्ण संख्या २५ के समान संस्कृत में रहा होगा।

२. पूर्ण संख्या २३ के पत्र के साथ १० रुपये भेजने का उल्लेख पं० लेखरामकृत जीवनचरित हिन्दी सं० पृष्ठ २४९ में मिलता है। पूर्ण संख्या

[पूर्ण संख्या २५] पत्र

ओ३म्[१]

स्वस्ति श्री श्रेष्ठोपमायोग्यस्य गङ्गादत्तशर्म्मणे[२] दयानन्द-

---

२५. पृ० १७ की टिप्पणी ३ भी देखें। पूर्व पूर्ण संख्या २३ का पत्र और ये १० रुपये किसी व्यक्ति के द्वारा भेजे गये थे अथवा डाक वा मनिआर्डर से, यह अज्ञात है।

१. मथुरानिवासी प० गङ्गादत्त चौबे श्री स्वामीजी के सहाध्यायी थे। इस पत्र द्वारा श्री स्वामीजी ने फर्रुखाबादस्थ सा० संस्कृतपाठशाला में पढ़ाने के लिये बुलाया है। इस पत्र के फर्रुखाबाद से भेजने का संकेत प० लेखरामकृत महर्षि दयानन्द के उर्दू जीवनचरित्र के पृ० २१६ पंक्ति २ (हिन्दी स० पृष्ठ २४६) में है।

२. **श्रेष्ठोपमायोग्यस्य गङ्गादत्तशर्म्मणे** —कुशलार्थक स्वस्ति पद के योग में अष्टाध्यायी २।३।७३ से षष्ठी और चतुर्थी दोनों विभक्तियां होती हैं। परन्तु महाभाष्यकार ने कहा है—**एकस्याकृतेश्चरितः प्रयोगो द्वितीयस्यास्तृतीयस्याश्च न भवति। तद्यथा गवां स्वामी अश्वेषु च** (महा० ३।१।४०) अर्थात् किसी एक शब्द के योग में दो तीन विभक्तियों का विधान किया भी हो, तब भी एक वाक्य में विभिन्न विभक्तियों का प्रयोग नहीं हो सकता। यहां अष्टा० २।३।३९ से 'स्वामी' शब्द के योग में षष्ठी और सप्तमी का सामान्य विधान होने पर भी एक वाक्य में 'गवां स्वामी अश्वेषु च' ऐसा प्रयोग नहीं होता है। ऋषि दयानन्द महाभाष्यकार के इस नियम को नहीं मानते। वे प्रायः एक से अधिक विभक्तियों का विधान होने पर एक ही वाक्य में विभिन्न विभक्तियों का प्रयोग करते हैं। यथा—**सर्वज्ञत्वेन ...... श्रोतृत्वेन सर्वाधारकत्वेनान्तर्यामितया .... शोधकत्वेन सर्वस्य मित्रत्वाच्च** (ऋग्भाष्य १।१०।६ भावार्थ। इसी प्रकार देखो यजुर्वेदभाष्य २।७, ३।२५ का संस्कृतभावार्थ)। यहां हेतु में एक ही वाक्य में तृतीया और पञ्चमी दोनों विभक्तियों का निर्देश किया है। (पाणिनीय लक्षणानुसार हेतु में पञ्चमी प्राप्त नहीं है परन्तु प्राचीन आर्षग्रन्थों में हेतु में पञ्चमी का प्रयोग प्रायः देखा जाता है)। ऋषि दयानन्द का एक वाक्य में विभिन्न विभक्तियों का प्रयोग करना महाभाष्यकार के मतानुसार युक्त न होने पर भी प्राचीन आर्षग्रन्थों के अनुकूल होने से शुद्ध है। यथा—शतपथ ब्रा० १।१।

सरस्वतीस्वामिन आशीर्वादो विदितो भवत्वत्र शं वर्त्तते तत्राप्यस्तु। भवत्पत्रमागतं[1] तत्रस्थो वृत्तान्तोऽपि विदितः॥ भवान् बुद्धिमान् भूत्वा पत्रं तु प्रेषितवान् परन्तु स्वयं च पत्रप्रेषणवन्नागत इदम्महदाश्चर्यम्॥ इदम्पत्रं दृष्ट्वैव शीघ्रमागन्तव्यमागत्य यस्मिन्दिने भवानत्र पाठशालायाम्पाठनारम्भं करिष्यति तस्मिन्नेव दिने एकमासस्य विचारितस्य तु प्रेषण गृहम्प्रति कार्यमिति निश्चयो वेदितव्यो नात्र कार्या विचारणा॥ इय शङ्कापि भवता न कार्या जीविका तत्र भवेद्वा नेति॥ इदानीन्तु प्रतिदिनम्मुद्रैका जीविकास्त्यत्र परन्तु यदा यदा भवतो गुणप्रकाशो भविष्यति तदा तदाधिकाधिका जीविका निश्चिता भविष्यतीति विज्ञेयम्॥ इदानीन्तु भवतात्रैव स्थिति कार्या पुनरन्यत्र वात्रैवाजीविका निश्चिता स्थास्यति, न जाने भवेदाजीविका न वेति गमने कृते सति मयीति भवतो हृ शङ्कापि मा भूत॥ अत्रागमने कृते सति भवति सर्वं शोभनं भविष्यति॥ परन्तु भवतात्रागमने क्षणमात्रोपि विलम्बो न कार्यः। किम्बहुना लेखेनाभिज्ञेषु॥ संवत् १९२७ भाद्रपदशुक्लपक्षषष्ठ्यां बृहस्पतिवासरे[2] लिखितमिदम्पत्रं विदितम्भवतु[3]॥

२।७ में लिखा है अमत एव यजूंषि सन्ति, न कोष्ठस्य न कुम्भ्यं। इस वाक्य में **चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि** (अष्टा० २।३।६१) सूत्र से विहित षष्ठी और चतुर्थी दोनों विभक्तियों का एक साथ प्रयोग हुआ है। अतः ऋषि दयानन्द की संस्कृत भाषा को समझने के लिये **पाणिनीय व्याकरण और उसकी व्याख्याओं के अतिरिक्त अति प्राचीन आर्ष वाङ्मय का भी गहरा अनुशीलन करना चाहिये**। पाणिनीय व्याकरण तो अपने समय का सब से अन्तिम आर्ष व्याकरण है, और वह भी प्राचीन व्याकरणों की अपेक्षा पर्याप्त संक्षिप्त है (देखो—हमारा "संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास" प्रथम भाग सं० १, पृष्ठ १-५३, सं० २०३० का संस्क०)। अथवा यह भी सम्भव हो सकता है कि महाभाष्य का उक्त कथन एकदेशी हो।

१. द्र०—'पत्र-सूचना' भाग ३ के प्रारम्भ में।

२. १ सितम्बर १८७०। यह पत्र फर्रुखाबाद से मथुरा भेजा गया।

३. प० गङ्गादत्त के पौत्र प० विदुरदत्त तान्त्रिक छत्ता बाजार मथुरा

महाभाष्याष्टाध्यायी-धातुपाठोणादिपाठ-वार्तिकपाठ-परिभाषा-पाठगणपाठपुस्तकानि गृहीत्वैवागमनम्भवेद् अन्यदपि वेदस्यापि[1] ।

भाषानुवाद

श्रीरस्तु (कल्याण होवे)

स्वस्ति श्री श्रेष्ठ उपमायोग्य गङ्गादत्त शर्मा के लिए दयानन्द सरस्वती स्वामी का आशीर्वाद विदित होवे । यहां सब कल्याण है वहां भी होवे । आपका पत्र आया वहां का समाचार भी जाना । आप बुद्धिमान् होकर पत्र तो भेजा परन्तु स्वय पत्र भेजने के तुल्य नहीं आए यह महान् आश्चर्य है । यह पत्र देखते ही शीघ्र आओ और आकर जिस दिन आप यहां पाठशाला में पढ़ाना आरम्भ करोगे उसी दिन एक मास का पूर्व विचारित [रुपयों] को अपने घर भेज देना यह निश्चय जानो इसमें कुछ विचार नहीं करना । यह शङ्का भी आप न करें कि आजीविका वहां होगी वा नहीं । इस समय तो प्रतिदिन एक रुपया आजीविका है । परन्तु जब तब

में रहते हैं । उनके घर में यह मूलपत्र अब भी सुरक्षित है । उसी मूलपत्र से श्री महाशय मामराज जी ने भाद्र बदी १२ सवत् १९८५ को स्वय इस की प्रतिलिपि की ।

प० गङ्गादत्त को श्री स्वामी जी ने मार्गव्यय के लिये रुपये भी भेजे थे । जब प० गङ्गादत्त फर्रुखाबाद न गये, तो उन्होंने १०) रु० बनमाली पण्डित को लौटा दिये । उनकी रसीद ला० मामराज जी को प० गङ्गादत्त के बस्तों में से मिली । वह निम्नलिखित है -

"जो दयानन्द सरस्वती स्वामी ने दश रुपा १०) भेजे गङ्गादत्त जी के रस्ता खर्च को, सो नयनसुख के मारफत युगल जी की चिठी को लिखो देख, गङ्गादत्त जी से भर पाए, कलाधर तथा बनमाली नें । अत्र साक्षी दामोदरः" ॥

१. ये अन्तिम दो पंक्तियां पत्र की पीठ पर लिखा होने से महाशय मामराजजी से भाद्र बदी १२, सं० १९८५ की प्रतिलिपि करते समय छूट गई थीं । इससे 'दयानन्द दीक्षा शताब्दी मथुरा' (दिसम्बर १९५९) के अवसर पर श्री मामराजजी के साथ मथुरा के प० गोविन्ददत्त चौबे के गृह पर जाकर मैंने मूलपत्र से उक्त पंक्तियों की प्रतिलिपि की थी । इस पत्र के उत्तर की सूचना तीसरे भाग में पूर्ण सख्या ८ पर छापी है ।

आपके गुणों का प्रकाश होगा तब तब अधिकाधिक आजीविका निश्चित होगी ऐसा जानना। इस समय तो आपने यहीं रहना है फिर यहां से वा अन्यत्र आजीविका निश्चित स्थिर रहेगी। मेरे जाने पर आजीविका होगी वा नहीं, यह शङ्का भी न करें। यहां आने पर सब अच्छा होगा। परन्तु आप यहां आने में क्षण मात्र भी विलम्ब न करें। सं० १९२७ भाद्रशुक्लपक्ष षष्ठी बृहस्पतिवार के दिन यह पत्र लिखा ऐसा विदित होवे।

महाभाष्य अष्टाध्यायी धातुपाठ उणादिपाठ वार्तिकपाठ परिभाषापाठ गणपाठ की पुस्तकें लेकर ही आना होवे और वेद की भी।

—.०.

[पूर्ण संख्या २६]   पत्र सारांश[1]

[पं० गङ्गादत्त जी]

हम वृन्दावन अवश्य आवेंगे[2]।

—.०:—

[पूर्ण संख्या २७]   पत्र-सारांश

[पं० गङ्गादत्त, मथुरा]

[3]तुम वृन्दावन में कोई ऐसा मकान खोजो जहां बन्दर और पत्थर न हों।

— ०

१. श्री स्वामी जी के पूर्व पत्र के उत्तर में पं० गङ्गादत्त चौबे ने पहले उन्हें मथुरा वृन्दावन आकर मूर्तिपूजा खण्डन करने को लिखा था (द्र०—भाग ३, पूर्णसंख्या ८)। उस के उत्तर में स्वामी जी ने जो पत्र लिखा, उसका उपर्युक्त सारांश पं० लेखराम संकलित जीवन चरित्र पृष्ठ २१६ (हिन्दी सं० पृष्ठ २४६) में लिखा है। मूलपत्र संस्कृत में रहा होगा।

२. यह पत्र सम्भवतः सं० १९२७ आश्विन मास में लिखा गया होगा।

३ स्वामी जी ने बलदेवसिंह को मथुरा में अपने जाने से पहले यह चिट्ठी देकर भेजा था। द्रष्टव्य—पं० लेखरामजी कृत जीवनचरित, हिन्दी अनुवाद, पृ० २५३। सम्भवतः यह पत्र हाथरस से भेजा गया होगा। हाथरस से मथुरा और मथुरा से वृन्दावन गये थे। यह मूलपत्र संस्कृत में रहा होगा।

[पूर्ण संख्या २८] विज्ञापन

'जिसको मूर्तिपूजा का मण्डन और पुराण को सिद्ध करना कराना हो। और इसके अतिरिक्त जितने मतवाले हों वह सब श्री स्वामी जी के सामने आकर सिद्ध करें। अन्यथा यदि पीछे लोग कहेंगे कि स्वामी जी शास्त्रार्थ के भय से खिसक गये तो नहीं सुना जायेगा। १५ दिन तक स्वामी जी महाराज आपका सन्देह निर्मूल करके जायेंगे। [पटना, १५ सितम्बर १८७१ के आसपास]

—:o:—

[पूर्ण संख्या २९] लेख विषयक सूचना

'संस्कृत कालेज कलकत्ता में वेद की शिक्षा दी जाये।

[कलकत्ता, दिसम्बर १८७१ –जनवरी १८७२]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ३०] विज्ञापनपत्रमिदम्'

एक पण्डित ताराचरण तर्करत्न नामक भाटपाडा ग्राम के

---

१. यहां (पटना) आकर स्वामी जी ने एक बंगाली के द्वारा विज्ञापन भाषा में छपवा कर सारे नगर में लगवा दिये। द० –प० लेखरामजी कृत जीवन चरित, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ २१६।

२. उक्त विषय का एक लेख 'नेशनल' पत्रिका (कलकत्ता) के सम्पादक मिस्टर नवगोपाल मित्र को भेजा था। द० प० लेखरामजी कृत जीवन चरित, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ २३१।

३ यह विज्ञापनपत्र 'प्रतिमा पूजन विचार' के नाम से १८×२२ के आठ पृष्ठवाले आकार के २८ पृष्ठों पर श्री स्वामी जी ने स्वयं* छपवा दिया था। इस के आरम्भ के १३ पृष्ठों पर 'हुगली शास्त्रार्थ' छपा है, और उससे आगे प्रतिमापूजन पर विचार किया है। उसका मुख्य पृष्ठ निम्नलिखित प्रकार का है –

प्रतिमा पूजन विचार ॥

श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामी और ताराचरण तर्करत्न का शास्त्रार्थ

---

* इस में प्रमाण यह है कि प्रस्तुत शास्त्रार्थ में सर्वत्र 'मैं' 'मैंने' 'मुझ से' तथा 'अस्मत्' शब्द का प्रयोग उपलब्ध होता है।

जो कि हुगली में हुआ था। उसे बाबू हरिश्चन्द्र* की आज्ञा से बनारस लाइट छापेखाने में गोपीनाथ पाठक ने मुद्रित किया सं० १९३० ॥

Benares
Printed At "The Light Press"
1873

इस विज्ञापन का पूर्वांश अर्थात् 'हुगली शास्त्रार्थ' पं० लेखराम कृत उर्दू जीवनचरित्र के पृष्ठ २०१-२०८ (हिन्दी सं० २३५-२३७) पर तथा देवेन्द्र बाबू और पं० घासीरामरचित जीवनचरित्र के पृ० २३६-२३८ पर छपा है। दोनों स्थानों में यह विज्ञापन अपने शुद्ध रूप में नहीं है। दोनों ने इसका संक्षेप दिया है। पं० लेखराम ने देवेन्द्र बाबू की अपेक्षा मूल का अधिक रक्षण किया है। इसकी मूल मुद्रित प्रति म० मामराज फर्रुखाबाद से सं० १९८३ में लाये थे। वह मूल प्रति अब हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

हमने विराम आदि चिह्न तो दिये हैं, परन्तु मूलपाठ सुरक्षित रखा है। हां मुद्रण में रही मात्रा आदि की अशुद्धि दूर कर दी है।

इस 'हुगली शास्त्रार्थ' की पुस्तक अथवा विज्ञापन पर पं० लेखराम जी का निम्नलिखित विवरण है—

"संवत् १९२९** में यह शास्त्रार्थ संस्कृतभाषा में हुआ°। उसी समय उसका अनुवाद बंगला भाषा में मुद्रित किया गया। और बहुत ही शीघ्र संवत् १९३० में लाइट प्रेस बनारस में १८[२८] पृष्ठ का बा० हरिश्चन्द्र°° एक मूर्तिपूजक हिन्दू ने, जो कि गोकुलिया गोस्वामी मत में था, उसे

---

* इस पर इस पुस्तक के द्वितीयभाग के अन्त में द्वितीय परिशिष्ट में टिप्पणी देखें।

** ऋषि दयानन्द हुगली चैत्र सुदि ४ संवत् १९३० को गये थे। अतः यहां सं० १९३० चाहिये। सं० १९२९ भूल से छपा होगा। हिन्दी संस्करण में सं० १९३४ तदनुसार सन् १८७७ में शास्त्रार्थ होना लिखा है (पृ० ८१७)। वह सर्वथा अशुद्ध है। सं० १९३४ में ऋषि दयानन्द पञ्जाब में भ्रमण कर रहे थे।

° ऋषि दयानन्द ने यह शास्त्रार्थ का सारांश भी संस्कृतभाषा में ही लिखा होगा, क्योंकि उस समय (सं० १९३० चैत्र) तक वे सम्भाषण भी संस्कृत में ही करते थे।

°° ये प्रसिद्ध भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हैं।

निवासी हैं। जो कि ग्राम हुगली के पार है। उस ग्राम में उनकी जन्मभूमि है, परन्तु आजकाल श्रीयुक्त काशीराज महाराज के पास रहते हैं। संवत् १९२९ में वे अपनी जन्मभूमि[1] में गए थे। वहां से कलिकाता में भी गये थे, और किसी स्थान में ठहरे थे।

जिनके स्थान में मैं ठहरा था उनका नाम श्रीयुक्त राजा ज्योतीन्द्र मोहन ठाकुर तथा श्रीयुक्त राजा शौरिन्द्र मोहन ठाकुर है। उनके पास तीन बार जा जाके ताराचरण ने प्रतिज्ञा की थी कि हम आज अवश्य शास्त्रार्थ करने को चलेंगे। ऐसे ही तीन दिन तक कहते रहे परन्तु एक बेर भी न आए। इससे बुद्धिमान् लोगों ने उनकी बात झूठी ही जान ली। मैं कलिकाता से हुगली में आया[2] और श्रीयुक्त वृन्दावनचन्द्र मण्डल जी के बाग में ठहरा था। सो एक दिन उन्होंने अपने स्थान में सभा की। उसमें मैं भी वक्तृत्व करने के वास्ते गया था, तथा बहुत पुरुष सुनने को आए थे। उनसे मैं अपना अभिप्राय कहता था। वे सब लोग सुनते थे। उसी समय में ताराचरण पण्डित जी भी वहां आए। तब उनसे वृन्दावनचन्द्रादिकों ने कहा कि आप सभा में आइये, जो इच्छा हो सो कहिये। परन्तु सभा के बीच में पण्डित ताराचरण नहीं आए, किन्तु ऊपर जाकर दूर से गर्जते थे।

वहां भी उन्होंने जान लिया कि पण्डित जी कहते तो हैं, परन्तु समीप क्यों नहीं जाते। इससे जैसे वे ताराचरण जी थे वैसे ही उन्होंने जान लिये। फिर जब नव घण्टा बज गया तब लोगों ने मेरे से कहा कि अब समय दश घण्टा का है। उठना चाहिए। बहुत रात आ गई।

फिर मैं और सब सभास्थ लोग उठे। उठके अपने-अपने स्थान में चले गए। फिर मैं बाग में चला आया। उसके दूसरे दिन वृन्दा-

---

वनचन्द्र आर्यभाषा में छपवा कर मुद्रित किया। आज तक (सन् १८९७) पांच बार छप चुका है, परन्तु पृथक् पुस्तक [अर्थात् हुगली शास्त्रार्थ] विक्रयार्थ नहीं मिलता।" उर्दू जीवनचरित्र पृ० ७९१ (हिन्दी सं० पृ० ८१७)।

१ अर्थात् भाटपाड़ा ग्राम। हुगली ग्राम हुगली नदी के दाहिने तट पर है, और भाटपाड़ा ग्राम नदी के बायें तट पर लगभग ४ मील दूर दक्षिण पूर्व की ओर है।

२ ऋषि दयानन्द हुगली में चैत्र सुदि ४ सं० १९३० को पधारे थे।

वनमण्डल जी ने मेरे से कहा कि उस वक्त ताराचरण भी आए थे। तब मैंने उनसे कहा कि सभा में क्यों नहीं आए। उन्होंने कहा कि वे तो बड़ा अभिमान करते हैं। तब मैंने उनसे कहा जो अभिमान कर्त्ता है सो पण्डित नहीं होता, किन्तु वह काम मूर्ख का ही है। और जो पण्डित होता है सो तो कभी अपने मुख से अपनी बडाई नहीं कर्ता। जो ताराचरण पण्डित जी अभिमान में डूबे ही जाते होवें, तब तो उनको मेरे पास एक वार ले आइये। फिर वे अभिमानसमुद्र में डूबने से बच जायें तो अच्छा हो। तब वृन्दावनचन्द्रादिकों ने कहा कि आप बाग में चलिये और जैसी आप की इच्छा हो वैसा शास्त्रार्थ कीजिये। पण्डित जी की कुछ इच्छा न देखी। तब वृन्दावनचन्द्र से मैंने कहा कि आप उनसे कहें कि कुछ चिन्ता आप न करें। स्वामी जी ने हमसे कह दिया है कि पण्डित जी प्रसन्नता से आवें। मैं किसी से विरोध नहीं रखता। तब तो पण्डित जी ने कहा कि हम चलेंगे।

सो मङ्गलवार[1] की सन्ध्या समय में बहुत लोग नगर से शास्त्रार्थ सुनने को आये।

वृन्दावनचन्द्र भी बहुत लोगों के साथ आए। तथा पाठशालाओं के अध्यक्ष श्री भूदेव मुकुर्ज्या आए। तथा श्री हरिहर तर्कसिद्धान्त पण्डित भी आए। उसके पीछे पण्डित ताराचरण जी सशिष्य तथा अपने ग्राम निवासियों के साथ आए। (जोकि उनके पक्षपाती थे)। ये सब लोग आके सभा के स्थान में इकट्ठे भये। तब मैं भी उस स्थान में आया। फिर सब यथायोग्य बैठे। तब ताराचरण जी ने प्रतिज्ञा की कि हम प्रतिमा का स्थापनपक्ष लेते हैं। फिर मैंने कहा कि जो आपकी इच्छा हो सो लीजिए, मैं तो इस बात का खण्डन ही करूंगा।

तब उन्ने मुझ से कहा कि इस सवाद में वाद होना ठीक है वा जल्प अथवा वितण्डा? उनसे मैंने कहा कि वाद ही होना उचित है। क्योंकि जल्प और वितण्डा सज्जनों को करना कभी उचित नहीं। वाद गोतमोक्त लेना[2]। तब उनों ने भी स्वीकार किया।

---

१. चैत्र सु० ११ सं० १९३० (८ अप्रैल १८७३)।

२. अर्थात् न्यायशास्त्रप्रतिपादित - प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भः सिद्धान्ता-

फिर दूसरी यह प्रतिज्ञा उस समय में की गई कि ४ चार वेद तथा ४ चार उपवेद, ६ छः वेदों के अङ्ग और छः दर्शन मुनियों के किये, तथा मुनि और ऋषियों के किये छ. शास्त्रों के व्याख्यान[1] उन्हों के वचन प्रमाण से ही कहना। अन्य कोई का प्रमाण नहीं, अर्थात् जो कुछ खण्डन वा मण्डन करना, सो उन्हीं के अक्षरों मे ही करना अन्यथा नहीं। तब उन्ने भी स्वीकार किया। मैंने भी।

(जहां २ तर्करत्न शब्द आवे, वहां २ ताराचरण पण्डितजी को जान लेना। और जहां २ स्वामी शब्द आवे वहां २ दयानन्द सरस्वती स्वामी जी को जान लेना)।

तर्करत्न—पातञ्जलसूत्रम् **चित्तस्य आलम्बने स्थूल आभोगो वितर्क इति व्यासवचनम्**[2]।

[खण्डन]—[3]तर्करत्न के हाथ में पुस्तक भी थी। उस को देखा तब भी मिथ्या ही उन्ने लिखा[4], क्योंकि योगशास्त्र पढ़ा होय, तब उस शास्त्र को जान सक्ता है। तर्करत्न ने पढ़ा तो था नहीं। इस्से उन्ने अशुद्ध लिखा। जो पढ़ा भया होता है, सो ऐसा भ्रष्ट कभी नहीं लिखता।

देखना चाहिए कि ऐसा पातञ्जलशास्त्र में सूत्र ही नहीं है। किन्तु ऐसा सूत्र तो है **विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी**[5] इति। सो इस सूत्र के व्याख्यान में **नासिकाग्रे धारयत** इत्यादिक वहां लिखा है। यह तो उन्ने जाना भी नहीं। इससे उन का लिखना भ्रष्ट है। फिर लिखते हैं कि **इति व्यासवचनम्**। इस प्रकार का वचन व्यास जी ने कहीं योगशास्त्र की व्याख्या मे नहीं लिखा[6]। इस्से यह भी उनका वचन भ्रष्ट ही है।

विरुद्धः पञ्चावयवोपपन्नः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहो वादः ॥ न्याय १।२।१॥

१. द्र०—पूर्व पृष्ठ १० की टिप्पणी ५।

२. द्र०—योगदर्शन १।१७ का व्यासभाष्य।

३. पूर्वमुद्रित पाठ में तर्करत्न के कुछ पाठ को उद्धृत करके साथ ही स्वामी जी का खण्डन मिलता है। ऐसे स्थानों में हमने इस संस्करण में **[खण्डन]** ऐसा संकेत देकर पृथक् दर्शाया है।

४. इस प्रकरण से प्रकट होता है कि यह शास्त्रार्थ लिखित हुआ था।

५. योगदर्शन १।३५॥

६ तर्करत्न द्वारा उद्धृत व्यासवचन यो० द० व्यासभाष्य १।१७ में

फिर यह लिखा कि

[तर्करत्न] – स्वरूपे साक्षात्कृती प्रज्ञा आभोगः, स च स्थूल-विषयत्वात् स्थूल[1] इत्यादि।

खण्डन यह भी उनका लिखना अशुद्ध ही है, क्योंकि प्रतिज्ञा तो ऐसी पूर्व की गई थी कि वेदादिक शास्त्रवचनों से ही प्रतिमा-पूजन का स्थापन हम करेंगे, और वचन फिर लिखा **वाचस्पति** का। इससे तर्करत्न की प्रतिज्ञाहानि हो गई। प्रतिज्ञा की हानि होने से उनका पराजय हो गया। क्योंकि **प्रतिज्ञाहानिः प्रतिज्ञान्तरम्** इत्यादिक **निग्रहस्थान**[2] होते हैं। यद्यपि हम को जय तथा पराजय की इच्छा कभी नहीं है, तथापि गोतम मुनि जी ने इस प्रकार के २६ निग्रहस्थान[2] लिखे हैं।

निग्रहस्थान सब पराजय के स्थान ही होते हैं। और पहिले प्रतिज्ञा की थी कि जल्प[3] और वितण्डा[4] न करेंगे। फिर जाति-साधन[5] से प्रतिमा का स्थापन करने लगे, क्योंकि प्रतिमा भी स्थूल साधर्म्य से आती है।

स्वामी – यावान् जागरितावस्थाविषयः तावान् सर्वः स्थूलः, पुनः इत्यादि। मैंने उन को जापक से जना दिया कि ये गृहस्थ हैं,

---

किञ्चित् पाठ के पौर्वापर्य में उपलब्ध होता है। स्वामी जी का अभिप्राय विचारणीय है।

१ द्र०—योगदर्शन १।१७ के व्यासभाष्य की वाचस्पति मिश्र की टीका।

२. द्र०—न्यायदर्शन ५।२।१॥

३ छल जाति (असद् उत्तर) निग्रहस्थान आदि के द्वारा वादी के मत का खण्डन करना 'जल्प' कहाता है। द्र० –न्यायदर्शन १।२।२॥

४ प्रतिपक्ष की स्थापना से विहीन जल्प 'वितण्डा' कहता है। द्र०—न्या० द० १।२।३॥

५ साधर्म्य और वैधर्म्य के द्वारा वादी के मत का खण्डन करना 'जाति' कहाता है—साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानं जातिः। न्यायदर्शन १।२।१८॥

२—स

इन की अप्रतिष्ठा न हो जाय। तदपि उन ने कुछ नहीं जाना। जानें तो तब, जब कुछ शास्त्र पढ़ा हो अथवा बुद्धि शुद्ध हो। **साधर्म्यवैधर्म्योत्कर्षापकर्ष०** इत्यादिक २४ चौबीस प्रकार का शास्त्रार्थ जाति के विषय में गोतम मुनि जी ने लिखा है[1]। इसके नहीं जानने से जल्प और वितण्डा तर्करत्न ने किये। क्योंकि—

यथोक्तोपपन्नश्छलजातिनिग्रहस्थानसाधनोपालम्भो जल्पः[2] **॥१॥ सप्रतिपक्षस्थापनाहीनो वितण्डा**[3] ॥२॥ जैसा कि इन सूत्रों का अभिप्राय है, वैसा ही तर्करत्न जी ने प्रतिमापूजन का स्थापन करने में जल्प और वितण्डा ही किया।

इससे दूसरी बेर प्रतिज्ञाहानि उन्ने की। द्वितीय पराजय उन का हुआ।

[तर्करत्न]— **यद्युक्तं भवता तेनैव प्रतिमापूजनमेव सिध्यत्येव तस्याः स्थूलत्वात्।**

[**खण्डन**]— इसमें तीन बेर 'एव' शब्द लिखने से यह जाना गया कि ताराचरण जी को संस्कृत का यथावत् बोध भी नहीं है। इससे तर्करत्न जी अभिमान में डूबे जाते हैं, क्योंकि हम बड़े पण्डित हैं। इस प्रकार का जो स्वमुख से कहना है, सोई विद्याहीनता को जनाता है।

फिर लोकान्त[र]स्थ शब्द से मैंने उन को जनाया कि जो चतुर्भुज को आप लेते हो, सो तो वैकुण्ठ में सुने जाते हैं। उप अर्थात् समीप आसना अर्थात् स्थिति सो मनुष्यलोक में रहनेवाला कैसे कर सकेगा? कभी नहीं। और जो पाषाणादिक की मूर्ति शिल्पी की रची भई, सो तो विष्णु है नहीं। तब भी पण्डित जी कुछ नहीं समझे। क्योंकि जो कुछ विद्या पढ़ी होती अथवा सत्पुरुषों का सङ्ग किया होता तो समझ जाते। सो तो कभी किया नहीं। इससे ताराचरण जी उस बात को न समझ सके।

फिर एक कहीं से सुनी-सुनाई ब्राह्मण की श्रुति बिना प्रसङ्ग से पढ़ी। सो यह है

---

१. द्र० — न्यायदर्शन ५।१।१॥ इन २४ प्रकार के जात्युत्तरों का समाधान न्यायदर्शन ५।१।२-३८ तक दर्शाया है।

२. न्यायदर्शन १।२।१॥ ३. न्यायदर्शन १।२।२॥

[तर्करत्नः]—अथ स यदा पितृनावाहयति पितृलोकेन तेन सम्पन्नो महीयते ।

[खण्डन] इस श्रुति से लोकान्तरस्थ की भी उपासना आती है, इस अभिप्राय से देखना चाहिए। इस श्रुति में उपासना लेश-मात्र नहीं आती, क्योंकि यह श्रुति जिस योगी को अणिमादिक सिद्धि हो गई हैं, वह सिद्ध जिस २ लोक में जाने की इच्छा कर्त्ता है, उस-उस लोक को उसी समय प्राप्त होता है। सो जब पितृलोक में जाने की इच्छा कर्त्ता है, पितृलोक को प्राप्त होके आनन्द कर्त्ता है। क्योंकि **तेन पितृलोकेन महीयते** इत्युक्तत्वात्। ऐसे इच्छामात्र से ही ब्रह्मलोकादिक में विहार कर्त्ता है। इस्से इस श्रुति में मर कर उस लोक में जाता है, अथवा पितरों की उपासना इस लोक में कर्त्ता है इस अभिप्राय के नहीं होने से ताराचरण जी का कहना मिथ्या ही है। इस्से क्या आया कि अर्थान्तर का जो कहना है, सो निग्रहस्थान ही है। निग्रहस्थान के होने से पराजय हो गया।

स्वामी—सर्वः स्थूल इत्यनेनेत्यादि देहान्तरगतस्य प्राप्तिस्त्वा-दिति दिव्ययोगदेहप्राप्तिस्त्वाद्योगिनो, न तु प्राकृतदेहस्य माहा-त्म्यमिदमित्यर्थस्य जागरूकत्वात् देहान्तर, अर्थात् जो दिव्ययोग सिद्धियों से प्राप्त होता है। उस देह से यह बात होती है। और जो अयोगी का देह नाम शरीर उस्से कभी यह बात नहीं होती।

तर्करत्नः— प्रथमतः अस्माभिरित्यादि० ।

[खण्डन]—दूषण अथवा भूषण का ज्ञान तो विद्या होने से होता है, अन्यथा नहीं। क्योंकि दूषण तो आपके वचनों में है। परन्तु आपने नहीं जाने। यह आपके बुद्धि का दोष है। जो आपने प्रत्यक्ष दिखाये दूषणों को भी नहीं जाना, ऐसे दूषणों को तो बालक भी जान सक्ता है।

[तर्करत्नः] तन्मध्ये प्रतिमापि वर्त्तते इत्येवेत्यादि ।

[खण्डन] आप देख लीजिये [आपने कहा था] कि हम वाद ही करेंगे, जल्प और वितण्डा कभी नहीं। फिर बार-बार स्थूलत्व-साधर्म्य से ही प्रतिमापूजन स्थापना किया चाहते हो। सो अपनी प्रतिज्ञा को आप ही नाश कर्त्ते हैं। और फिर चाहते हो कि हमारा विजय होवै। सो कभी नहीं हो सक्ता है। क्योंकि विजय तो पूर्ण विद्या और सत्यभाषण करने से होता है। सो आप में एक भी

नहीं। इससे आप विजय की इच्छा कभी मत करो। किन्तु आप को अपने पराजय की इच्छा करनी उचित है। किञ्च जो आप लोगों की इच्छा होवे, तो वेदादिक सत्यशास्त्रों को अर्थ ज्ञान सहित पढ़ना चाहिये। जब आप लोग यथावत् सत्यशास्त्रों को पढ़ेंगे तथा पढ़ावेंगे, तब फिर आप लोगों का पराजय कभी न होगा। किन्तु सर्वत्र विजय ही होगा। अन्यथा नहीं।

[तर्करत्नः] दृष्टान्तत्वेनेत्यादि छान्दोग्य दहरविद्याया[1]-मित्यादि चेति।

[खण्डन]–उस श्रुति का एक अंश भी दार्ष्टान्त में नहीं मिलने से वह आप का कहना मिथ्या ही है। सो मैंने कह दिया, पहिले उससे जान लेना। यह किसने कहा कि जीवता[2] पुरुष को उपासना का अधिकार नहीं है। सो यह आपका कहना मिथ्या ही है। क्योंकि ब्रह्मविद्या का और पाषाणादिक मूर्त्तिपूजन का क्या प्रसङ्ग है। कुछ भी नहीं। इससे वह भी अर्थान्तर है। अर्थान्तर के होने से निग्रहस्थान अर्थात् पराजय का स्थान आपका है। सो आप यथावत् विचार करके जान लेवें।

[तर्करत्नः] प्रथमतः अस्माभिः यत् भवत्पक्ष इत्यादि तत्र प्रतिमादि वर्त्तते इत्येवेति।

[खण्डन] आप जान लेवें कि साधर्म्य हेतु प्रमाण से ही बोलते हैं। इससे आपके कहे जितने दूषण हैं, वे सब आप के ऊपर ही आ गये। क्योंकि आप अपनी प्रतिज्ञा अर्थात् वाद ही हम करेंगे, ऐसी प्रथमतः कह चुके हैं। फिर जल्प और वितण्डा ही वारंवार करते हैं। इससे अपना पराजय आप ही कर चुके। क्योंकि आप को जो विद्या और बुद्धि होती, तो कभी ऐसी भ्रष्ट बात न कर्त्ते। और निग्रहस्थान में वारंवार न आते। आप को संस्कृतभाषण करने का भी यथावत् ज्ञान नहीं है। क्योंकि **प्रथमतः अस्माभिः यत्** ऐसा भ्रष्ट[3] असम्बद्ध भाषण कभी न कर्त्ते। किञ्च **प्रथमतोऽस्माभिर्यद्**

---

१. दहरविद्या का प्रसङ्ग छान्दोग्य उप० प्रपा० ८, खण्ड १ में देखना चाहिये।

२. 'जीवता' यह गुजराती भाषा का शब्द है। जीवता = जीवित।

३. 'भ्रष्ट' से सन्धि का न करना अभिप्रेत है।

ऐसा श्रेष्ठ और सम्बद्ध संस्कृत ही कहते । **दृष्टान्ते सर्वविषयाणां साम्यप्रयोजनं नास्तीति** यह भी आपका कहना भ्रष्ट ही है । क्योंकि मैंने कब ऐसा कहा था कि सब प्रकार से दृष्टान्त मिलता है । वह श्रुति एक अंश से [भी] आप के अभिप्राय से मिलती नहीं । इससे मैंने कहा कि इस श्रुति का पढ़ना आपका मिथ्या ही है । ऐसा ही आप का कहना सब भ्रष्ट है ।

(स्वामी)– **भवत्पक्ष इत्यादि तत्र प्रतिमापि वर्त्तते** यह आप का जो कहना है, सो प्रतिज्ञान्तर ही है । क्योंकि स्थूलत्व तुल्य जो प्रतिमा में और गर्दभादिकों में है, इस हेतु से ही प्रतिमा-पूजन का स्थापन करा चाहते हो । सो फिर भी जल्प और वितण्डा ही आती है, वाद नहीं । इससे वारवार आपका पराजय होता गया । फिर भी आप को बुद्धि वा लज्जा न आई । यह बड़ा आश्चर्य जानना चाहिये कि अभिमान तो पण्डितता का करें, और काम करें अपण्डित का ।

(तर्करत्नः) **प्रतिमापि वर्त्तते इत्यादि, अयं तु प्रकृतविषयस्य साधकः, न तु प्रतिज्ञान्तरं इत्यादि ।**

[खण्डन]—प्रकृत विषय यही है कि प्रतिमा-पूजन का स्थापन, सो स्थापन वाद से और वेदादिक सत्य शास्त्रों के प्रमाण से ही करना । फिर उस प्रतिज्ञा को छोड़के जल्प तथा वितण्डा, और मिथ्या कल्पित वचन ये वाचस्पत्यादिकों के, उनसे स्थापन करने में लग गये । अहो इत्याश्चर्यं कि ताराचरण जी की बुद्धि विद्या के विना बहुत छोटी है । जो प्रतिज्ञा करके शीघ्र ही भूल जाती है । यह आपका दोष नहीं, किन्तु आप की बुद्धि का दोष है । और आपके काम क्रोध अविद्या लोभ मोह भय विषयासक्त्यादिक दोषों का दोष है । तर्करत्न जी ! यह आप देख लीजिये कि कितने बड़े बड़े दोष आप में हैं । प्रथम तो प्रतिमापूजन का स्थापनपक्ष लेके, फिर जब कुछ भी स्थापन न हो सका तब **उपासनामात्रमेव भ्रममूलम्** अपने आप ही खण्डन प्रतिमापूजन का करने लगे कि भ्रममूल अर्थात् प्रतिमापूजन मिथ्या ही है । इससे आपके पक्ष का आपने ही खण्डन कर दिया । फिर मिथ्या ग्रन्थ, जो **पञ्चदशी** उस के प्रमाण देने लग गये । और जो प्रथम वेदादिक जो २० बीस[1]

१. पूर्व पृष्ठ २४ पर ४ वेद, ४ उपवेद, ६ वेदाङ्ग, ६ दर्शनशास्त्र = २० ।

सनातन ऋषि-मुनियों के किये मूल और व्याख्यान तथा परमेश्वर के किये ४ चार[1] वेद इन के प्रमाण से बोलेंगे, सो आप की प्रतिज्ञा मिथ्या हो गयी। प्रतिज्ञा के मिथ्या होने से आपका पराजय भी हो गया। फिर **'भ्रान्तिरस्माकं न दूषणीया'** यह भी पहले आपका कहना है। सो कोई भी पण्डित न कहेगा कि भ्रान्ति भूषण होता है। यह तो आपकी भ्रान्त बुद्धि का ही वैभव है। और जे सज्जन लोग हैं, वे तो भ्रान्ति को दूषण ही जानते हैं। तथा **'भ्रमः खलु द्विविधः** इत्यादि यह पञ्चदशी का वचन है[2], यह भी प्रतिज्ञा से विरुद्ध ही है, क्योंकि वेदादिक शास्त्रों में इस की गणना नहीं है।

पाषाणादिक की रचित मूर्त्ति में देवबुद्धि का जो कर्त्ता है, सो दीपप्रभा में मणिभ्रम की नांई ही है। क्योंकि दीप तो कभी मणि न होगा और मणि सदा मणि ही रहेगा। सो आपने मुख से तो कहा परन्तु हृदय में शून्यता के होने से कुछ भी नहीं जाना। ऐसा ही आपका सब कथन भ्रष्ट है। आपको जो कुछ भी ज्ञान होय, तब तो जान सकते, अन्यथा नहीं। तर्करत्न जी ने आगे-आगे जो-जो कुछ कहा है सो-सो सब भ्रष्ट ही है। बुद्धिमान् लोग विचार लेवें। ताराचरण जी इस प्रकार के मनुष्य हैं कि कोई बुद्धिमान् [के] सामने जैसा बालक। और भाषण वा श्रवण करने के योग्य भी नहीं, क्योंकि जिस को बुद्धि और विद्या होती है सोई कहने वा श्रवण में समर्थ होता है। सो तर्करत्न जी [में] न बुद्धि है और न कुछ विद्या है। इससे न कहने और सुनने में समर्थ हो सकते हैं।

इनका नाम जो तर्करत्न कोई ने रक्खा है सो अयोग्य ही रक्खा है। क्योंकि **'अविज्ञाते तत्त्वेऽर्थे कारणोपपत्तितस्तत्त्वज्ञानार्थमूहस्तर्कः'**[3] यह गोतम मुनि जी का सूत्र है। इसका यह अभिप्राय है कि जिस पदार्थ का तत्त्वज्ञान अर्थात् जिसका यथावत् स्वरूप ज्ञान न होवे, उस के ज्ञान के वास्ते कारण अर्थात् हेतु और प्रत्यक्षादि

१ चार वेदों की गणना पूर्वलिखित २० ग्रन्थों में हो चुकी है। अतः पुनः निर्देश अनावश्यक है।

२. अप्राप्तमूल।

३ न्यायदर्शन १।१।४०॥

प्रमाणों की उपपत्ति अर्थात् यथावत् युक्ति से ऊह नाम वितर्क[1] अर्थात् विविध विचार, और युक्तिपूर्वक विविध वाक्य कहना विनयपूर्वक श्रेष्ठों से उसको कहते हैं 'तर्क'। सो इस का लेशमात्र सम्बन्ध भी ताराचरण जी में नहीं होने से तर्करत्न तो नाम अनर्थक है। किन्तु इनके कथन में थोड़े से दोष मैंने दिखाये हैं, जैसा कि समुद्र के आगे एक बिन्दु। किन्तु उनके भाषण में केवल दोष ही हैं, गुण एक भी नहीं। सो विद्वान् लोग विचार कर लेवें।

वेई ये ताराचरण जी हैं कि जब काशी नगर के पण्डितों से आनन्द बाग में सभा भई थी[2], उसमें बहुत विशुद्धानन्द स्वामी तथा बाल शास्त्री इत्यादिक पण्डित आये थे। उनके सामने डेढ़ पहर तक एक बात में मौन करके बैठे रहे थे। दूसरी बात भी मुख से नहीं निकली थी। और जो उन का कुछ भी सामर्थ्य होता, तो अन्य पंडित लोग क्यों शास्त्रार्थ कर्त्ते ? जब उनने **"उपासनामात्रमेव भ्रममूलम्"** [कहा, तब] उसी वक्त **श्री भूदेव मुख्यर्जी** आदिक श्रेष्ठ लोग उठ गये कि पण्डित आये तो प्रतिमापूजन का स्थापन करने को, किन्तु वह अपना आप खण्डन कर चुके। ये पण्डित कुछ भी नहीं जानते हैं, ऐसा कहके उठके चले गये। फिर अन्य पुरुषों से उन्होंने कहा कि पण्डित हार गया।

स्वामी – श्रीमत्कथनेनैव प्रतिमापूजनविघातो जात एवेति शिष्टा विचारयन्तु। ताराचरण जी से मैंने कहा कि आपके कहने से ही प्रतिमापूजन का विघात अर्थात् खण्डन हो गया, और मैं तो खण्डन कर्त्ता ही हूं।

फिर पण्डित जी चुप होके ऊपर के स्थान में चले गये। उसके पीछे मैं भी ऊपर जाने को चला। तब पण्डित सीढ़ि में मिले। मैंने उनका हाथ पकड़ लिया, और कहा कि ऊपर आओ। फिर ऊपर जाके सब वृन्दावनचन्द्रादिकों के सामने उन पण्डित ताराचरण से मैंने कहा कि आप ऐसा बखेड़ा क्यों करते फिरते हैं ?

तब वे बोले कि 'मैं तो काकभाषा का खण्डन करता हूं, और सत्यशास्त्र पढ़ने तथा पढ़ाने का उपदेश भी करता हूं। और पाषा-

---

१. द्र० – 'ऊह वितर्के' धातु। धातुपाठ १।४३१॥

२. अर्थात् काशी शास्त्रार्थ।

णादिक मूर्त्तिपूजन भी मिथ्या ही जानता हूं, परन्तु मैं जो सत्य-सत्य कहूं तो मेरी आजीविका नष्ट हो जाय, तथा काशीराज महाराज जो सुनें, तो मुझ को निकाल बाहर कर देवें। इस्से मैं सत्य-सत्य नहीं कह सकता, जैसे कि आप सत्य-सत्य कहते हैं।'

देखना चाहिये कि इस प्रकार के मनुष्यों से जगत् का उपकार तो कुछ नहीं बनता किन्तु अनुपकार ही सदा बनता है। बिना सत्य-सत्य उपदेश के उपकार कभी नहीं हो सकता। इतना मेरे को अवकाश नहीं है कि मिथ्यावादिपुरुषों के साथ सम्भाषण किया करूं। जो-जो मैंने लिखा है इस में इसी से सज्जन लोग जान लेवें।'[1]

[प्रतिमादि-शब्द-विचार]

इस के आगे जिन शब्दों के अर्थ के नहीं जानने से टीकाकारों को भ्रम हो गया है तथा नवीन ग्रन्थ बनानेवाले और कहनेवाले तथा सुननेवाले को भी भ्रम होता है, उन शब्दों का शास्त्ररीति तथा प्रमाण और युक्ति से जो ठीक-ठीक अर्थ है, उन्हों का प्रकाश संक्षेप से लिखा जाता है

प्रथम तो एक प्रतिमा शब्द है--**प्रतिमीयते यया सा प्रतिमा अर्थात् प्रतिमानम्**। जिस्से प्रमाण अर्थात् परिमाण किया जाय उस को कहना प्रतिमा, जैसे कि छटाक, आध पाव, पावसेर, सेर, पसेरी इत्यादिक और यज्ञ के चमसादिक पात्र, क्योंकि इन से पदार्थों के परिमाण किये जाते हैं। इस्से इन्हों का ही नाम है **प्रतिमा**। यही अर्थ मनु भगवान् ने मनुस्मृति [में] लिखा है -

तुलामानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात् सुलक्षितम्।
षट्सु षट्सु च मासेषु पुनरेव परीक्षयेत्॥[2]

पक्ष-पक्ष मास-मास में अथवा छटवें छटवें मास तुला की राजा परीक्षा करे। क्योंकि तराजू की दण्डी में भीतर छिद्र करके पारा उसमें डाल देते हैं। जब कोई पदार्थ को तोलके लेने लगते हैं, तब दंडी को पीछे नमा देते हैं। फिर पारा पीछे जाने से चीज अधिक

१. यहां पर शास्त्रार्थ समाप्त हो जाता है। इसमे आगे प्रतिमापूजन की विस्तृत आलोचना है।   २. मनु० ८।४०३॥

आती है। और जब देने के समय में दण्डी आगे नमा देते हैं उस्से चीज थोडी जाती है। इस्से तुला की परीक्षा अवश्य करनी चाहिये तथा प्रतिमान अर्थात् प्रतिमा की भी परीक्षा अवश्य करे राजा। जिस्से कि अधिक न्यून प्रतिमा, अर्थात् दुकान के बांट जितने हैं उन्हीं का ही नाम है प्रतिमा। इसी वास्ते प्रतिमा के भेद [क] अर्थात् घाट बाढ़ तोलनेवाले के ऊपर दण्ड लिखा है –

संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः।
प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पञ्च दद्याच्छतानि च॥[1]

यह मनु जी का श्लोक है। इसका अभिप्राय है कि संक्रम अर्थात् रथ के ध्वजा की यष्टि, जिस के ऊपर ध्वजा बांधी जाती है, और प्रतिमा छटांक आदिक बटखरे[2] इन तीनों को तोड़ डाले वा अधिक न्यून कर देवें उन को उस्से राजा बनवा लेवें, और जैसा जिस का ऐश्वर्य उसके योग्य दण्ड करे। जो दरिद्र होवें तो उस्से ५०० पांच सौ पैसा राजा दण्ड लेवें। जो कुछ धनाढ्य होवें उस्से ५०० सौ अशर्फी दण्ड लेवें, रथादिकों को उसी के हाथ से बनवा लेवें। इस्से सज्जन लोग बटखरा तथा चमसादिक यज्ञ के पात्र उन्हीं को ही प्रतिमा शब्द से निश्चित जानें।

दूसरा पुराण शब्द है – **पुराभवं पुराभवा वा पुराभवश्च इति पुराणं पुराणी पुराणः**। जो पुराणा पदार्थ होवे, उस को कहते हैं पुराण। सो सदा विशेषणवाची ही रहता है, तथा पुरातन प्राचीन और प्राक्तन आदिक सब शब्द हैं। तथा इनों के विरोधी विशेषणवाची नूतन नवीन अद्यतन अर्वाचीन आदिक शब्द हैं जे विशेषणवाची शब्द होते हैं, वे सब परस्पर व्यावर्तक होते हैं। जैसे कि यह चीज पुरानी है तथा यह चीज नवीन है। पुराण शब्द जो है सो नवीन शब्द की व्यावृत्ति कर देता है। यह पदार्थ पुराना है अर्थात् नया नहीं, और यह पदार्थ नया है अर्थात् पुराना नहीं। जहां-जहां वेदादिकों में पुराणादिक शब्द आते हैं, वहां-वहां इन अर्थों के वाचक ही आते हैं, अन्यथा नहीं। ऐसा ही अर्थ गोतम मुनि जी के किये सूत्रों के ऊपर जो वात्स्यायन मुनि का किया भाष्य उसमें

---

१. मनु० ९।२८५॥ २. बटखरे = बाट।

लिखा है'—वहां ब्राह्मण पुस्तक जे शतपथादिक, उनों का ही नाम पुराण है।

तथा शङ्कराचार्य जी ने भी शारीरक भाष्य में और उपनिषद्-भाष्य में ब्राह्मण और ब्रह्मविद्या का ही 'पुराण' शब्द से ग्रहण किया है²। जो देखा चाहै, सो उन शास्त्रों में देख लेवें। वह इस प्रकार से कहा है कि जहां-जहां प्रश्न और उत्तरपूर्वक कथा होवे, उसका नाम **इतिहास** है। और जहा-जहां वंश कथा होवे ब्राह्मण पुस्तकों में, उसका नाम **पुराण** है. और ऐसे जो कहते हैं कि १८ अठारह ग्रन्थों का नाम पुराण है, यह बात तो अत्यन्त अयुक्त है। क्योंकि उस बात का वेदादिक सत्य शास्त्रों में प्रमाण कहीं नहीं है, और कथा भी इनों में अयुक्त ही है। इनों का नाम कोई पुराण रक्खे, तो इनों से पूछना चाहिये कि वेद क्या नवीन हो सकते हैं? सब ग्रन्थों से वेद ही पुराने हैं।

और यह बात कहते हैं कि 'अश्वमेध की जो पूर्ति हो जाय, उसके १० में दिन पुराण की कथा यजमान सुनें³। सो तो ठीक-ठीक है कि ब्राह्मण पुस्तक की कथा सुनें। और जो ऐसा कहे कि ब्रह्म-वैवर्तादिकों की क्यों नहीं सुनें? इसे पूछना चाहिये कि सत्ययुग त्रेता और द्वापर में जब-जब अश्वमेध भये थे, तब-तब किस की कथा सुनी थी? क्योंकि उस वक्त व्यास जी का जन्म भी नहीं भया था, तब पुराण कहां थे? और जो ऐसा कहै कि व्यास जी युग-युग में थे। यह बात भी उसकी मिथ्या है, क्योंकि अब तक

१. लोकव्यवस्थापनमितिहासपुराणस्य ॥४।१।६२॥

२ श्री शङ्कराचार्य ने बृ० उ० २।४।१० में पठित इतिहास और पुराण के उदाहरण ब्राह्मणग्रन्थों के ही दिये हैं। यथा इतिहास इति—उर्वशीपुरूरवसोः संवादादिः, 'उर्वशी हाप्सराः' इत्यादि ब्राह्मणमेव। पुराणम् —'असद्वा इदमग्र आसीत्' इत्यादि॥ तै० आ० ८।२१ के भाष्य में सायणाचार्य ने भी स्पष्ट लिखा है ब्राह्मणं चाष्टधा भिन्नम्। तदुक्तं वाजसनेयिभिराम्नायन्ते इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्रा-ण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि (बृ० उ० २।४।१०)। इसके अनन्तर सायणाचार्य ने भी शङ्कराचार्य के समान ही इतिहासादि के उदाहरणों के रूप में ब्राह्मणवाक्य ही उद्धृत किये हैं।

३. शतपथब्राह्मण १३।४।३।१३ में अश्वमेध के नवम दिन पुराण सुनने

युधिष्ठिरादिकों का निशान दिल्ली आदिकों में देख पड़ता है[1]। उसी वक्त व्यास जी और व्यास जी की माता आदिक वर्तमान थे। इस्से यह भी उस का कहना मिथ्या ही है। पुराण जितने हैं ब्रह्मवैवर्त्तादिक, वे सब सम्प्रदायी लोगों ने अपने-अपने मतलब के वास्ते बना लिए हैं। व्यास जी का वा अन्य ऋषि-मुनियों का किया एक भी पुराण नहीं है। क्योंकि वे बड़े विद्वान् थे और धर्मात्मा। उनका वचन सत्य ही है[2] तथा छः दर्शनों में उनों के सत्य वचन देखने में आते हैं, मिथ्या एक भी नहीं [है]। और पुराणों में मिथ्या कथा तथा परस्पर विरोध ही है। और जैसे वे सम्प्रदायी लोग हैं, वैसे ही उनके बनाये पुराण भी सब नष्ट[3] हैं। सो सज्जनों को ऐसा ही जानना उचित है अन्यथा नहीं।

तीसरा **देवालय** और चौथा **देवपूजा** शब्द है। देवालय, देवायतन, देवागार तथा देवमन्दिर इत्यादिक सब नाम यज्ञशालाओं के ही हैं, क्योंकि जिस स्थान में देवपूजा होवे उसके नाम हैं देवालयादिक। और देव संज्ञा है परमेश्वर की, तथा परमेश्वर की आज्ञा, जो वेद उसके मन्त्रों की भी देव संज्ञा है। देव जो होता है सोई देवता है। यह बात पूर्वमीमांसा शास्त्र में विस्तार से लिखी है।[4] जिस को देखने की इच्छा हो, वह उस शास्त्र में देख ले, जो कि शास्त्र कर्मकाण्ड के ऊपर है। वे जैमिनि मुनि के किये सूत्र हैं। यहां तक उसमें लिखा है कि ब्रह्मा विष्णु महादेवादिक देव जे देवलोक में रहते हैं, उनका भी पूजन कभी न करना चाहिये[5], एक परमेश्वर के

का विधान किया है - **अथ नवमेऽहनि ·· ·· तानुपदिशति पुराणं वेदः, सोऽयमिति किञ्चित् पुराणमाचक्षीत** ॥ शाङ्खायन श्रौत १६।२।२५-२७ में भी नवम दिन में पुराण पाठ का निर्देश है। माध्य० श्रौत १०।७ में **आठवें** दिन में पुराण श्रवण का विधान है।

१ यह सम्भवतः 'पाण्डवों के किले' की ओर संकेत है।

२ इस पर इस पुस्तक के द्वितीय भाग के अन्त में द्वितीय परिशिष्ट में टिप्पणी देखें।

३ यहां 'सब भ्रष्ट हैं' ऐसा शुद्ध पाठ होना चाहिये।

४ मीमांसा ६।१।६-९ के 'मन्त्र-देवताधिकरण' में मन्त्र को ही देवता माना गया है। द्र०—इस अधिकरण का शाबरभाष्य।

५. मीमांसा ६।१।६-९ के 'मन्त्र-देवताधिकरण' में विग्रहवती -

बिना। सो उसमें इस प्रकार से निषेध किया है कि —**'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्'**[1] यह यजुर्वेद की श्रुति है। ब्रह्मादिक जे देव वे जब यज्ञ कर्त्ते हैं, तब उनों से अन्य कौन देव हैं, जे कि उनके यज्ञों में आके भाग लेवें। सो उनों से आगे कोई देव नहीं है। और जो कोई मानेगा, तो उस के मत में अनवस्था दोष आवेगा। इससे परमेश्वर और वेदों के मन्त्र उनों को ही देव और देवता मानना उचित है, अन्य कोई को नहीं।

अग्निर्देवतेत्यादिक[2] जो यजुर्वेद में लिखा है सो अग्नि आदिक सब नाम परमेश्वर के ही हैं, क्योंकि देवता शब्द के विशेषण देने से। इसमें मनुस्मृति का प्रमाण है—

आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम्।
आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणाम्॥१॥
प्रशासितारं सर्वेषाम् अणीयांसमणोरपि।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम्॥२॥
एतमग्निं वदन्त्येके मनुमेके प्रजापतिम्।
इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्॥३॥[3]

इन श्लोकों से आत्मा जो परमेश्वर उसी का नाम देवता है। और अग्न्यादिक जितने नाम हैं, वे भी परमेश्वर के ही हैं। परन्तु जहां-जहां ऐसा प्रकरण हो कि उपासना स्तुति प्रार्थना तथा इस

शरीरधारिणी देवता का खण्डन भाष्यकार शबरस्वामी ने स्पष्ट शब्दों में किया है। जब देवता शरीरधारिणी है ही नहीं, तब भला उसका यज्ञ में आह्वान कैसे किया जा सकता है? अतः यदि दुर्जनतोष न्याय से ब्रह्मा विष्णु आदि देवों की सत्ता देवलोक में मान भी लें, तो भी उनका यज्ञ में आह्वान नहीं होता है। सायणाचार्य ने इन्द्र आदि देवों की सत्ता मानते हुए भी अपने ऋग्भाष्य के उपोद्घात के आरम्भ में 'तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः' मन्त्र के व्याख्यान में भी लिखा है **'यद्यपि इन्द्रादयस्तत्रतत्र हूयन्ते, तथापि परमेश्वरस्यैव इन्द्रादिरूपेणावस्थानात्।** इससे भी स्पष्ट है कि वेद में जहां-जहां इन्द्रादि का आह्वान दृष्टिगोचर होता है, वहां-वहां इन्द्रादि से परमेश्वर का ही ग्रहण अभिप्रेत है। १. यजुः ३१।१६॥

२. यजुः १४।२०॥

३. मनु॰ १२।११९, १२२,१२३॥ [१२३ में कुछ पाठभेद है]।

प्रकार के विशेषण, वहां-वहां परमेश्वर का ही ग्रहण होता है अन्यत्र नहीं[1]। किन्तु **सर्वमात्मन्यवस्थितम्** सिवाय परमेश्वर के कोई में सब जगत् नहीं ठहर सकता और **प्रशासितारं सर्वेषाम्** इत्यादिक विशेषणों से परमेश्वर का ही ग्रहण होता है, अन्य का नहीं। क्योंकि सब का शासन करनेवाला विना परमेश्वर के कोई नहीं। तथा सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म और परपुरुष परमेश्वर से भिन्न ऐसा कोई नहीं हो सकता है। निरुक्त में भी यह लिखा है कि— **यत्र देवतोच्यते तत्र तल्लिङ्गो मन्त्रः।**[2] जहां-जहां देवता शब्द आवे, तहां-तहां उस नामवाले मन्त्र को ही लेना। जैसे कि **अग्निर्देवता**[3] इसमें अग्नि शब्द आया, सो जिस मन्त्र में अग्नि शब्द होवे, उस मन्त्र का ही ग्रहण करना। **अग्निमीडे पुरोहितम्**[4] इति यह मन्त्र ही देवता है, अन्य कोई नहीं। इससे क्या आया कि **परमेश्वर और वेदों के मन्त्र तो देव और देवता हैं।**

जिस स्थान में होम, परमेश्वर का विचार, ध्यान और समाधि करें, उसके नाम हैं **देवालयादिक**। इसमें मनुस्मृति का प्रमाण भी है—

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिसेवनम् ॥१॥
स्वाध्यायेनार्चयेदर्षीन् होमैर्देवान् यथाविधि ।
पितॄन् श्राद्धैर्नृनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा ॥२॥[5]

---

१. तुलना करो सत्यार्थप्रकाश प्रथम समु०, पृष्ठ २०, पं० २२-२५, रालाकट्रस० २; तथा आर्याभिविनय उपोद्घात प्रकरण। द्र०—दयानन्दीयलघुग्रन्थसंग्रहान्तर्गत, पृष्ठ ४१, रालाकट्रस०।

२. निरुक्त में ऐसा साक्षात् वचन नहीं है। यह मीमांसा के '**अपि वा शब्दपूर्वत्वाद् यज्ञकर्म प्रधानं स्याद्, गुणत्वे देवताश्रुतिः**' (९।१।९) सूत्र के अनुसार मीमांसकों का सिद्धान्त है। 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' वेदविषय विचार पृ० ६८, रालाकट्रस० में '**अथातो दैवतम् ··· तद्दैवतः स मन्त्रो भवति**' (नि० ७।१) के व्याख्यान में लिखा है—"**अतः किं विज्ञेयम्—यत्र यत्र देवतोच्यते तत्र तत्र तल्लिङ्गो मन्त्रो ग्राह्य इति**"। इससे यह भी सम्भव है कि यहां भी ऋषि दयानन्द ने निरुक्त के उक्त वचन का स्वशब्दों में अनुवाद किया हो।

३. यजुः १४।२०॥

४. ऋ० १।१।१॥

५. मनु० ३।७०,८१॥

इन श्लोकों से क्या आया कि होम जो है सोई देवपूजा है, अन्य कोई नहीं। और होमस्थान जितने हैं, वे ही देवालयादिक शब्दों से लिये जाते हैं। पूजा नाम सत्कार, **क्योंकि 'अतिथिपूजनम् होमैर्देवानर्चयेत्'**[1] अर्थात् अतिथियों का पूजन नाम सत्कार करना तथा देव परमेश्वर और मन्त्र इन्हों का सत्कार इसका नाम है पूजा, अन्य का नहीं। और पाषाणादि मूर्त्तिस्थान देवालयादिक शब्दों से कभी नहीं लेना। तथा घण्टानादादि पूजा शब्द से कभी नहीं लेना।

देवस्व और **देवलक** शब्द का यह अर्थ है कि—

यद्वित्तं यज्ञशीलानां देवस्वं तद्विदुर्बुधाः।
अयज्वनां तु यद्वित्तमासुरस्वं प्रचक्षते ॥१॥[2]

यह मनु का श्लोक है। इसका यह अभिप्राय है कि जिन्हों का यज्ञ करने का शील अर्थात् स्वभाव होवे, उसका सब धन यज्ञ के वास्ते ही होता है अर्थात् देवार्थ धन है। **यद् दैवं तदेव देवस्वम्** अर्थात् होम के लिये जो धन होवे उसका नाम **देवस्व** है। सो भिक्षा अथवा प्रतिग्रह करके यज्ञ के नाम से धन लेके यज्ञ तो करे नहीं और उस धन से अपना व्यवहार करे, इसका नाम है **देवल**। सो इसकी शास्त्र में निन्दा लिखी है। देव-पितृकार्य में उसको निमन्त्रण कभी न करना चाहिये[3]। ऐसा उसका निषेध लिखा है। और जो यज्ञ के धन की चोरी कर्त्ता है वह होता है **देवलक**[4] – **कुत्सितो देवलो देवलकः, 'कुत्सिते'**[5] **इत्यनेन कन् प्रत्ययः**। देवलक तो अत्यन्त निन्दित है।

एक यह अन्धकार लोगों का देखना चाहिये कि **'विद्वान् भोजनीयः सत्कर्त्तव्यश्चेति'** विद्वान् को भोजन कराना चाहिये और उसका सत्कार भी करना चाहिये। इससे कोई की ऐसी बुद्धि न होगी कि पाषाणादिक मूर्ति को भोजन कराना वा उसका सत्कार करना चाहिये। वह भी बात ऐसी ही है।

---

१ मनु० ३।८१॥ २ मनु० ११।२०॥ [मनु में 'यद्धन' पाठ है।]

३ द्र०—मनु० ३।१५२॥

४ देवकोशोपभोजी च नाम्ना देवलको भवेत्। यह वचन देवल-वचन (=देवलस्मृतिवचन) के नाम से मनु० ३।१५२ की व्याख्या में कुल्लूकभट्ट ने उद्धृत किया है। ५. अष्टा० ५।३।७४॥

एक बात वे लोग कहते हैं कि पाषाणादिक तो देव नहीं हैं, परन्तु भाव से वे देव हो जाते हैं। उनसे पूछना चाहिये कि भाव सत्य होता है वा मिथ्या[1] ? जो वे कहें कि भाव सत्य होता है, फिर उन से पूछना चाहिये कि कोई भी मनुष्य दुःख का भाव नहीं करता, फिर उसको क्यों दुःख है ? और सुख का भाव सब मनुष्य सदा चाहते हैं, फिर उनको सुख सदा क्यों नहीं होता ? फिर वे कहते हैं कि यह बात तो कर्म से होती है। अच्छा तो आपका भाव कुछ भी नहीं ठहरा अर्थात् मिथ्या ही हुआ, सत्य नहीं हुआ। आप से मैं पूछता हूं कि अग्नि में जल का भाव करके हाथ डाले तो क्या वह न जल जायगा ? किन्तु जल ही जायगा। इस्से क्या आया कि पाषाण को पाषाण ही मानना, और देव को देव मानना चाहिये, अन्यथा नहीं। इस्से जो जैसा पदार्थ है वैसा ही उसको सज्जन लोग मानें।

काश्यादिक स्थान, गंगादिक तीर्थ, एकादशी आदिक व्रत, राम शिव कृष्णादिक नामस्मरण तथा तोबा शब्द वा यीशू के विश्वास से पापों का छूटना और मुक्ति का होना, तिलक छाप माला धारण तथा शैव शाक्त गाणपत्य वैष्णव क्रिश्चन और महम्मदी और नान्हक कबीर आदिक सम्प्रदाय इन्हों से पाप सब छूट जाते हैं और मुक्ति भी होती है, यह अन्यथा बुद्धि ही है। क्योंकि इस प्रकार के सुनने और मिथ्या निश्चय के होने से सब लोग पापों में प्रवृत्त हो जाते हैं, कोई न भी होगा, कभी कोई मनुष्य पाप करने में भय नहीं करते हैं। जैसे

अन्यक्षेत्रे कृतं पापं काशीक्षेत्रे विनश्यति।
काशीक्षेत्रे कृतं पापं पञ्चक्रोश्यां विनश्यति॥१॥
पञ्चक्रोश्यां कृतं पापमन्तर्गृह्यां विनश्यति।
अन्तर्गृह्यां कृतं पापमविमुक्ते विनश्यति॥२॥
अविमुक्ते कृतं पापं स्मरणादेव नश्यति।
काश्यां तु मरणान्मुक्तिर्नात्र कार्या विचारणा॥३॥

इत्यादिक श्लोक काशीखण्डादिकों में लिखे हैं। काश्यां

---

१. यह विचार 'सत्यार्थप्रकाश' समु० ११ में भी किया गया है। द्र० —पृ० ४८४ रालाकट्रस० २।

मरणान्मुक्तिः कोई पुरुष इसको श्रुति कहता है। सो यह वचन उसका मिथ्या ही है, क्योंकि चारों वेदों के बीच में कहीं नहीं है। कोई ने मिथ्या '**जाबालोपनिषद्**'[1] रच लिया है, किन्तु अथर्ववेद के संहिता में तथा कोई वेद के ब्राह्मण में इस प्रकार की श्रुति है नहीं। इससे यह श्रुति तो कभी हो नहीं सकती, किन्तु कोई ने मिथ्या कल्पना करली है। जैसे कि **अन्यक्षेत्रे कृतं पापं** इत्यादि श्लोक मिथ्या बना लिये हैं। इस प्रकार के श्लोकों को सुनने से मनुष्यों की बुद्धि भ्रष्ट होने से सदा पाप में प्रवृत्त हो जाते हैं। इससे सब सज्जन लोगों को निश्चित जानना चाहिये कि जितने-जितने इस प्रकार के माहात्म्य लिखे हैं, वे सब मिथ्या ही हैं। इनों से मनुष्यों का बड़ा अनुपकार होता है। जो कोई धर्मात्मा बुद्धिमान् राजा होवे, तो इन पुस्तकों का पठन-पाठन सुनना-सुनाना बन्द करदे, और वेदादि सत्यशास्त्रों की यथावत् प्रवृत्ति करा देवे। तब इस उपद्रव की यथावत् शान्ति होने से सब मनुष्य शिष्ट हो जायं, अन्यथा नहीं।

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी ॥

[योग० समा० सू० ३५]

इस सूत्र के भाष्य में लिखा है कि "**एतेन चन्द्रादित्यग्रहमणिप्रदीपरत्नादिषु प्रवृत्तिरुत्पन्ना विषयवत्येव वेदितव्येति**। इससे प्रतिमापूजन कभी नहीं आसक्ता, क्योंकि इनों में देवबुद्धि करना नहीं लिखा। किन्तु जैसे वे जड़ हैं, वैसे ही योगी लोग उनको जानते हैं। और बाह्यमुख जो वृत्ति उसको भीतर-मुख करने के वास्ते योगशास्त्र की प्रवृत्ति है, बाहर के पदार्थ का ध्यान करना योगी लोग को नहीं लिखा। क्योंकि जितने सावयव पदार्थ हैं, उनमें कभी चित्त की स्थिरता नहीं होती। और जो होवे, तो मूर्तिमान् धन पुत्र दारादिक के ध्यान में सब संसार लगा ही है परन्तु चित्त की स्थिरता कोई की भी नहीं होती। [इस] वास्ते यह सूत्र लिखा —

'**विशोका वा ज्योतिष्मती**' [योग० समा० सू० ३६] इसका यह भाष्य है—

---

१ जाबालोपनिषद् ९, मुक्तिकोपनिषद् १।१८ दोनों स्थलों में उक्त भाव है, वहां उपर्युक्त पाठ नहीं है।

'प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनीत्यनुवर्तते। हृदयपुण्डरीके धारयतो या बुद्धिसंविद् बुद्धिसत्त्वं हि भास्वरमाकाशकल्पम्, तत्र स्थितिवैशारद्यात् प्रवृत्तिः सूर्येन्दुग्रहमणिप्रभारूपाकारेण विकल्पते। तथास्मितायां समापन्नं चित्तं निस्तरङ्गमहोदधिकल्पं शान्तमनन्तमस्मितामात्रं भवति। यत्रेदमुक्तम् - तमणुमात्रमात्मानमनुविद्यास्मीति एवं तावत् संप्रजानीत इति। एषा द्वयी विशोका विषयवती अस्मितामात्रा च प्रवृत्तिर्ज्योतिष्मतीत्युच्यते, यया योगिनश्चित्तं स्थितिपदं लभत इति।'

इसमें देखना चाहिये कि हृदय में धारणा चित्त की लिखी। इससे निर्मल प्रकाशस्वरूप चित्त होता है। जैसा सूक्ष्म विभु आकाश है, वैसी ही योगी की बुद्धि होती है। 'तत्र' नाम अपने हृदय में विशाल स्थिति के होने से बुद्धि की जो शुद्ध प्रवृत्ति, सोई बुद्धि सूर्य चन्द्र ग्रह मणि इनों की जैसी प्रभा, वैसी ही योगी की बुद्धि समाधि में होती है। तथा अस्मिता मात्रा अर्थात् 'यही मेरा स्वरूप है' ऐसा साक्षात्कार स्वरूप का ज्ञान बुद्धि को जब होता है तब चित्त निस्तरङ्ग अर्थात् निष्कम्प समुद्र की नाईं एकरस व्यापक होता है। तथा शान्त निरुपद्रव अनन्त अर्थात् जिसकी सीमा न होवै यही मेरा स्वरूप है अर्थात् मेरा आत्मा है। सो विशत अर्थात् शोकरहित जो प्रवृत्ति वही विषयवती प्रवृत्ति कहाती है। उसी को अस्मितामात्र प्रवृत्ति कहते है। तथा ज्योतिष्मती भी उसी को कहते हैं। **योगी का जो चित्त है, सोई चन्द्रादित्य आदिक स्वरूप हो जाता है।**

सू० — स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा ॥ [योग० समा० सू० ३८]

भाष्य — स्वप्नज्ञानालम्बनं निद्राज्ञानालम्बनं वा तदाकारं योगिनश्चित्तं स्थितिपदं लभत इति।

जैसे स्वप्नावस्था में चित्त ज्ञानस्वरूप होके पूर्वानुभूत संस्कारों को यथावत् देखता है, तथा निद्रा अर्थात् सुषुप्ति में आनन्दस्वरूप ज्ञानवान् चित्त होता है, ऐसा ही जागृतावस्था में जब योगी ध्यान करता है। इस प्रकार आलम्ब से तब योगी का चित्त स्थिर हो जाता है।

सू० यथाभिमतध्यानाद्वा । [योग० समा० सू० ३९]

भाष्य॰ यदेवाभिमतं तदेव ध्यायेत् । तत्र लब्धस्थितिकमन्यत्रापि स्थितिपदं लभत इति ।

नासिकाग्रे धारयतो[ऽस्य] या [दिव्य]गन्धसंवित् [व्यासभाष्य समा॰ सू॰ ३५] इस से लेके निद्राज्ञानालम्बनं वा [व्यासभाष्य समा॰ सू॰ ३८] यहां तक शरीर में जितने चित्त के स्थिर करने के वास्ते स्थान लिखे हैं इनों में से कोई स्थान में योगी चित्त को धारण करे। जिस स्थान में अपनी अभिमति उस में चित्त को ठहरावे ।

सू॰ देशबन्धश्चित्तस्य धारणा । [योग॰ विभू॰ सू॰ १]

भाष्य॰ – नाभिचक्रे हृदयपुण्डरीके मूर्ध्नि ज्योतिषि नासिकाग्रे जिह्वाग्र इत्येवमादिषु देशेषु बाह्ये वा विषये चित्तस्य वृत्तिमात्रेण बन्ध इति । बन्धो धारणा ।

नाभि हृदय मूर्द्धा ज्योति [अर्थात्] नेत्र नासिकाग्र जिह्वाग्र इत्यादिक देशों के बीच में चित्त को योगी धारण करे । तथा बाह्य विषय जैसा कि ओङ्कार वा गायत्री मन्त्र, इनमें चित्त लगावे हृदय से । क्योंकि

सू॰ तज्जपस्तदर्थभावनम् । [योग॰ समा॰ सू॰ २८]

यह सूत्र है योग का । इस ओङ्कार का योगी जप अर्थात् चित्त से पुनः पुनः आवृत्ति करे, और इसका अर्थ जो ईश्वर उसको हृदय में विचारे ।

सू॰ तस्य वाचकः प्रणवः । [योग॰ समा॰ सू॰ २७]

ओङ्कार का वाच्य ईश्वर है और उनका वाचक ओङ्कार है । 'बाह्य विषय' से इनको ही लेना, और कोई नहीं । क्योंकि अन्य का प्रमाण कहीं नहीं ।

सू॰ [तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् । [योग॰ विभू॰ सू॰ २]

भाष्य॰ तस्मिन् देशे ध्येयालम्बनस्य प्रत्ययस्यैकतानता सदृशः प्रवाहः प्रत्ययान्तरेणापरामृष्टो ध्यानम् ।

तिन देशों में अर्थात् नाभि आदिकों में ध्येय जो आत्मा उस आलम्बन की ओर चित्त की एकतानता, अर्थात् परस्पर दोनों की एकता, चित्त आत्मा से भिन्न न रहै तथा आत्मा चित्त से पृथक् न रहै, उसका नाम है सदृशप्रवाह । जब चित्त प्रत्ययैकतानता[1]

---

१. मुद्रित पाठ 'प्रत्येक चेतन' अशुद्ध है ।

चेतन से ही युक्त रहै, अन्य प्रत्यय कोई पदार्थान्तर का स्मरण न रहै, तब जानना कि ध्यान ठीक हुआ।

सू० तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।
[योग० विभू० सू० ३]

जब ध्याता ध्यान और ध्येय इन तीनों का पृथक् भाव न रहै, तब जानना कि समाधि सिद्ध हो गई।

सू० त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः। [योग० विभू० सू० ७]

यमादिक पांच अङ्गों में धारणा ध्यान और समाधि ये तीनों अन्तरङ्ग हैं, और यमादिक बहिरङ्ग हैं।

सू० - भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्। [योग० विभू० सू० २६]
चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम्। [योग० विभू० सू० २७]
ध्रुवे तद्गतिज्ञानम्। [योग० विभू० सू० २८]
नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम्। [योग० विभू० सू० २९]
मूर्द्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम्। [योग० विभू० सू० ३२]
प्रातिभाद्वा सर्वम्। [योग० विभू० सू० ३३]

इत्यादिक सूत्रों में यह प्रसिद्ध जाना जाता है कि धारणादिक तीन अङ्ग आभ्यन्तर के हैं सो हृदय में ही योगी परमाणुपर्यन्त [जितने] पदार्थ हैं, उनको योग ज्ञान से जानता है। बाहर के पदार्थों से किंचिन्मात्र भी ध्यान में सम्बन्ध योगी नहीं रखता। किन्तु आत्मा से ही ध्यान का सम्बन्ध है, और से नहीं। इस विषय में जो कोई अन्यथा कहै, सो उसका कहना सब सज्जन लोग मिथ्या ही जानें। क्योंकि -

सू० योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। [योग० समा० सू० २]
तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्। [योग० समा० सू० ३]

जब योगी चित्तवृत्तियों का निरोध कर्त्ता है, बाहर और भीतर से उसी वक्त द्रष्टा जो आत्मा उसके चेतनस्वरूप में ही स्थित हो जाती है, अन्यत्र नहीं।[1]

---

१ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में द्रष्टा का अर्थ "**सबका देखनेवाला परमेश्वर**" किया है। द्र०—पृष्ठ १९२ (संस्कृत) १९३ हिन्दी, रा० ला० क० ट्रस्ट संस्करण २।

सू० विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्[1] ।

[योग० समा० सू० ८।

विपरीत ज्ञान जो होता है, उसी को मिथ्या-ज्ञान कहते हैं। उसको तो योगी छोड़ के ही होता है, अन्यथा कभी नहीं। इस्से क्या आया कि कोई योगशास्त्र से पाषाणादिक मूर्ति का पूजन कहे, सो मिथ्या ही कहता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

श्लोकः—

दयाया आनन्दो विलसति परः स्वात्मविदितः,
सरस्वत्यस्यान्ते निवसति मुदा सत्यवचना ।
तदाख्यातिर्यस्य प्रकटितगुणा [2]राष्ट्रिशरणा,
स को दान्तः शान्तो विदितविदितो वेद्यविदितः ॥१॥
श्री दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचितमिदमिति विज्ञेयम् ॥[3]

०.

[पूर्ण संख्या ३१]   पत्रोत्तर सूचना

[समागत पत्रों के उत्तर][4]

अलीगढ़।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ३२]   पत्र-सारांश

[रङ्गाचार्य, वृन्दावन]

तुम कहते थे कि प्रतिमा-पूजन कण्ठी तिलक वेद से सिद्ध होते

---

१. यहां निर्दिष्ट सूत्रों में से अधिकांश सूत्र व्यासभाष्यसहित ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के उपासन-प्रकरण में भी व्याख्यात हैं।

२. 'राष्ट्रिन्' शब्द निघण्टु [२।२२] में ईश्वर-नामों में पढ़ा है।

३. हुगली शास्त्रार्थ तथा प्रतिमापूजन विचार का एक संक्षिप्तरूप "शास्त्रार्थ हुगली" के नाम से 'आर्यदर्पण' के निम्नलिखित अङ्कों में छपा है—फरवरी १८८०, पृ० ३६-४२। मार्च १८८०, पृ० ५०-५३। जून १८८०, पृ० १२५-१२७। 'आर्यदर्पण' मासिक पत्र के उक्त अङ्कों में हिन्दी उर्दू दोनों लिपियों में मुन्शी बख्तावरसिंह द्वारा शाहजहांपुर से प्रकाशित हुआ था।

४. यह सूचना प० देवेन्द्रनाथ जी स० जी० च० पृष्ठ २५७ में है।

है, सो कृपया अब उन्हें सिद्ध करके दिखलाइओ।'[1]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ३३]		विज्ञापन-पत्र

होली के त्यौहार के पश्चात् स्वामी दयानन्द जी चैत्र वदी दूज तदनुसार ५ मार्च सन् १८७४ बृहस्पतिवार को अर्थात् जब कि 'ब्रह्मोत्सव' का मेला आरम्भ होता है मूर्त्तिखण्डन आदि विषयों पर व्याख्यान देंगे। लोग आकर सुनें और लाभ उठावें।[2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ३४]		पत्र-सारांश[3]

विशुद्धानन्द निकल गया। इस में जो मन्य-सत्य कारण होय, सो शीघ्र लिख भेजना। वृन्दावन सेठ जी के बाग में पूर्व निकट मूलकदास जी का बाग ठिकाना लिफाफा के ऊपर लिख दीजिए। हम को अनुमान से ज्ञान है कि युगल किशोर से पढ़ाया नहीं गया होगा। अथवा और कुछ कारण हुआ होगा। जो ऐसे-ऐसे विद्यार्थी चले जायेंगे, तो पढ़ानेवाले की त्रुटि गिनी जायेगी। इसका हाल शीघ्र लिखो। और कौन क्या-क्या पढ़ता है, सो भी लिखना, जो जैसा वर्तमान होय। संवत् १९३०[4]।

[चैत्र वदी ४ शनि संवत् १९३०][5]

---

१. यह पत्र फाल्गुन शु० ११ सं० १९३० (२६ फरवरी सन् १८७४) के एक दो दिन पश्चात् लिखा गया होगा। क्योंकि उक्त तिथि को स्वामी जी महाराज वृन्दावन पधारे थे। उपर्युक्त पत्रसारांश प० लेखराम कृत महर्षि दयानन्द के जीवनचरित्र हिन्दी सं० पृष्ठ २५० पर उद्धृत है।

२. द्र०—प० लेखराम कृत महर्षि दयानन्द का जीवनचरित्र, हिन्दी सं० पृष्ठ २५०। प० लेखराम के लेखानुसार यह विज्ञापन 'बख्शी महमूद मसीह' की ओर से हिन्दी में प्रकाशित किया गया था। विज्ञापन चैत्र वदि २ सं. १९३० - ५ मार्च १८७४ से दो चार दिन पूर्व छपा होगा।

३. नहीं कह सकते कि यह पत्र किस को लिखा गया था, और मूल संस्कृत में था अथवा आर्यभाषा में। जीवनचरित्र से इतना निश्चित होता है कि पत्र में कासगंज जिला एटा की पाठशाला का उल्लेख है। अतः वहीं के किसी अधिकारी को लिखा गया होगा।

४. प० लेखराम कृत उर्दू जीवनचरित्र पृ० ७८४ (हिन्दी सं० पृ०

[पूर्ण संख्या ३५] प्रमाण-पत्र-सारांश

हमने काशी की 'सत्यशास्त्र पाठशाला' के लिये चन्दा उगाहने का कार्य बाबू शिवसहाय को दिया है। उस के लिये यह **प्रमाण-पत्र** दिया जाता है।[1]

दयानन्द सरस्वती

— o —

[पूर्ण संख्या ३६] मौखिक सन्देश

(पं० गङ्गादत्त आदि सहपाठियों को)

[2]जहां मैं जाता हूं वहां के पण्डित लोग एक इकट्ठे होकर मुझे बुलाते हैं, परन्तु मेरे स्थान पर नहीं आते। मेरे न जाने पर मुझे कह देते हैं कि हार गये। तुम ऐसा मथुरा में न करना। जिस स्थान पर तुम कहो मैं वहां आकर पहले ठहर जाऊं और स्मरण रखो कि वेद में मूर्तिपूजा नहीं है। तुमको यदि मिले तो खोज रखना और यदि पण्डित लोग शास्त्रार्थ के लिये आवें तो पहले दण्डी जी के विद्यार्थी न आवें।

[१५ मार्च १८७४ को मथुरा जाने से पूर्व]

— o —

[पूर्ण संख्या ३७] पत्र[3]

[बाबू शिव सहाय]

स्वामी दयानन्द की आशीष पहुंचे। आगे सुदी ७ का लिखा

---

८११) पर उद्धृत। इसके सम्बन्ध में पत्र से पहले पं० लेखराम जी ने लिखा है—"इस पाठशाला के सम्बन्ध में स्वामी जी की ७ मार्च १८७४ की चिट्ठी वृन्दावन में लिखी हुई थी। उसका संक्षिप्त अभिप्राय नीचे है।" इति

१ इस प्रमाणपत्र का निर्देश और प्रयोजन पं० लेखराम कृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ८१४ पर मिलता है। उसी के आधार पर यह प्रमाणपत्र सारांश हमने बनाया है।

२ द्र० – पं० लेखरामजी कृत जीवन चरित, हिन्दी अनुवाद पृष्ठ २५३

३ यह पत्र कानपुर निवासी बाबू शिवसहाय गौड़ ब्राह्मण को लिखा गया था। यह व्यक्ति स्वामी जी का प्रमाणपत्र लेकर काशी की पाठशाला के लिये भिन्न-भिन्न नगरों में धन एकत्र कर रहा था। जब वह

पत्र पहुंचा। समाचार भी विदित हुआ। यहां एक मास तक तो हमारी स्थिति होगी। सो जानना। यहां की पाठशाला का प्रबन्ध बहुत अच्छा है। एक छः शास्त्रों का पढ़ानेवाला बहुत उत्तम अध्यापक रक्खा गया है। वैसा ही एक वैयाकरण स्थापन किया गया है। दशाश्वमेध पर स्थान लिया गया है, बहुत उत्तम। इसमें पाठशाला पूर्णमासी के पीछे बैठेगी। केदारघाट का स्थान अच्छा नहीं था। इससे अब हमारे पास बाग[1] में पाठशाला है। अच्छे-अच्छे विद्यार्थी भी पढ़ते हैं। सो जानना। आगे तुम पत्र देखते ही रुपया और पुस्तक जल्दी भेजदो। विलम्ब क्षणमात्र भी मत करना। और दिनेशराम को एक महाभाष्य पुस्तक देकर और सब पुस्तक यहां भेज दो और जो दिनेशराम न दे, तो फिर देखा जायगा। तुम अपने पास के पुस्तक और रुपया सब हुण्डी कराके शीघ्र भेजदो। आगे गोपाल वा अन्य को पढ़ने की इच्छा होवे सो चला आवे। ब्रह्मचारी लक्ष्मीनारायण यहां अब तक नहीं आया। और न कोई तुम्हारा पत्र। किन्तु पत्र आया, इस का यह उत्तर जानना। और सब यहां आनन्द मङ्गल है। और प० युगलकिशोर मेहता गोपालदत्त और दिनेशराम आदि को भी हमारा प्रत्यभिवादन कह देना।

संवत् १९३१ मिति ज्येष्ठ सुदी १३ शुक्रवार। [२९ मई १८७४ काशी]

:o:—

## [पूर्ण संख्या ३८]	विज्ञापन-सारांश

जो कोई मुझ से किसी धर्मसम्बन्धी विषय पर शास्त्रार्थ करना

फर्रुखाबाद में था, उसे यह पत्र लिखा गया। देखो प० लेखराम कृत उर्दू जीवनचरित्र पृ० ७८७ (हिन्दी सं० पृ० ८१४)।

संवत् १९३६ तदनुसार सन् १८८० में यही श्री शिवसहाय मिश्र जी आर्यसमाज कानपुर के मन्त्री थे। देखो—'भारत सुदशा-प्रवर्तक' मार्च १८८० पृ० ८।

१. सरजू प्रसाद बनिया का बाग। देखो—प० लेखराम कृत उर्दू जीवनचरित्र पृ० ७८७ (हिन्दी सं० ८१४) साधु ज्वाहरदास जी का कथन। यह सम्प्रति "बेनिया बाग" के नाम से प्रसिद्ध है।

चाहे, वह नियत समय पर मेरे स्थल पर आकर कर सकता है'।

—.०.—

[पूर्ण संख्या ३९] उत्तर पत्र-सूचना

[नीलकण्ठ शास्त्री, प्रयाग]

अग्निर्वै देवानामवमः[2] विषयक उत्तर।[3]

—.०:—

[पूर्ण संख्या ४०] विज्ञापनपत्र[4]

एक समाचार सबको विदित हो कि आप का आर्य-विद्यालय काशी में संवत् १९३० पौष मास तदनुसार दिसम्बर सन् १८७३ में केदार घाट पर जिसका आरम्भ हुआ था,[5] वही अब मित्रपुर भैरवी मुहल्ला, मिश्र दुर्गाप्रसाद के स्थान में संवत् १९३१ मिति आषाढ़ सुदी ५ शुक्रवार १९ जून सन् १८७४, प्रातःकाल ७ बजे से उपरान्त आरम्भ होगा। इसका प्रबन्ध अब अच्छे प्रकार होगा। प्रातः सात बजे से पठन और पाठन होगा दस-ग्यारह तक,

---

१. विज्ञापन का उक्त सारांश प० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० २७६, पर उद्धृत है। यह विज्ञापन आषाढ़ बदी २ सं० १९३१ (१ जुलाई सन् १८७४) को प्रयाग पहुँचने के दो तीन दिन पश्चात् बांटा गया था।

२. ऐ० ब्रा० १।१॥

३. इसकी सूचना प० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० २७८ में है।

४. कविवचन सुधा (हिन्दी मासिकपत्रिका काशी) आषाढ़ सुदी ६ शनि संवत् १९३१ तदनुसार २० जून १८७४ में प्रथम मुद्रित हुआ। वहां से बिहारबन्धु भाग २ अङ्क २१ आषाढ़ सुदी १४ संवत् १९३१ तदनुसार २८ जून १८७४ में छपा। बिहारबन्धु से प० लेखराम जी ने लिया। उर्दू जीवनचरित्र पृ० ७८८,७८९ (हिन्दी सं० पृष्ठ ८१४-८१५)। प० लेखराम कृत जीवनचरित्र में अंग्रेजी तिथि २० जुलाई अशुद्ध छपी है, उसे हमने शुद्ध कर दिया है।

५. पाठशाला स्थापित करने के समय जिन विद्वानों को दक्षिणा दी गयी, उन विद्वानों के नाम प० लेखराम जी कृत जीवनचरित्र, हिन्दीसंस्करण, पृष्ठ ८१४ तथा "ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार और विज्ञापन" भाग ४, परिशिष्ट ६ में "बनारस की पाठशाला" के प्रकरण में दिये हैं।

और फिर एक बजे से पांच बजे तक। इसमें अध्यापक **गणेश श्रोत्रियजी** रहेंगे। सो पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, पातञ्जल, सांख्य, वेदान्तदर्शन, ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक दश उपनिषद्,[1] मनुस्मृति, कात्यायन[2] और पारस्करकृत गृह्यसूत्र, इनको पढ़ाया जायगा। थोड़े समय के पीछे चार वेद, चार उपवेद तथा ज्योतिष के ग्रन्थ भी पढ़ाये जायेंगे, और एक उपवैयाकरण रहेगा। वह अष्टाध्यायी, धातुपाठगण,[3] उणादिगण, शिक्षा और प्रातिपदिकगण-पाठ, यह पांच पाणिनि मुनिकृत, और पतञ्जलि मुनिकृत भाष्य, पिङ्गल मुनिकृत छन्दोग्रन्थ, यास्कमुनिकृत निरुक्त, निघण्टु और काव्यालङ्कार सूत्रभाष्य इन सब को पढ़ाना होगा। जिनको पढ़ने की इच्छा होवे, सो आकर पढ़ें। जो विद्या और श्रेष्ठाचार की परीक्षा में उत्तम होगा, उसको परीक्षा के पीछे पारितोषिक यथायोग्य मिलेगा। सो परीक्षा मास मास में होगी। इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सब पढ़ेंगे वेदपर्यन्त। और शूद्र मन्त्रभाग को

---

१ यहां पूर्ण संख्या २२ पृ० ६ में **द्वादश उपनिषदः** पर लिखी टिप्पणी सं० २ देखें।

२ महर्षि दयानन्द ने कात्यायन गृह्यसूत्र के अनेक पाठ सं० १९३२ में लिखित सं० १९३३ में छपी संस्कारविधि में उद्धृत किये हैं। कात्यायन गृह्यसूत्र के अनेक हस्तलेखों के आधार पर प्रथम बार संवत्……… में प्रकाशित किया है।

यहां मूल विज्ञापन में कदाचित् 'उणादिगण' शब्द के स्थान में 'आदिगण' छपा है। देखो उपदेशमञ्जरी १०वां व्याख्यान पाणिनि मुनि कृत ग्रन्थ वर्णन— इन महामुनि ने पांच पुस्तकें बनाई हैं—१ शिक्षा २ उणादिगण ३ धातुपाठ ४ प्रातिपदिकगण ५ अष्टाध्यायी। पूर्ण संख्या ८ के पत्र में भी 'पाणिनि मुनि रचित उणादिगण सूत्र' शब्द का व्यवहार हुआ है। उपर्युक्त विज्ञापन तथा उपदेशमञ्जरी में लिङ्गानुशासन का नाम छूटा है। संस्कारविधिस्थ वेदारम्भान्तर्गत पठनपाठनविधि में पाणिनिमुनि कृत ग्रन्थों में लिङ्गानुशासन की भी गणना की है। शिक्षा स्वतन्त्र वेदाङ्ग है। व्याकरण के पांच ग्रन्थों में लिङ्गानुशासन सम्मिलित होता है।

छोड़के सब शास्त्र पढ़ेंगे।[1] फिर जब-जब इस आर्य विद्यालय के लिये अधिकाधिक चन्दा होगा, तब-तब अध्यापक और विद्यार्थी लोगों को भी बढ़ाया जायगा। इसकी रक्षा और वृद्धि के लिये एक आर्यसभा स्थापित हुई है, और एक 'आर्य-प्रकाश' पत्र भी निकलेगा मास मास में। इन तीनों बातों की प्रवृत्ति के लिये बहुत भद्र लोग प्रवृत्त हुए हैं, और बहुत प्रवृत्त होंगे। इससे ही आर्यावर्त्त देश की उन्नति होगी। इस विद्यालय में यथावत् शिक्षा दी जावेगी, जिससे कि सब उत्तम व्यवहार युक्त होवें।

हस्ताक्षर स्वामी दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या ४१] विज्ञापन[2]

[3]इससे मेरा यह विज्ञापन है आर्यावर्त्त देश का इंगरेज बहादुर से कि संस्कृतविद्या की ऋषि-मुनियों की रीति से प्रवृत्ति करावें। इससे राजा और प्रजा को अनन्त सुख लाभ होगा और जितने

---

१. द्रष्टव्य सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास ३ में सुश्रुत सूत्रस्थान दूसरे अध्याय का वचन—**शूद्रमपि कुलगुणसम्पन्नं मन्त्रवर्जम् अनुपनीतम् अध्यापयेदित्येके।**

२. राजा जयकृष्णदास जी ने सत्यार्थप्रकाश का पहला संस्करण मुद्रित कराया था। यद्यपि श्री स्वामी जी ने १४ समुल्लास ही लिखवाए थे, तथापि छपे केवल १२ समुल्लास ही थे। उपर्युक्त लेख हस्तलिखित प्रति के चौदहवें समुल्लास के अन्त में (पृष्ठ ४८५ से ४९५ तक) है। पत्र और विज्ञापन के प्रथम और द्वितीय संस्करण में प्रस्तुत विज्ञापन का कुछ आदि और कुछ अन्त का भाग ही छपा था। इस बार हम इसे पूरा छाप रहे हैं।

(सत्यार्थप्रकाश की इस हस्तलिखित प्रति के विशेष परिचय के लिए हमारे द्वारा सं० २०३२ (सन् १९७५) में सम्पादित तथा रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश (आर्यसमाज शताब्दी संस्करण) के आरम्भ में पृष्ठ ३० से पृष्ठ ६७ तक देखें।]

३. इस विज्ञापन का पूरा पाठ झज्जर गुरुकुल (जिला-रोहतक, हरियाणा) से प्रकाशित "सुधारक" मासिक पत्रिका के ज्येष्ठ २०४२ वि० (मई १९८५ ई०) के अङ्क ९ में पृष्ठसंख्या २० से २८ तक छपा है। हमने उस में से कुछ अनुपयोगी भाग छोड़ दिया है।

आर्यावर्त्तवासी सज्जन लोग हैं उनसे भी मेरा यह कहना है कि इस सनातन संस्कृत विद्या का उद्धार अवश्य करें, ऋषि मुनियों की रीति से अत्यन्त आनन्द होगा और जो संस्कृत विद्या [लुप्त] हो जाएगी, तो सब मनुष्यों की बहुत हानि होगी इस में कुछ सन्देह नहीं।

[आत्म-वृत्त]

मैंने अपने घर में कुछ वेद का पाठ और विद्या भी पढ़ी। फिर नर्मदा तट में दर्शनशास्त्रों को पढ़ा। फिर मथुरा में श्री स्वामी विरजानन्द सरस्वती दण्डी जी से पूर्ण व्याकरणादि विद्याभ्यास किया, जो कि बड़े विद्वान् थे। उनके पास रहके सब शंका समाधान किए। फिर मथुरा आगरा नगर में दो वर्ष तक स्थिति किई। वहां ऋषि मुनियों के सनातन पुस्तक और नवीन पुस्तक भी बहुत मिले। उनको विचारा। फिर ग्वालेर में स्थिति किई। वहां भी जो-जो पुस्तक मिला उनका विचार किया। ऐसे ही देश देशान्तर में भ्रमण किया। जहां-जहां जो-जो पुस्तक मिला उनका विचार किया। जहां-जहां मुझ को शंका रह जाती थी, उनका स्वामी जी से उत्तर यथावत् पाया। फिर पुस्तकों को देख एकान्त में जाके विचार किया। अपने हृदय में शंका और समाधान किये।

[आर्ष ग्रन्थों से लाभ तथा अनार्ष ग्रन्थों से हानि]

सो यह ठीक-ठीक निश्चय हृदय में भया कि वेद और सनातन ऋषि मुनियों के शास्त्र सत्य हैं, क्योंकि इनमें कोई असम्भव वा अयुक्त कथा नहीं है। जो कुछ है उन शास्त्रों में सत्य पदार्थ विद्या और सब मनुष्यों के वास्ते हितोपदेश है। और इनके पढ़ने से बिना मनुष्य को सत्य-सत्य ज्ञान कभी न होगा। इस्से इनको अवश्य सब मनुष्यों को पढ़ना चाहिये। और जिनको दूर छोड़ने को कहा[1] कि इनको न पढ़े न पढ़ावे, न इनको देखे। क्योंकि इनको देखने से वा सुनने से मनुष्य की बुद्धि बिगड़ जाती है। इस्से इन ग्रन्थों को संसार में रहने भी न दें, तो बहुत उपकार होगा।

[दैनिक-व्यवहार]

सब मनुष्यों को यह व्यवहार करना उचित है [जब] पहर

---

१. सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास के पठन-पाठनविधि प्रकरण में।

रात्रि रहे तब उठे। उठके शौचादिक क्रिया करे। फिर कुछ भ्रमण शुद्ध देश में करे, जहां-जहां शुद्ध वायु हो। एकान्त में जाके गायत्री मन्त्रादिकों के अर्थ से परमेश्वर की स्तुति करे। फिर प्रार्थना करे कि "हे परमेश्वर ? आप की कृपा से हम पवित्र होके और धर्म में तथा अच्छे गुण ग्रहणों में तत्पर होवें। परन्तु आप की कृपा से ही जो अच्छा होता है सो होता है। सो आप ऐसी सब जीवों पर कृपा कीजिए कि सब जीव आपकी आज्ञा, सद्गुणग्रहण और आपके स्वरूप में ही विश्वासादि गुणयुक्त होके स्थिर होवें"। फिर उपासना कि सब इन्द्रिय, प्राण और जीवात्मा को एकत्र स्थिर करके परमेश्वर में स्थिर समाधिस्थ होके अनन्त जो कि परमेश्वर का आनन्द उसमें मग्न हो जाये। फिर चिरकाल ऐसे परमेश्वर का ध्यान[1] [2]करके एकनिष्ठ[3] बुद्धिवाला होय, सो अग्निहोत्रादिक कर्मकाण्ड करे, मध्य बुद्धिवाला योगाभ्यास करे, जो कि उपासना काण्ड है। और जो तीव्र बुद्धि अर्थात् शुद्ध हृदय है सो विचार और ब्रह्मविद्या में तत्पर होय, जो कि विज्ञानकाण्ड कहाता है। इसके विवेकादिक साधन जो ज्ञान के प्रथम कहे, उन को भी करता जाय। कर्मकाण्ड और उपासनाकाण्ड ज्ञान के वास्ते ही है, ऐसा निश्चय करना चाहिये।

फिर एक घण्टा भर दिन आवे, उसके पीछे एक घण्टा तक ग्रह (गृह) सम्बन्धी दास दासी नौकर चाकर और जो अपने करने का कुछ काम है, सो भी उसी वक्त करे। जिसको दिन भर की आज्ञा देनी होय वा यह काम अपने करने का, उसको भी विचार ले और कह भी दे। जिसको जिस वक्त जो देना चाहिए उसको उसी वक्त दे और जिस्से लेना चाहिये, उ[स] से उसी वक्त ले। जिस व्यवहार में जैसी प्रतिज्ञा करे, जिस वक्त करने की, उसको वैसी और उसी

१ आरम्भ से यहां तक का अंश 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' के प्रथम और द्वितीय संस्करणों में छपा था।

२ यहां से अगला 'सुख मनाना चाहिये' पर्यन्त ('आर्यावर्त की उन्नति का उपाय' शीर्षक से पूर्व तक) लेख यहां द्वितीय बार छप रहा है।

३. हस्तलेख में यहां "एकनिष्ठ" शब्द है; परन्तु आगे "मध्य बुद्धिवाला" और "तीव्र बुद्धि" शब्दों का प्रयोग होने से यहां "कनिष्ठ बुद्धिवाला" शब्द उचित है।

बन्द करे क्योंकि प्रतिज्ञाहानि अर्थात् जैसा कहा वैसा नहीं करने से मनुष्य के सब व्यवहार छिन्नभिन्न और नष्ट हो जाते हैं, और उसको सब मनुष्य झूठा जान लेते हैं। उसका विश्वास भी अच्छा आदमी कोई नहीं करता। इससे मनुष्य को प्रतिज्ञा-पालन कि जो जैसा नियम से कहा, उसको वैसा ही पूरा करना चाहिये। जितने पशु वा अपने आधीन जितने पदार्थ होवें उनका यथावत् पालन करे। जितने घर के पदार्थ हैं उनकी यथायोग्य रक्षा करावे स्त्री से, क्योंकि घर का जितना काम होय उतना स्त्री के ऊपर रक्खे। फिर जो जिसका व्यवहार है उसको धर्मयुक्त करे, अधर्म से नहीं। फिर दश घण्टा समय[1] भोजन करे वैद्यकशास्त्र की रीति से विचार और संस्कार करके। फिर जो जिसका व्यवहार उसको यथावत् करे। जब दो घण्टा दिन रहे तब कार्यों को छोड़ के शारीरिक शौचादिक कर्म करे। जब घण्टा भर दिन रहे तब दूसरी वक्त भोजन करे। फिर एकान्त में जाके परमेश्वर की यथोक्त स्तुति प्रार्थना और उपासना करे, और जो जिसका अग्निहोत्रादिक करना होय सो करे। फिर भी प्रहर रात्रि जब तक न आवे तब तक व्यवहार का काम करे। फिर शयन करे मध्य रात्रि के दोपहर तक। प्रहर रात्रि से उठे। ऐसे ही दिनचर्या नित्य करे।

[पारिवारिक व्यवहार]

अपने सन्तानों को पूर्वोक्त प्रकार से विद्यादि गुण-ग्रहण के वास्ते ब्रह्मचर्याश्रम और वीर्यादिक की रक्षा की शिक्षा करे। अपने कुटुम्ब और स्त्री को प्रसन्न रक्खे और वे भी उसको प्रसन्न रक्खें। एक घर में चार भाई हों वे प्रीति से ही परस्पर सदा प्रसन्न रहें, और एक ही व्यवहार में रहें। तथा उन की स्त्री[2] भी परस्पर और प्रीति से अपने अपने काम को यथावत् करें, अपने अधिकार को बांट लें, यथावत् करें, विरोध और कलह कभी न करें और न जुदे होंय। और न जब सैंकड़हों मनुष्य बढ़ें तब जो जुदे होंय भी तो प्रीति सदा परस्पर रक्खें। देशदेशान्तर द्वीपद्वीपान्तर में भ्रमण भी करें।

[पड़ोसियों इष्टमित्रों से व्यवहार]

अपने समीपवासी इष्ट मित्रों से अत्यन्त प्रीति रक्खे, और सब

1. अर्थात् दस बजे। 2. स्त्रियां जाति में एकवचन।

मनुष्यों से कपट और छल को छोड़के और अपने प्रसन्नता से मिलाप रक्खे। एक-दूसरे का सहाय करे, सबका हित चाहे, अहित कोई का नहीं। विद्या, धर्म, यज्ञादिक श्रेष्ठ कर्म, सब मनुष्यों का उपकार, दीन और अनाथों का पालन करे नित्य सत्पुरुषों के सङ्ग से बुद्धि और नम्रतादिक गुणों को ग्रहण करे। कोई से हठ दुराग्रह अभिमानयुक्त होके वाद-विवाद न करे, दुष्टों का सग कभी न करे। वीर्य की रक्षा सदा करे, ब्रह्मचर्याश्रम विद्या पढ़ने के वास्ते सदा करे, बाल्यावस्था में विवाह कभी न करे। पूर्व ग्यारह लक्षण युक्त[1] जो धर्म कहा, उसका सदा सेवन करे, और उक्त प्रकार से अधर्म का सदा त्याग करे।

[देश और जगत् का हिताहित-विचार]

देश के उपकार में कि सब मनुष्यों को सुख होता है, और अपने को उस में कुछ दुःख भी होता होय सो भी उसको यथावत् करे। एक परमेश्वर की उपासना, एकमत कि सत्य धर्म को मानना असत्य [को] नहीं मानना, यही दृढ़ मत रक्खे। कोई पाखण्डी झूठा खुशामदी धूर्तों का विश्वास न करे। जो कुछ करे, सो विचार से ही करे, बेविचार से कुछ नहीं, कि इस काम को मैं करूंगा इस्से क्या मुझ को हानि वा लाभ होगा, अथवा सब मनुष्यों को क्या सुख वा दुःख होगा, इसको ठीक ठीक निश्चय करके उस काम को करे। सब मनुष्यों को भविष्यत् का जो विचार करना है सोई उत्तम है, क्योंकि भविष्यत् के विचार के विना मनुष्य बहुत धोखा खाता है। और धर्माधर्म तथा समुदाय मनुष्यों के वास्ते वेदादिक विद्या और विशेषतः धर्मशास्त्र जो कि मीमांसा दर्शन और मनुस्मृति इस्से समुदाय जगत् का हित और अहित विचारके सब कोई हित को करे और अहित को न करे। जैसे कि धर्म का सेवन अधर्म का त्याग तथा भक्ष्य का ग्रहण और अभक्ष्य का त्याग ....।

---

१ मनु प्रोक्त दश धर्म के लक्षणों में अहिंसा को जोड़कर "ग्यारह लक्षण युक्त" का निर्देश किया है। द्रष्टव्य—पूनाप्रवचन, सख्या ३, धर्माधर्म-विषयक प्रवचन। (ऋषि दयानन्द सरस्वती के शास्त्रार्थ और प्रवचन, संवत् २०३६ वि० का संस्करण, पृष्ठसख्या २७६)। इस पर इस पुस्तक के द्वितीय भाग के अन्त में द्वितीय परिशिष्ट में छपी टिप्पणी भी देखें।

इसमे ऐसा समुदाय का हिताहित विचार कर सब मनुष्य करें। और वैद्यकशास्त्र की रीति से पृथक्-पृथक् मनुष्यों को हिताहित विचार करना चाहिये। शरीर का स्वभाव और ओषधों के अनुकूल गुणवालों को सेवन करें, जिस्से कि शरीर और बुद्धि में विकार उत्पन्न न होवें। जिस्से बुद्धि बढ़े और शरीर मे आरोग्य बढ़े, उसको चरक और सुश्रुत ....वैद्यकशास्त्र की रीति से ठीक ठीक विचारके सेवन करे। भोजन के वास्ते जो नित्य खाने में आवै, उसको सुश्रुत का आहारविध्यध्याय और पाक करने के अध्याय[1] से विचारके नित्य अनुकूल भोजन करे, क्योंकि वीर्यादिक धातुओं की रक्षा और वृद्धि, बुद्धि और शरीर की रक्षा होती है। और शरीर की रक्षा से धर्म अर्थ काम और मोक्ष ये चारों मनुष्यों को प्राप्त होते हैं। इनको प्राप्ति से अत्यन्त सुख होता है। परन्तु ऐसा काम सदा करे, जिस्से कि भविष्यत् काल मे अपना और सबका जगत् का हित होय वही काम करे। भूतकाल में जो कुछ पदार्थ प्राप्त भया होय, उसकी वर्त्तमान में रक्षा यथावत् करे, और भविष्यत् काल में उसकी उन्नति कर्त्ता जाय। नित्य नवीन-नवीन विद्या और नाना प्रकार के शिल्पविद्या की रीति से पदार्थों को रचे, उसकी वर्त्तमान में रक्षा और भविष्यत् काल में उन्नति कर्त्ता जाय। और ऐसी छोटी बुद्धि मनुष्य को नहीं रखना चाहिये कि मैं अपना सुख करू औरों के सुख वा दुःख से मुझ को क्या मतलब है? किन्तु जब तक मैं जीऊंगा तब तक इन से मुझ को सुख होगा, और फिर मुझ को क्या प्रयोजन है? ऐसा विचार कभी न रक्खे, क्योंकि जे मनुष्य रहेंगे, आगे उत्पन्न होंगे उनको भी ऐसा ही सुख होगा। सब मनुष्यों से हित और सबके उपकार में सदा चित्त रक्खे। **परन्तु इस्से अधिक जिस देश में अपना जन्म हुआ होय, उसके उपकार में पुरुषार्थ करे,**[2] और अपने समीपवासी और मातापितादिक कुटुम्बस्थ इनका नित्य हित करे।

---

१ इस पर इस पुस्तक के द्वितीय भाग के अन्त में द्वितीय परिशिष्ट में टिप्पणी देखें।

२ इस पर इस पुस्तक के द्वितीय भाग के अन्त में द्वितीय परिशिष्ट में टिप्पणी देखें।

[राज्यादि अधिकार व्यवस्था]

धन का, सेना का, न्याय करने का, और राज्य का अधिकार उत्तम पुरुष को देवें। जो कि इनकी वर्त्तमान में रक्षा भविष्यत्काल में उन्नति करने में समर्थ होवें। ऐसे को अधिकार न देवें जो कि इन पदार्थों की रक्षा वर्त्तमान में न कर सकें, और भविष्यत् में उन्नति भी न कर सकें। और अन्य अन्य छोटे छोटे अधिकार भी यथायोग्य पुरुषों को देवें, अन्यथा नहीं। क्योंकि राजा सर्वाधिपति और सेनाधिपति और न्यायकर्त्ता विद्यावान्, बुद्धिमान्, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय, सब के हितकारी, सब दुष्ट व्यसनरहित और पक्षपातरहित पुरुषों का जिस देश में अधिकार होते हैं उस देश में सदा सुख और सब श्रेष्ठ व्यवहारों की उन्नति होती जाती है। और जिस देश में इनसे विपरीत पुरुषों को ये राज्यादि अधिकार दिये जाते हैं, उस देश में सब सुखों का नाश और अत्यन्त दुःखों की वृद्धि होती है। विशेष करके आर्यावर्त्तवासी मनुष्य जब तक सनातन संस्कृत विद्या न पढ़ेंगे सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग[1], एक परमेश्वर की उपासना न करेंगे परस्पर विद्याग्रहण और श्रेष्ठ व्यवहारों को न करेंगे, परस्पर हित और उपकार न करेंगे पाषाणादिक-मूर्त्तिपूजन, हठ, दुराग्रह आलस्य, अत्यन्त विषयसेवा खुशामदी धूर्त्तपुरुषों का सङ्ग मिथ्या विद्या और दुष्ट व्यवहारों को न छोड़ेंगे मिथ्या धननाश और बाल्यावस्था में विवाह के त्याग, ब्रह्मचर्याश्रम से शरीर और विद्याग्रहण जब तक न करेंगे, और शरीर बुद्धि विद्या धर्मादिकों की रक्षा और उन्नति न करेंगे, तब तक इनको सुख लाभ होना बहुत कठिन है, अन्य देशवासियों को भी। परन्तु जिस देश में बहुत बिगाड़ हुआ है उसके प्रति मेरा उपदेश भी अधिक है क्योंकि जो अधिक रोगी होता है, उसका निदान औषध और पथ्य भी अधिक कराना होता है। क्योंकि एक देश पहले बिगड़ा होता है और पीछे सुधरे, उस पर भी सुख मानना चाहिये।

---

१. यहां 'असत्य का नहीं छोड़ेंगे' पाठ था। 'कर' के स्थान में 'का' और 'नहीं छोड़ेंगे' को काट कर 'त्याग' शब्द बनाया है। यह 'त्याग' शब्द ऋषि के हाथ का लिखा प्रतीत होता है।

[आर्यावर्त की उन्नति का उपाय]

परन्तु आर्यावर्त देश पर मुझ का बहुत पश्चात्ताप है, क्योंकि इस देश में प्रथम बहुत सुखों और विद्याओं की उन्नति थी। बहुत ऋषि-मुनि बड़े-बड़े विद्वान् इस देश में भये थे, जिनके अच्छे-अच्छे काम और अच्छे-अच्छे विद्यापुस्तक अब तक चले आते हैं। और अच्छे-अच्छे राजधर्म के चलाने वाले राजा भी हुए हैं, जिनों ने कभी पक्षपात का कोई कार्य नहीं किया, किन्तु सदा धर्म न्याय में ही प्रवृत्त भये हैं। सो देश इस वक्त ऐसा बिगड़ा है कि इतना बिगाड़ कोई देश में देखने में नहीं आता है। सो हमारी प्रार्थना सब आर्यावर्तवासी राजा और प्रजा से है कि उक्त बुरे कामों को छोड़के अच्छे कामों में प्रवृत्त होवें। और जो कोई अन्यदेशीय राजा आर्यावर्त में है, उनसे भी मेरी प्रार्थना यह है कि इस देश में सनातन ऋषि-मुनियों के किये उक्त ग्रन्थ और ऋषि-मुनियों [द्वारा] की गई वेदों की व्याख्या, उसी रीति से वेदों का यथावत् अर्थज्ञान और उनमें उक्त जे व्यवहारों के नियम उनकी प्रवृत्ति यथावत् करावें। इसी से ही यह देश सुधरेगा, अन्यथा नहीं। और भी यह है- सत्य विद्या और सत्य व्यवहार सब देशों में प्रवृत्त होना चाहिये। परन्तु आर्यावर्त देश की स्वाभाविक सनातन विद्या संस्कृत ही है, जो कि उक्त प्रकार से प्रथम कही, उसी से इस देश का कल्याण होगा, अन्य देशभाषा से नहीं।[1] अन्य देशभाषा तो जितना प्रयोजन उतनी ही पढ़नी चाहिये।[2] और विद्यास्थान में

---

१ महर्षि ने आज से लगभग ७० वर्ष पूर्व राष्ट्रभाषा और अन्यदेशीय भाषा के सम्बन्ध में जो महत्त्वपूर्ण विचार प्रकट किए थे, वे आज भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं।

२ इसका अभिप्राय ऋषि के निम्न लेख से स्पष्टतया समझा जा सकता है "उन में [सनातन वेदादिशास्त्र] विरुद्ध भाषाओं की प्रवृत्ति वा उन्नति न करें वा करावें। किन्तु जितना दूसरे राज्य के सम्बन्ध में, यदि वे इस भाषा को न समझ सकें उतने ही के लिए उन भाषाओं का यत्न रखें जो वह प्रबल राज हो।" द्र० - 'महाराणा श्री सज्जनसिंह जी उदयपुर

संस्कृत ही रखना चाहिये।

[राज-प्रजा का कर्त्तव्य]

राजा का मूर्ख होना बहुत बुरा है, परन्तु प्रजा का भी मूर्ख रहना बहुत बुरा है। किन्तु मूर्खों के ऊपर राज्य करने से राजा की शोभा नहीं। किन्तु प्रजा को विद्यायुक्त धर्मात्मा और चतुर करके उन पर राज्य करने में राजा और प्रजा की शोभा और सुखों की उन्नति होती है। ऐसा कानून राजा और प्रजा को चलाना चाहिये और मानना चाहिये, जिससे द्यूत, चोरी, परस्त्रीगमन और मिथ्या साक्षी और बाल्यावस्था में विवाह और विद्या का लोप न होने पावें। फिर राजा और प्रजा उस कानून को धर्म माने और उस पर ही सब चलें। परन्तु ऐसा वह कानून होय, जिससे यह लोक और परलोक दोनों शुद्ध होवें। वह कानून धर्म से कुछ भी विरुद्ध न होवें, क्योंकि धर्म नाम है न्याय का, और न्याय नाम है—पक्षपात का छोड़ना। उनका ज्ञान सब मनुष्यों को यथावत् होना चाहिये। धर्म का रक्षक विद्या ही है, क्योंकि विद्या से ही धर्म और अधर्म का बोध होता है। उनसे सब मनुष्यों को हिताहित का बोध होता है, अन्यथा नहीं।

[प्रभु से प्रार्थना]

सो मैं परमेश्वर से अत्यन्त प्रार्थना करता हूं कि हे परमेश्वर, हे सच्चिदानन्द अनन्तस्वरूप, हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव, हे न्यायकारिन्, हे सर्वशक्तिमन्, हे अज, हे अन्तर्यामिन्, हे सर्वजगदुत्पादक, हे सर्वजगद्धारक, हे करुणानिधे! सब जगत् के ऊपर ऐसी कृपा करें जिससे कि सम्पूर्ण विद्या का लाभ वेदादिक सत्यशास्त्रों का ऋषि-मुनियों की रीति [से] हो।

परन्तु सर्वत्र धर्मव्यवहार में परमेश्वर की प्रार्थना सब को करनी उचित है। इसी[से] सब उत्तम ला[भ] मनुष्यों को होते हैं।

ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः॥

नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव

की दिनचर्या' में 'विशेष नियम' के अन्तर्गत सख्या ७। यह 'दिनचर्या' कार्तिक सुदि १ स० १९३६ के पत्र के आगे छपेगी।

प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम् ऋतमवादिषं सत्यमवादिषम् । तन्मामावीत् तद्वक्तारमावीद् आवीन्माम् आवीद् वक्तारम् ॥[1] ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वती स्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविरचिते चतुर्दशस्समुल्लासः[2] संपूर्णः ॥१४॥[3]

— ० —

[पूर्ण संख्या ४२]   पत्र

बलदेवसिंह शर्मा[4]

आजकल दयानन्द स्वामी यहां पर ठहरे हैं। उनको तुम्हारी

---

१. ये दोनों मन्त्र तैत्तिरीयोपनिषद् शिक्षावल्ली के अन्त में इसी रूप में पढ़े हैं।

२. प्रथम संस्करण के सत्यार्थप्रकाश के लिए जो प्रेस कापी लिखी गई थी, उस में १३वां समुल्लास कुरानमत समीक्षा का था, और १४वां समुल्लास ईसाई मत अथवा "गौरण्डमत" समीक्षा का था। ईसाईमत-समीक्षा के अन्त में यह उपर्युक्त विज्ञापन था। तृतीय संस्करण में उसकी कुछ अनुपयोगी पंक्तियों को छोड़कर पूरा पाठ छापा है।

कुरान मत समीक्षा और बाईबल समीक्षा दोनों लिखी जा चुकी थीं, इस का उल्लेख पूर्णसंख्या ४१ (पृष्ठ ६५) में देखिये। यह पत्र २१ जनवरी सन् १८७५ का है।

तेरहवें समुल्लास अर्थात् कुरान मत समीक्षा के सम्बन्ध में श्री स्वामी जी का लिखवाया हुआ निम्नलिखित विवरण है। इसे अत्युपयोगी और ऐतिहासिक दृष्टि से बहुमूल्य समझ कर आगे देते हैं—

"जितना हमने लिखा इसका यथावत् सज्जन लोग विचार करें, पक्षपात छोड़के तो जैसा हमने लिखा वैसा ही उनको निश्चय होगा। यह कुरान के विषय में जो लिखा गया है, सो पटना शहर ठिकाना गुड हट्ठा में रहनेवाले मुन्शी मनोहर लाल जी, जो अरबी में भी पण्डित हैं, उनके सहाय से और निश्चय करके कुरान के विषय में हमने लिखा है।" इति।

३. यह सारा लेख संवत् १९३१ के मध्य अथवा सितम्बर १८७४ में लिखाया गया।

४. बलदेवसिंह शर्मा कान्यकुब्ज ब्राह्मण भारोल जि० मैनपुरी का रहनेवाला था।

बड़ी जरूरत है, और तुम्हारे बिना इनको बहुत क्लेश है। इस लिये स्वामी जी की आज्ञानुसार तथा राजा साहब की सम्मति से तुमको लिखा जाता है कि तुम इस पत्र को देखते ही जल्द चले आओ। और कुछ विलम्ब मत करो। क्योंकि स्वामी जी दो चार दिन में दक्षिण में जायेंगे।

ता० १६ सितम्बर सन् १८७४
असूज बदी १ शनिवार सं० १९३१ वि०।[2]

(ज्वालाप्रसाद प्रयाग)[1]

— ०.—

[पूर्ण संख्या ४३]   पत्र-सारांश

[व्यास जी जयकृष्ण वैद्य, बम्बई]

मेरी इच्छा बम्बई में व्याख्यान देने की हुई है।[3]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ४४]   पत्र-सारांश

[व्यास जी जयकृष्ण वैद्य तथा धर्मसीभाई, बम्बई]

हम अपनी सुविधानुसार आवेंगे और अपने आने की आप लोगों को सूचना दे देंगे।[4]

— ० —

[पूर्ण संख्या ४५]   तार

[व्यास जी जयकृष्ण वैद्य धर्मसी भाई बम्बई]

हम बम्बई आते हैं।[5]

—'० —

---

१ श्री ज्वालाप्रसाद जी राजा जयकृष्णदास जी के पुत्र थे। श्री स्वामी जी की आज्ञा से ही यह पत्र लिखा गया था। पत्र किस स्थान को लिखा गया, यह ज्ञात नहीं हो सका।

२ प० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित्र पृ० २२३ (हिन्दी स० पृ० ५२७) से लिया गया।

३ यह अंश प० दामोदर सुन्दरदास कृत "मुम्बई आर्यसमाज नो इतिहास" की प्रस्तावना के पृष्ठ "छ." पर गुजराती में उद्धृत है।

४ यह अंश देवेन्द्रनाथसंकलित जीवनचरित्र पृष्ठ २८६ पर उद्धृत है

५ इस तार का उल्लेख प० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवन चरित्र पृष्ठ

[पूर्ण संख्या ४६]　　　विज्ञापन-सारांश

धर्माधर्म सम्बन्धी विचार करने की जिन को इच्छा हो [बाल केश्वर महादेव पर आकर] करें।[1]

— ० —

[पूर्ण संख्या ४७]　　　विज्ञापन-पत्र[2]

विदित हो कि जैसा स्वामी नारायण है, वैसा मैं नहीं हूं। और जिस प्रकार जयपुर नगर गोस्वामी जी का पराजित हुआ, ऐसा भी मैं नहीं हूं। बम्बई नगर के निवासी किसी एक हरिभक्तों के चरणों के इच्छुक 'प-म-न' गुप्त नामवाले पुरुष के सं० १९३१ कार्तिक शुक्लपक्ष शुक्रवार को ज्ञानदीपक यन्त्रालय के छपे हुए २४ प्रश्नों का उत्तर दिया जाता है।

पहले प्रश्न का उत्तर—प्रत्यक्षादि प्रमाणों को स्वीकार करता हूं।

दूसरे प्रश्न का उत्तर—चारों वेदों को प्रमाण मानता हूं।

तीसरे का उत्तर—चार संहिताओं को प्रमाण मानता हूं, परन्तु परिशिष्ट को छोड़कर (अर्थात् परिशिष्टों को प्रमाण नहीं मानता वह अप्रमाण है)। ब्राह्मण आदि ग्रन्थों को मत के रूप में स्वीकार नहीं करता, परन्तु उन के रचयिता हैं जो ऋषि, उन की वेद-विषय में कैसी सम्मति है, यह जानने के लिये अध्ययन करता हूं कि उन्होंने कैसा अर्थ किया है, और उनका क्या सिद्धान्त है।

चौथे का उत्तर—तीसरे में समझ लेना।

---

२८६ पर तथा पं० लेखराम कृत जीवन चरित हिन्दी सं० पृष्ठ २५८ पर मिलता है।

1. इस विज्ञापन सं० १९३१ मार्गशीर्ष-२४ अक्टूबर १८७४ को बम्बई पहुंचने के पश्चात् चार भाषाओं में दिया गया। द्र० पं० लेखरामकृत जीवनचरित्र हिन्दी सं० पृष्ठ २५८, २५९।

2. इस विज्ञापनपत्र, जिसमें 'प-म-न' गुप्त नामवाले पुरुष के २४ प्रश्नों का उत्तर है, को स्वामी पूर्णानन्द ने स्वामी दयानन्द सरस्वती की सम्मति से प्रकाशित किया था। इसका निर्देश विज्ञापनपत्र के अन्त में मिलता है। इसीलिये हम इसे यहां छाप रहे हैं। यह पं० लेखराम कृत जीवनचरित्र हिन्दी सं०, पृष्ठ २६०-२६२ पर मुद्रित है।

पांचवें का उत्तर—शिक्षा आदि वेदाङ्गों के कर्त्ता मुनियों की वेद के विषय में कैसी सम्मति है यह जानने के लिये शिक्षा आदि वेदाङ्गों को देखता हूं। उन को मत मानकर स्वीकार नहीं करता।

छठे का उत्तर—वेद-वेदाङ्गभाष्य और उनके व्याख्यान, जो आर्ष अर्थात् ऋषिप्रणीत हैं, उन को मत मानकर स्वीकार नहीं करता। किन्तु परीक्षा के लिये कि वे ठीक किये गये हैं या नहीं, यह जानने के लिये देखता हूं। वह मेरा मत नहीं है।

सातवें का उत्तर—जैमिनिकृत पूर्वमीमांसा, व्यासकृत उत्तर-मीमांसा, चरणव्यूह इनका संग्रह भी मत मानकर नहीं करता, किन्तु इनको इनके मत की परीक्षा के लिये देखता हूं, और किसी रूप में नहीं।

आठवें का उत्तर—पुराण, उपपुराण, तन्त्र ग्रन्थ इनके अव-लोकन और अर्थ में श्रद्धा ही नहीं रखता, इनको प्रमाण मानने की तो कथा ही क्या है?

नवें का उत्तर—सारी (महा) भारत और वाल्मीकि रचित रामायण को प्रमाण नहीं मानता, क्योंकि लोक में वे बहुत प्रकार से (बहुत रूप में) व्यवहृत हैं।[१] उन (उस समय के राजा आदि) के वृत्तान्त का जानना ही उन का अभिप्राय है, क्योंकि वे व्यतीत हो गये हैं।

दसवें का उत्तर—भी नवें में समझ लेना।

ग्यारहवें का उत्तर—मनुस्मृति को मनु का मत जानने के लिये देखता हूं। उस को इष्ट समझ कर नहीं।

बारहवें का उत्तर—याज्ञवल्क्य आदि और मिताक्षरा आदि का तो प्रमाण ही नहीं करता।

तेरहवें का उत्तर—बारहवें में समझ लेना।

चौदहवें का उत्तर—विष्णु स्वामी[२] आदि का जो सम्प्रदाय है,

---

१ महाभारत और रामायण के औत्तर, औत्तरपाश्चम, तथा दाक्षि-णात्य भेद से तीन-तीन प्रकार के पाठ मिलते हैं। सम्भव है उक्त लेख का इसी ओर संकेत हो।

२ इन्होंने "वेदोक्तधर्मप्रकाश" नामक ग्रन्थ मराठी भाषा में लिखा

उनको मैं लेशमात्र भी प्रमाण नहीं मानता, प्रत्युत उन का खण्डन करता हूं। क्योंकि ये सारे सम्प्रदाय वेद के विरुद्ध हैं।

पन्द्रहवें का उत्तर चौदहवें में समझ लेना।

सोलहवें का उत्तर—मैं स्वतन्त्र नहीं हूं, प्रत्युत वेद का अनुयायी हूं, ऐसा समझना चाहिये। जड आदि जो पदार्थ हैं, उन का वेद में जैसा कथन है, वैसा मानता हूं।

सत्रहवें का उत्तर—जगदुत्पत्ति जैसी वेद में लिखी है और (उसमें लिखे अनुसार) जिसने की है, उन सारे को उसी प्रकार मानता हूं।

अठारहवें का उत्तर–जिस समय से सृष्टि की परम्परा आरम्भ हुई है, उस काल की कोई गणना नहीं है, यह जानना चाहिये।

उन्नीसवें का उत्तर—वेदोक्त जो यज्ञादि कर्म हैं, वे सभी यथाशक्ति किये जाने चाहियें।

बीसवें का उत्तर -जो विधि वेदोक्त है, वही मनानी चाहिये, अन्य नहीं।

इक्कीसवें का उत्तर--शाखाओं में जो कर्म विहित हैं, वे जहां तक वेदानुकूल हों, प्रामाणिक हैं, विरुद्ध हों तो प्रामाणिक नहीं हैं।

बाईसवें का उत्तर—ईश्वर का कभी भी जन्म-मरण नहीं होता है। जिसके जन्म-मरण होते हैं, वह ईश्वर ही नहीं है। सर्वशक्तिमान् होने से, अन्तर्यामी होने से, निरवयव होने से, परिपूर्ण होने से, न्यायकारी होने से (ही ईश्वर ईश्वर है)।

तेईसवें का उत्तर—मैं सन्यास आश्रम में हूं।

चौबीसवें का उत्तर 'सत्यधर्मविचार'[1] नामक पुस्तक जिसने

था। इसका हिन्दी अनुवाद सन् १८६६ में बम्बई से छपा था। यह ग्रन्थ ऋषि दयानन्द के संग्रह में भी विद्यमान था। इस ग्रन्थ के अनेक प्रकरण सत्यार्थप्रकाश से अत्यन्त साम्य रखते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से ईसाई और मुसलमान मतों का इसमें किया गया खण्डन विशेष महत्त्व रखता है। रा० ला० क० ट्रस्ट के पुस्तकालय में इसका हिन्दी संस्करण विद्यमान है। इस पर इस पुस्तक के द्वितीयभाग के अन्त में द्वितीय परिशिष्ट में टिप्पणी देखें।

१ कार्तिक सुदी १२, संवत् १९२६ तदनुसार १६ नवम्बर सन् १८६९ के दिन ऋषि दयानन्द का काशी के पण्डितों के साथ मूर्तिपूजा पर जो शास्त्रार्थ हुआ था, उसको संस्कृत में भाषार्थसहित मुंशी हरवंशलाल की

यन्त्रालय में छपवाई है, उसका मत उस (पुस्तक) में है, मेरा उनके मत में आग्रह नहीं।

यदि हम आर्य लोग वेदोक्त धर्म के विषय में प्रीतिपूर्वक पक्षपात को छोड़कर विचार करें, तो सब प्रकार से कल्याण ही है, यही मैं चाहता हूं। इसके लिये नित्य सभा होनी चाहिये। ऐसा होवे तो उत्तम हो। जिस विधि से नानाविध सम्प्रदायों का नाश हो जाये, उस विधि का सब को अवलम्बन करना चाहिये।

प्रश्न दोषपूर्ण हैं, परन्तु ११, १४ १५ प्रश्नों में 'पीसे को पीसना' जैसा पुनरुक्ति दोष है,; क्योंकि उन्होंने यही नहीं समझा। इसलिये मैंने जान लिया कि प्रश्नकर्त्ता को प्रश्न करने का ही ज्ञान नहीं है। और ऐसे प्रश्नकर्त्ता के साथ समागम करने से उचित विचार नहीं हो सकेगा, ऐसी मेरी सम्मति है। और जिसने प्रश्न किये हैं, उसने अपना नाम भी नहीं लिखा। यह भी एक दोष है, ऐसा सज्जनों को समझना चाहिये, **और इसमें स्वामी जी की सम्मति है।** इस के उपरान्त जो कोई अपना नाम प्रकटरूप से लिखने के बिना प्रश्न करेगा, इस का उत्तर उसी से दिलवाऊंगा। और जिस सम्प्रदाय को जो मानता है, उनको संक्षेप से जब तक न कहेगा, तब तक इसका भी इसी से दिलवाऊंगा।

प्रकाशक स्वामी पूर्णानन्द[1]। कार्तिक शुक्ल ७, सोमवार,

सम्मति से गोपीनाथ पाठक ने प्रकाशन किया था। उसके अन्त में प्रश्नोत्तर रूप में संस्कृत और हिन्दी में 'सद्धर्मविचार' नाम से पुस्तिका भी छपी थी। पण्डित लेखरामजी कृत जीवनचरित, हिन्दी संस्करण, पृष्ठ १५६ में "सद्धर्मविचार" का "सत्यधर्मविचार" नाम से पत्र-पत्रिकाओं द्वारा की गई समालोचना में उल्लेख मिलता है। उसी की ओर यहां भी संकेत है। काशीशास्त्रार्थ, जो पहली बार छपा था, उस पर अंग्रेजी में १८६९ सन् का उल्लेख है। अर्थात् शास्त्रार्थ के डेढ़ महीने के भीतर ही यह प्रकाशित हो गया था। इसे हमने वेदवाणी के सन् १९८८ के दयानन्द विशेषाङ्क के रूप में तथा स्वतन्त्र रूप में पुस्तकाकार छापा है।

१. इन स्वामी पूर्णानन्द के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं होता है। वेदविरुद्ध मत खण्डन के सं० १९३० के प्रथम संस्करण के मुखपृष्ठ पर पहले संस्कृत में **'सम्मतिरत्र वेदमतानुयायी पूर्णानन्दस्वामिनः'**, तत्पश्चात्

संवत् १९३१, तदनुसार १६ नवम्बर सन् १८७४।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ४८]　　विज्ञापन-सारांश[1]

जो कोई हम से शास्त्रार्थ करना चाहे, वह अपना नाम, मत, सम्प्रदाय साफ-साफ बतला देवे, तब हम उसका उत्तर देंगे, या उस से शास्त्रार्थ करेंगे। परदे की ओट में आक्षेप करना ठीक नहीं।

— ० —

[पूर्ण संख्या ४९]　　पत्र

स्वस्तिश्रीमच्छ्रेष्ठोपमायोग्य लाला हरिवंश लाल आदि को दयानन्द सरस्वती स्वामी को आशिष पहुंचे। या आगे मडनराम पण्डित और बलदेवदत्त स्वामी जी के शिष्य का आशीर्वाद यथोचित पहुंचे। यहां कुशल आनन्द है। आप लोगों का कुशल आनन्द चाहिये। आगे पौष वदि ५ सम्वत् १९३१ (२८ दिसम्बर सन् १८७४) को अहमदाबाद से राजकोट काठियावाड़ में गये। वहां दस बारह वक्तृत्व भये। लोग सुनके बड़े प्रसन्न भये। राजकोट में एक राजकुमार पाठशाला है। सो इसमें राजकुमार लोग पढ़ते है। कई राजकुमार वक्तृत्व में आते रहे। सुनके बहुत प्रसन्न भये। एक दिन मास्टर लोग स्वामी जी को राजकुमार पाठशाला में ले गये। स्वामी जी ने वहां भी वक्तृत्व किया। राजकुमार लोग सब बहुत प्रसन्न भये। फिर स्वामी जी ने राजकुमार लोगों को बहुत शिक्षा की। फिर राजकुमार पाठशाला के प्रिंसिपल साहब ने स्वामी जी से कई बातें पूछीं। स्वामी जी ने सब का उत्तर दिया।

गुजराती भाषा में **'वेदमतानुयायी पूर्णानन्द स्वामिनो संमति छे'** छपा हुआ मिलता है। इसका नाम ऋ०द० के पूर्णसंख्या ६३ के पत्र में भी मिलता है।

अगले पूर्णसंख्या के विज्ञापन से प्रतीत होता है कि जिन प्रश्नों का उत्तर दिया है, उन प्रश्नों के लेखक का अपना स्पष्ट नाम नहीं। अत एव ऋषि दयानन्द ने उन प्रश्नों का स्वयं उत्तर नहीं छपवाया।

[1] यह सारांश पं० लेखराम कृत जीवनचरित्र, हिन्दी सं० पृ० २१२ पर मिलता है।

साहब भी बहुत प्रसन्न हुए। स्वामी जी को दो जिल्द ऋग्वेद[1] के पुस्तक नजर किये।

पौष सुदि ११ संवत् १९३१ सोमवार (१८ जनवरी १८७५) को राजकोट से अहमदाबाद को चले. पूर्णमासी बृहस्पतिवार (२१ जनवरी सन् १८७५) को अहमदाबाद में आये। पांच सात दिन रहेंगे। फिर मुम्बई की तरफ जायेंगे। बड़ोदा में नहीं जायेंगे। बड़ोदा में गड़बड़ मची है। अंग्रेज लोग फौज लेके चढ़ गये, राजा को कैद कर दिया। राजा के ऊपर विष का फरेब लगाके[2]।

आगे सत्यार्थ-प्रकाश कितने अध्याय[3] तक छपा? जितना छपा[4] हो, तितना राजा जयकृष्णदास के पास भेज दो। जल्दी छापो, यहां बहुत से लोग लेने को कहते हैं। इसके बिना बहुत हरकत है, और शिक्षा की पुस्तक छपी कि नहीं[5]। आगे शुभ हो।

संवत् १९३१ मिति माघ वदि २ शनिवार (२३ जनवरी सन् १८७५)।

आगे मुरादाबाद में कुरान के खण्डन का अध्याय शोधने के वास्ते गया। सो शोधके आप के पास आया कि नहीं? जो न आया हो तो राजा जयकृष्णदास जी को पत्र लिखो। जल्दी आपके वास्ते भेज देवें, और बायबिल का अध्याय सब शोध करके छाप [दो] दो महीने में छापने के वास्ते जो आपने लिखा है, सो दो महीने में पुस्तक छाप दो। शुद्ध करके, अशुद्ध न होने पावे। और पाठशाला की व्यवस्था आप लोगों के ऊपर है, जैसे चले वैसे चलाये जाओ। हम लोग और स्वामी जी अति प्रसन्न हैं। स्वामी

---

१ सम्भवतः, यह मैक्समूलर सम्पादित पदपाठसहित मूल ऋग्वेद के पुस्तक रहे होंगे। ऋषि दयानन्द के संग्रह में ऋग्वेद का यह संस्करण था।

२. उस समय कर्नल फेअर बड़ोदा में रेजिडेण्ट था। उसी को विष देने का दोष महाराजा बड़ोदा पर लगाया गया था। उस समय भारत का गवर्नर लार्ड नार्थ ब्रुक था।

३. अर्थात् कितने समुल्लास तक।

४ इस समय सत्यार्थप्रकाश (प्रथमावृत्ति) हरिवंशलाल बनारस के स्टार प्रेस में छप रहा था।

५. शिक्षापत्री-ध्वान्तनिवारण संवत् १९३१ सहस्य - पौष मास बदि ११ (३ जनवरी १८७५) रविवार को समाप्त हुई।

जी का आशीर्वाद सब लोगों से कह देना। जवाब इस पता से लिखना।

मुम्बई में ठिकाना वालकेश्वर के समीप ठाकुर श्री नारायण जी के नाम से भेज देना, हमको मिल जायेगा।[1]

— o —

[पूर्ण संख्या ५०] 'आ कृष्णेन' (यजु० ३३।४३)

मन्त्र का अर्थ[2]

आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्

(आकृष्णेन) आकर्षणात्मना (रजसा) रजोरूपेण रजतस्वरूपेण वा (रथेन) रमणीयेन (देव) द्योतनात्मक (सविता) प्रसवकर्त्ता वृष्ट्यादे (मर्त्यम्) मर्त्यलोकम् (अमृतम्) ओषध्यादिरसम् (निवेशयन्) प्रवेशयन् (भुवनानि पश्यन्) दर्शयन् (याति) रूपादिकं विभक्तं प्रापयतीत्यर्थं (हिरण्ययेन) ज्योतिर्मयेन।

(सविता) सर्वस्य जगत उत्पादक (देव) सर्वस्य प्रकाशक (मर्त्यम्) मर्त्यलोकस्थान् मनुष्यान् (अमृतम्) सत्योपदेशरूपम् (निवेशयन्) प्रवेशयन् सर्वाणि (भुवनानि) सर्वज्ञतया (पश्यन्) सन् (आकृष्णेन) सर्वस्याकर्षणस्वरूपेण परमाणूनां धारणेन वा (रथेन) रमणीयेनानन्दस्वरूपेण वर्त्तमान सन् (याति) धर्मात्मन सतान् भक्तान् सकामान् प्रापयतीत्यर्थं।

सं० १९३१ पौष वदी षष्ठी[3] बुधवार, ७ काल (घण्टा) ६०

---

१ यह पत्र प० लेखराम कृत उर्दू जीवनचरित्र पृ० २३३-२३४ से देवनागरी में प्रतिलिपि किया गया है। यह हिन्दी सं० में पृष्ठ २६८-२६९ तक छपा है। मूल पत्र प० लेखराम जी के संग्रह में नष्ट हो गया प्रतीत होता है। उर्दू प्रतिलिपि में दो चार शब्द ही बदले गये हैं शेष पत्र यथावत् ही है। [यह पत्र बड़ोदा वा अहमदाबाद से भेजा गया था।

२ यह मन्त्रार्थ प० देवेन्द्रनाथ सङ्कलित जीवनचरित्र, भाग १, पृ० ३२३ पर छपा है। इस मन्त्र का पौराणिक पण्डितों द्वारा किया गया अर्थ भाग ३ में पूर्णसंख्या १४ पर देखें।

३ यह गुजराती पञ्चाङ्ग के अनुसार है। उत्तम भारतीय पञ्चाङ्ग

मिति' सही सम्मतिरत्र दयानन्द-सरस्वतीस्वामिनः[1]।

— ० —

[पूर्ण संख्या ५१] आक्षेप-खण्डन सूचना

आकृष्णेन मन्त्र के अर्थ पर विष्णु परशुराम शास्त्री के आक्षेपों का लिखित खण्डन।[2]

— ० —

[पूर्ण संख्या ५२] पत्र

ओरस्तु

स्वस्ति श्रीमच्छ्रेष्ठोपमायुक्तेभ्यो 'गोपालरावहरिदेशमुखाभिधेभ्यो दयानन्दसरस्वतीस्वामिन आशिषो भूयासुस्तमाम्। शमिहास्ति तत्रास्त्वस्तुतमाम्। अग्रे भाषया वृत्तम्। आगे आपने जो दवाइन और छतरी भेजा सो हमारे पास आगई। और प्रार्थनासमाज में जो ज्ञान की चोपड़ी[5] है, सो हमारे पास नहीं आई। आगे यहां वक्तृत्व भी होनेवाला है। वक्तृत्व के वास्ते स्थान भी बन रहा है। और आर्यसमाज का भी प्रयत्न अच्छा हो रहा है

के अनुसार माघ वदी षष्ठी जाननी चाहिये। २७ जनवरी सन् १८७५।

१. यह समय सायङ्काल का है।

२. इस शास्त्रार्थ का संकेत पूर्णसंख्या ५३ के पत्र (पृष्ठ ७१ पं० ८) में इस प्रकार है—'आकृष्णेन' मन्त्र के अर्थ हमारा उनके पर निश्चय कर अर्थ पत्र भेजा होगा।'

३. इसका निर्देश पूर्णसंख्या ५३ के पत्र (पृष्ठ ७१ पं० २५) में है—'उस (विष्णुशास्त्री) का खण्डन सभा में हमने सब को सुना दिया तथा लिख भी दिया।' तथा पूर्णसंख्या ५५ के पत्र (पृष्ठ ७४ पं० ५) में भी 'उस का प्रत्युत्तर करके उसके (=विष्णु शास्त्री के) पास भेजा था परन्तु उसने नहीं छापा।' ऐसा लेख मिलता है।

४. गोपालराव हरिदेशमुख जज अहमदाबाद के नाम लिखे ६ पत्र पूर्णसंख्या ५२, ५३, ५५, ५७, ६०, ६२ पर छपे हैं। इन पत्रों के प्रतिलिपि श्री माधवराव जी मेरठ निवासी पं० घासीराम एम० ए० के पास से अक्तूबर सन् २६ में लाए थे। पं० जी के पास ये प्रतिलिपियां ऋषिभक्त श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के संग्रह में आई थीं।

५. गुजराती भाषा में 'चोपड़ी' शब्द पुस्तक का वाचक है।

आप अहमदाबाद में आर्यसमाज का होना न करें उसका यत्न किये रहें। और आपके पुत्र के हाथ ४ पुस्तक सत्यार्थ-प्रकाश के १२० पृष्ठ तक छप गये हैं, सो आप के पास भेजे हैं, पहुंचे कि नहीं। १ आपके वास्ते। १ भोलानाथ जी के वास्ते। १ महीपतिराम जी के वास्ते। १ बेचरभाई के वास्ते। जो न पहुंचे होय तो पत्र भेजके मंगा लीजिये। अब तक आप लोगों ने आर्यसमाज का आरम्भ किया [वा] नहीं। जो न किया होय तो जल्दी करें। और अच्छे काम में देर नहीं लगाना चाहिये। और देखिये कि आर्यसमाज नाम रखने से उस पर किसी प्रकार का दोष नहीं आता। क्योंकि उसमें ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना और सब उत्तम व्यवहार करने में आवेंगे। सो आर्य नाम श्रेष्ठ का जो समाज। और प्रार्थनासमाज नाम रखने से अनेक दोष आते हैं। प्रार्थना [नाम] किया, उसका समाज क्या होगा? तथा स्तुति उपासना और सदुपदेशादि व्यवहार भी किये जाते हैं, सो नामार्थ से विरुद्ध होता है। इससे हम लोग कूं नाम ऐसा रखना चाहिये कि जिसमें दोष न आवै। सो आर्यसमाज ही नाम रखना उचित है, प्रार्थनासमाजादि नहीं। सो आर्यसमाज प्रारम्भ होने का विलम्ब करना उचित नहीं। जल्दी करना चाहिए। इसी में सब का हित होगा अन्यथा नहीं। आप कुछ फिकिर न करें। यहां निषेकादि अन्त्येष्टी (ष्टि)पर्यन्त संस्कार की चोपड़ी[1] बनाने की तैयारी हो रही है। और स्तुति प्रार्थना उपासना करने के वास्ते वेदमन्त्रों से चोपड़ी बनने की तयारी है। और नियमों[2] की भी। और सन्ध्याभाग्य[3] की पुस्तक छपके तयार होने रही है। दो चार दिन में तयार हो जायगा। सो आपके वास्ते भेज देवेंगे सत्यनारायण(म) बलदेवदत्त का नमस्कार यथोचित पहुंचे। आगे वेदविरुद्धमतखण्डन[4] की

[1] अर्थात् संस्कारविधि। इस पर इस पुस्तक के द्वितीय भाग के अन्त में द्वितीय परिशिष्ट में छपी टिप्पणी देखें।

[2] अर्थात् आर्याभिविनय। · सम्भवतः आर्यसमाज के नियमों की।

[4] इस का तात्पर्य 'सन्ध्योपासनादिपञ्चमहायज्ञविधि' नामक ग्रन्थ से है।

[5] वेदविरुद्धमत खण्डन के अन्त में उसका रचना-काल निम्न

पुस्तक जितनी मगानी होय उतनी मगा लीजिये, फिर नही मिलेंगी। और सत्यार्थप्रकाश का भाग अभी एक-एक रुपये मिलता है। सो जितना मगाना होय मंगा लीजिये। और वहा का हाल सब लिखना। गान की चोपडी[1] हमारे पास भेज दीजियेगा। इस पत्र का प्रत्युत्तर जलदी भेज दीजियेगा।

स० १९३१ मिति फाल्गुन बद्य २ इदुवार।[2]

—:o

[पूर्ण संख्या ५३] पत्र

ओ३म्

स्वस्ति श्रीमच्छ्रेष्ठोपमायुक्तेभ्य श्रीयुतगोपालरावहरिदेशमुखाभिधेभ्यो दयानन्दसरस्वतीस्वामिन आशिषो भूयासुस्तमाम्। शमिहास्ति तत्राप्यस्तुतमाम्। आगे पत्र आपका आया। समाचार सब मालूम भया। गान आदि पुस्तक ४, छाता १, दवात १, सब हमारे पास पहुंच गये। आगे मुम्बई मे कोट के मैदान मे सद्गृहस्थ लोगों ने मण्डप रचा है। उसमें एकान्तरे वक्तृत्व प्रश्नोत्तर की सभा होती है। मुम्बई के पण्डित लोगों ने कहा कि स्वामी जी को व्याकरण मे अच्छा अभ्यास नही है। इस बात को सुनके एक दिन व्याकरण की सभा किया। उसमें पण्डित लोग आये। व्याकरण मे प्रश्नोत्तर होने लगा। पण्डितो की धूड़ उड़ गयी। पण्डित लोग

लिखित है

शशिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे कार्तिकस्यासिते दले।
अमायां भौमवारे च ग्रन्थोऽयम्पूर्तिमागतः ॥१॥

[अर्थात् संवत् १९३१ कार्तिक वद्य ३० मंगलवार (८ दिसम्बर १८७४)। वेदविरुद्धमतखण्डन का उपर्युक्त लेखनकाल गुजराती पञ्चाङ्ग के अनुसार है। वेदविरुद्धमतखण्डन का उपर्युक्त संस्करण गुजराती अनुवाद सहित छपा था। यह गुजराती अनुवाद श्री प० श्यामजी कृष्णवर्मा ने किया था। द्र०—'दयानन्दीय लघुग्रन्थ संग्रह' (रालाकट्रस०) के आरम्भ में ऐतिहासिक विवरण, पृष्ठ ७२।

१ इस सम्बन्ध में देखिए इस पुस्तक के द्वितीय खण्ड में छपी द्वितीय परिशिष्ट की टिप्पणी।

२ २२ फरवरी १८७५। पत्र बम्बई से लिखा गया है। फिर भी तिथि उत्तर भारतीय पञ्चाङ्गानुसार ही है।

चुप हो गये। फिर सभा के लोगों ने पण्डितों से कबूल करा लिया। पण्डित लोगों ने कबूल कर लिया कि स्वामी जी को बहुत अच्छा व्याकरण आता है। फिर पण्डित लोगों से कहा कि व्याकरण का दो प्रश्न हम आप लोगों को लिखा देते हैं। उसका प्रमाणपूर्वक उत्तर लिख ल्याइये। उस दिन से सब लोगों को बहुत विश्वास हो गया है। मुम्बई में आर्यसमाज होने की तय्यारी है। और 'इन्दु-प्रकाश' के सम्पादक विष्णुशास्त्री के पास आप लोगों में से कोई ने "आकृष्णेनेति" मन्त्र के अर्थ हमारा[1] उनके पर[2] निश्चय के अर्थ पत्र भेजा होगा। उस पर उसने जो कुछ लिखा, सो सब मिथ्या ही है। और यह विष्णु शास्त्री धूर्त विद्याहीन हठी दुराग्रही मिथ्या-चारी है। इसमें सन्देह नहीं। उस विष्णु शास्त्री के विषय एक बानगी लिखते हैं कि ऐसी मूर्खता कोई विद्यार्थी भी नहीं करेगा। [वह लिखता है -] 'ऋ गतिप्रापणयोः' इस धातु से रथ शब्द सिद्ध हुआ है **रमु क्रीडायाम्** इस धातु से नहीं। 'इसमें यह अर्थ निर्युक्तिक और निर्मूल है। इस अंधा की भीतर और बाहर की दोनों फूट गई आंख। **पाणिनिमुनिरचित उणादिगणसूत्र- [का] प्रमाण– हनिकुषिनीरमिकाशिभ्यः क्थन्**[3]। **हथः। कुष्ठः। नीथः। रथः। काष्ठम्॥ यास्को निरुक्तकारः "रथो रंहतेर्गतिकर्मणः**[4] **इत्यत्र "रममाणोऽस्मिंस्तिष्ठतीति वेति।"** इससे रमु धातु से ही रथ शब्द सिद्ध होने से '**रमणीयो रथो रमतेऽस्मिन्निति वा।**' अतः इस विष्णुशास्त्री का कहना व्यर्थ ही हुआ। और इसको सभा के लिये निमन्त्रण भी दिया है, परन्तु वहां काय को आवेगा? वह तो झूठा झूठा घर में बैठा बकेगा। जिस ने उसके पास पत्र भेजा सो भी व्यर्थ किया। क्योंकि ऐसे मिथ्यावादी मूर्ख के कहने का क्या ठिकाना? इसका खण्डन सभा में हमने सब को सुना दिया तथा लिख भी दिया है। परन्तु वह धूर्त अपने पत्र में छापेगा नहीं। और जो छापेगा तो उसको आप लोग लिखना कि हमारा किया समा-धान और उनका खण्डन छापै। जो विष्णु शास्त्री न छापेगे, तो फेर अन्यत्र छपाया जायगा। आप लोग इस तरह बुद्धिवाले पक्ष-

1. यह अर्थ पूर्णसंख्या ५० पृष्ठ ६३ पर छपा है।
2. 'उनके पर' अर्थात् उन के पास।
3. उणादि २।२॥
4. निरुक्त ९।११॥

पंक्तियों को पूछते हो निश्चय करने को, सो सायणाचार्यादिकों को ही यथावत् वेदार्थ का बोध नहीं है तो उनके पीछे चलनेवालों का यथावत् ज्ञान कहां से होगा ? इसी लिये इन धूर्तों को मध्यस्थ हम नहीं करते। क्योंकि इन पण्डितों की बुद्धि अविद्या लोभादि दोषों से नष्ट हो गई है। और सब अहमदाबाद के पण्डितों से उन्नीस वा बीस, तथा वैसे ही सब पण्डितों का स्वभाव जानना। तथा हमारा नाम सुनते ही विपरीत उलटे चलते हैं। सो जिस पण्डित से पूछोगे वह झूठा ही कहेगा। इन पण्डितों का वेदार्थज्ञान का लेशमात्र भी ज्ञान नहीं है। पुस्तक आपने भेजे। सो आ गये। आर्यसमाज का स्थापन शीघ्र करोगे तो अच्छा है।

सम्वत् १९३१ मिति फाल्गुन शुद्ध ६ मंगलवार[1]।

— ० —

[पूर्ण संख्या ५४] विज्ञापन[2]

सदर्हु, स्वामीनी केलेले संस्कृतप्राकृत भाष्यासहित ग्रंथ छापावयाचे आहेत परंतु या कामास द्रव्यानुकूलतेची विशेष न्यूनता असल्यामुळे ती दूर करण्याच्या उद्योगात आहोत, आणि हे ग्रंथ छापण्यास सुरवात केल्याची किमतीसहवर्तमान लवकर सर्वांस कळविण्यांत येईल

या विषयी मागाहून जाहीरात दिली जाईल, या शिवाय सब आर्यलोकांकरिता सद्धर्म विचार नावाचें मासिक पुस्तकांत सत्यार्थ-नामक ग्रंथाचे भाषान्तरासहित विषय घेतले जातील या कामास सर्व आर्यलोक आपला उदार आश्रय देतील अशी आशा आहे[3]

---

[1] २६ मार्च १८७५ [यह पत्र बम्बई से लिखा गया है]।

[2] यह मराठी भाषा में लिखित विज्ञापन ऋषि दयानन्द द्वारा आश्विन सुदि ? सं० १९३१ में लिखित तथा शकाब्द १७९६ (सं० १९३१ = सन् १८७४) में प्रकाशित '**सभाष्यसन्ध्योपासनादिपञ्चमहायज्ञविधि**' के अन्त में आवरण पृष्ठ ४ पर छपा है। विज्ञापन के मूल पाठ में ५-६ अशुद्धियां हैं, उन्हें उसी प्रकार रहने दिया है।

[3] यह विज्ञापन सं० १९३१ के अन्त में प्रकाशित हुआ था।

भाषानुवाद

विज्ञापन

स्वामी जी द्वारा रचित संस्कृत प्राकृत भाष्यसहित ग्रन्थों को प्रकाशित करवाना है। परंतु इस कार्य के लिये द्रव्यानुकूलता का विशेष अभाव है, जिसे दूर करने का हम प्रयास कर रहे हैं। इन ग्रन्थों के प्रकाशन का कार्य प्रारंभ होते ही मूल्य के साथ वर्तमान स्थिति की सूचना सभी को दी जाएगी।

इस सबंध में कुछ समय पश्चात् विज्ञापन दिया जायेगा। इसके अतिरिक्त सभी आर्य सज्जनों के लिए 'सद्धर्म विचार' नामक मासिक में 'सत्यार्थ' नामक ग्रन्थ के विषयों का अनुवाद सहित प्रतिपादन होगा।

इस काम में सभी आर्य सज्जन उदारता से सहयोग प्रदान करेंगे, ऐसी आशा है।

— ० —

[पूर्ण संख्या ४५] **पत्र**

ओरस्तु

स्वस्ति श्रीमच्छ्रेष्ठोपमायुक्तेभ्य श्रीयुतगोपालरावहरिदेश-मुखादिभ्यो दयानन्दसरस्वतीस्वामिन आशिषो भूयासुस्तमाम्। शमिहास्ति, तत्रास्त्वनुतमाम्। आगे मुम्बई में चैत्र शुद्ध ५ शनिवार[1] के दिन सन्ध्या के साढ़े पांच बजते आर्यसमाज का आनन्दपूर्वक आरम्भ हुआ।[1] ईश्वरानुग्रह से बहुत अच्छा हुआ। आप लोग भी

1. बम्बई आर्यसमाज की स्थापना चैत्र शुक्ला ५ शनिवार सं० १९३२ (१० अप्रैल १८७५) को हुई थी, यह उपर्युक्त लेख से स्पष्ट है। ऋषि दयानन्द के जीवनचरित्र-लेखक प० लेखरामजी तथा प० देवेन्द्रनाथजी आदि ने यही तिथि लिखी है। इस तिथि की पुष्टि बम्बई आर्यसमाज की प्रारम्भिक १९ मास की मुद्रित संक्षिप्त कार्यवाही से भी होती है। यह कार्यवाही २० × ३० = ३२ आकार के ३२ पृष्ठों में छपी है, बाह्य टाइटल पेज पृथक् है। इस कार्यवाही के प्रथम पृष्ठ पर अन्दर का टाइटल है। द्वितीय पृष्ठ खाली है और तृतीय पृष्ठ पर स्थूलाक्षरों में "**श्री आर्य-समाज स्थापना सं० १९३१ ना चैत्र शुद्ध शनिवार**" स्पष्ट लिखा है (यहां सं० १९३१ गुजराती पञ्चाङ्गानुसार है)। इस कार्यवाही के

यहां आरम्भ कर दीजिये। विलम्ब मत कीजिये। नासिक में भी होनेवाला है। अब आर्य्य-समाजार्थ [नियम] और संस्कारविधान का पुस्तक वेदमन्त्रों से बनेगा शीघ्र। इन्दुप्रकाशवाले विष्णुशास्त्री सुधारेवाला तो नहीं, किन्तु कुधारेवाला मालूम पड़ता है। उसका प्रत्युत्तर करके उसके पास भेजा था, परन्तु उसने नहीं छापा। इस्से पक्षपाती भी दीखता है[1]। अब वह अन्यत्र छपवाया जायगा। सद्यो-

---

मुखपृष्ठ पर मुद्रणकाल "संवत् १९३२ ना माहा वद० ॥ सन् १८७६" (अर्थात् सं० १९३२ माघ वदि) छपा है। आर्यसमाज स्थापनादिवस के सम्बन्ध में इस समय जितनी भी पुरानी सामग्री (रेकार्ड) मिलती है, उस में यह सब से पुरानी और विश्वसनीय है। हमें यह नियमावली उक्त आर्यसमाज के कार्यकर्ता हमारे मित्र श्री पं० परमदत्त जी की कृपा से २६ अक्टूबर १९५२ को बम्बई में देखने को प्राप्त हुई। सन् १९३९ के पश्चात् सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा द्वारा "चैत्र शुक्ला १" को आर्यसमाज-स्थापना दिवस मनाने की जो प्रतिवर्ष घोषणा होती है, उस का एकमात्र आधार बम्बई आर्यसमाजमन्दिर पर लगा हुआ जाली शिलालेख है। इस भवन का निर्माण आर्यसमाज स्थापना के ७ वर्ष के अनन्तर हुआ था यह भी वहीं लगे अन्य शिलालेखों से स्पष्ट है। हमारे विचार में आर्यसमाज-स्थापनादिवसवाला शिलालेख भवननिर्माण कालवाले शिलालेखों से भी अर्वाचीन है। इसलिये उक्त आर्यसमाज स्थापनादिवसवाला शिलालेख सर्वथा भ्रान्तिपूर्ण और अशुद्ध है। अतः उस शिलालेख और उसके आधार पर सन् १९३९ के अनन्तर सार्वदेशिक सभा द्वारा घोषित आर्यसमाज की स्थापना तिथि में संशोधन होना अत्यन्त आवश्यक है। इस के विषय में वेदवाणी वर्ष ६, अङ्क ५ = ११ में हमारा लेख देखें तथा ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन भाग - २ के अन्त में चतुर्थ परिशिष्ट देखें। उसमें आर्यसमाज बम्बई के सभी लिखित वा मुद्रित प्रमाणों की विवेचना की है।

१. पं० लेखराम कृत जीवनचरित्र हिन्दी सं० पृष्ठ २८८ से विदित होता है कि 'इन्दुप्रकाश' के सम्पादक विष्णुशास्त्री आरम्भ में स्वामी जी महाराज के विरुद्ध थे, परन्तु कुछ समय पश्चात् वे विरोधी नहीं रहे।* यह विष्णु शास्त्री चिपलूणकर 'निबन्धमाला' के कर्ता थे। इन्होंने मृत्युपर्यन्त स्वामी

* इस सम्बन्ध में दूसरे भाग के अन्त में द्वितीय परिशिष्ट की टिप्पणी देखें।

सन्ध्योपासनादि पञ्चमहायज्ञविधान का भाष्य सहित पुस्तक यहां छप-वाया गया है। सो १० पुस्तक आपके पास भेजा जाता है। यथा-योग्य उत्तम पुरुषों को बांट देना। उन नियमों[1] में दो नियम बड़े हैं। सो एक[2]-विवाहादि उत्साह किंवा मृत्यु, अथवा प्रसन्नता समय जो कुछ दान-पुण्य करना उसमें से श्रद्धानुकूल आर्य्यसमाज के लिये अवश्य देना चाहिये। और दूसरा नियम[3] यह है जब तक नौकरी करनेवाला तथा नौकर रखनेवाला आर्य्यसमाजस्थ मिले तब तक अन्य को [न] रखना। और न रखना। और यथायोग्य व्यवहार दोनों रखें। प्रीतिपूर्वक काम करें और करावें। डाकतर माणिकजी ने आर्य्यसमाज होने के लिये स्थान दिया है, परन्तु संकुचित है। सो अब बहुत बढ़ेंगे मिंबर[4] तब दूसरा नया बनेगा, किंवा कोई ले जायगा। अत्यन्त आनन्द की बात है कि आप लोगों के ध्यान में स्वदेशहित की बात निश्चय हुई है। परमात्मा के अनुग्रह से उन्नति नित्य इसकी होय।

संवत् १९३१ मिति चैत्र शुद्ध ६ रवीवार।[5]

आपके पुत्र के हाथ संध्यादि भाष्य के पुस्तक १०।

— o —

[पूर्ण संख्या ५६] उत्तरपत्र-सूचना

[जैन साधु, बम्बई]

एक याजुष मन्त्र पर किये गये कटाक्ष के उत्तर में।[6]

— o —

जी पर आक्षेप किये। द्र०—पं० लेखराम कृत जीवनचरित हिन्दी संस्क० पृष्ठ २८५।

१. छब्बीस नियम ऋषि दयानन्द ने २८ से ३० नवम्बर १८७४ को हिन्दी भाषा में बम्बई में रचे थे। इन्हीं का उपयोग राजकोट में किया था। इस सम्बन्ध में इस पुस्तक के द्वितीय भाग के अन्त में द्वितीय परिशिष्ट में टिप्पणी देखें। २. द्रष्टव्य—सत्ताईसवां नियम।

३. द्रष्टव्य—छब्बीसवां नियम। ४. अर्थात् मेम्बर।

५. ११ अप्रैल १८७५। यहां सं० १९३२ चाहिए, क्योंकि बम्बई से लिखे अगले सभी पत्रों में उत्तर भारतीय पञ्चाङ्ग के अनुसार ही व्यवहार मिलता है। गुजराती पञ्चाङ्ग के अनुसार सं० १९३१ ठीक है।

६. इसकी सूचना पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जी. च. पृष्ठ ३२१ पर है।

[पूर्ण संख्या ५७] **पत्र**

श्रीरस्तु

स्वस्ति श्रीमच्छ्रेष्ठोपमायुक्तेभ्यः श्रीयुक्तगोपालरावदेशमुख-भोलानाथ-महीपतिरामशर्मभ्यो हि श्रीयुतबेचराख्यादिभ्यश्च दयानन्दसरस्वतीस्वामिन आशिषो भूयासुस्तमाम्। शमिहास्ति तत्रत्यं चाशास्महे। आगे आप का पत्र आया। देख के अत्यानन्द हुआ। यहां के आर्य्यसमाज अच्छी तरह चलता है। प्रतिदिन उन्नति ही होती जाती है। और ईश्वरकृपा से नित्य-नित्य बढ़ता ही जायगा।

आर्याभिविनय के २ अध्याय[1] तो बन गये। और चार आगे बनने के हैं। आगे संस्कारविधान पुस्तक भी अवश्य शीघ्र ही बनेगा। आर्यसमाज के नियम और उसकी व्याख्या पुस्तक छपना है।[2] फिर आपके पास भी भेजेंगे सत्यार्थप्रकाश के भी १३ फार्म[3] छप के आ गये हैं। आपके पुत्र के हाथ भेजे जायेंगे। ज्येष्ठ बद्य १५[4] के पूर्व व पश्चात् पूना को हमारा जाने का विचार है। सो जिसको लिखने का योग्य होय, उसको आप लिखना। बड़ोदे को

---

१. आर्याभिविनय में अध्याय नहीं है, प्रकाश है, इस पत्र से यह भी ज्ञात होता है कि आर्याभिविनय ६ अध्यायों वा प्रकाशों में पूर्ण होने वाला था, परन्तु किन्हीं कारणों से २ ही अध्याय वा प्रकाश बन कर रह गये। इस बात की सूचना आर्याभिविनय की उपक्रमणिका के पांचवें श्लोक की भाषा में भी मिलती है। आर्याभिविनय के विषय में अनेक ज्ञातव्य विषयों का उल्लेख हमने 'ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' नामक ग्रन्थ में (पृष्ठ ६६-७६ तक) किया है। आर्याभिविनय का जो संस्करण रामलाल कपूर ट्रस्ट से प्रकाशित होता है, वही प्रामाणिक और शुद्ध है। अजमेर मुद्रित संस्करणों के पाठ अनेक स्थानों पर भ्रष्ट तथा त्रुटित हैं।

२. मूल अट्ठाईस नियम और उनकी व्याख्या "ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार और विज्ञापन" भाग २, परिशिष्ट ३ में दिये हैं। इस संबंध में द्वितीय भाग के अन्त में द्वितीय परिशिष्ट में टिप्पणी देखें।

३. पूर्ण संख्या ५८ के पत्र में पृष्ठ ६६ पर १२० पृष्ठ छपने का उल्लेख है। अतः यहां १३ फार्म के स्थान में १५ फार्म (१५ × ८ = १२०) होना चाहिये।

४. यहां १५ के स्थान में ३० चाहिये। १५ सकल पूर्णिमा का होता है।

जब आप लिखेंगे, तब आवेंगे। वहां भी आप लोगों को आर्यसमाज उस समाज का नाम प्रसिद्ध चलाना चाहिये। उसमें बड़ा फायदा है। विचार से यही ठीक दीखता है। फिर जैसी इच्छा होय वैसा करो। परन्तु स्वदेशादि सब मनुष्यों का निर्विघ्न हित आर्यसमाज से यथार्थ होगा। अथेऽस्यपत्रोत्तरं दयानन्दसरस्वत्योऽप्येवमेवाम्मश्री-स्वरानुग्रहेणेति। किं बहुना लेखेन बहुज्ञेषु।

संवत् १९३२ मिति चैत्र वदी ९ शनिवार।[1]

और शिक्षापत्री के खण्डन पुस्तक की गुजराती भाषा व्याख्या[2] भी हो गई है। उसके तीन वा चार फार्म होंगे। १५ वा १६ रुपये फार्म के हिसाब[3] से ५० वा ६० रुपये लगेंगे। सो वहां छपाओगे वा मुम्बई में। परन्तु जो मुम्बई में छपेगा तो अच्छा होगा। इसका उत्तर शीघ्र भेज देना।[4]

[पूर्ण संख्या ५८] विज्ञापन-सारांश

फ्रामजी कावसजी इन्स्टीट्यूट में १२ जून सन् १८७५, ज्येष्ठ सुदी ९ संवत् १९३२ शनिवार को स्वामी दयानन्द सरस्वती का पं० कमलनयन आचार्य के साथ मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ होगा।[5]

---

१ चैत्र वदी ९ को बुधवार था। वैशाख वदी ९ को शुक्रवार था। ज्येष्ठ वदी ९ को शनिवार था अर्थात् २९ मई १८७५। इसके पश्चात् श्री स्वामी जी के पूना आने का संकेत इसी पत्र में है। अतः इस पत्र की प्रतिलिपि में ज्येष्ठ के स्थान में चैत्र भूल से लिखा गया है। आर्याभिविनय ग्रन्थ भी संवत् १९३२ चैत्र सुदी १० गुरुवार तदनुसार १५ एप्रिल १८७५ को बनना आरम्भ हुआ। यह पत्र उसके पश्चात् ही लिखा गया है। अतः इस पत्र की ज्येष्ठ मास की तिथि ठीक है।

२ 'शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण' का उपर्युक्त गुजराती अनुवाद श्री श्यामजी कृष्णवर्मा ने किया था। देखो ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास पृष्ठ ६७।

३ सम्भवतः इसमें कागज और छपाई दोनों सम्मिलित हैं।

४ यह पत्र बम्बई से लिखा गया है।

५ पं० लेखरामकृत जीवन चरित हिन्दी सं० के पृष्ठ २७२ के आधार पर।

[पूर्ण संख्या ५९] विज्ञापन-सूचना

हम अमुक ग्रन्थ को प्रामाणिक और अमुक ग्रन्थ को अप्रामाणिक मानते हैं।[1]

— ० —

[पूर्ण संख्या ६०] पत्र

स्वस्ति श्रीमच्छ्रेष्ठोपमायुक्तेभ्य श्रीयुतगोपालरावहरिदेशमुख-भोलानाथ-महीपतिराम-बेचरभायाख्यादिभ्यो दयानन्दसरस्वतीस्वामिन आशिषो भूयासुस्तमाम्। शमिहास्ति तत्रत्य नित्यमाशास्महे। आगे पूना में महादेव गोविन्द रानडे, माधवराव मोरेश्वर कुण्टे तथा लश्कर[2] में गङ्गाराम भाऊ आदि पुरुषों ने अच्छी प्रकार व्याख्यानादि प्रबन्ध पूर्वक कराये। और व्याख्यान छपवाते भी हैं। तथा वेदभाष्य बनवाने के लिये पण्डित रखने के वास्ते कुछ फण्ड जमा किया है। और कुछ करने का भी है। तथा आर्यसमाज स्थापन अवश्य करना। इसलिये दो वक्त सभा होके व्यवस्थापक मण्डली निश्चित हो गई है। और एक सभा करनेवाले हैं। उसमें प्रधान, मन्त्री और कोशाध्यक्षादि निश्चित करके आर्यसमाज का आरम्भ करने वाले हैं। सो शीघ्र ही होगा ऐसा मालूम पड़ता है। अन्य सब वर्तमान 'ज्ञानप्रकाश'[3] समाचार से आप लोगों ने देखा ही होगा। आगे हम यहां से सतारे को जानेवाले हैं दो एक दिन में। अथवा बड़ोदे की ओर आनेवाले हैं। सो जब यहां से वा सतारे को जाके मुम्बई की ओर चलेंगे तब एक आध दिन दादरे के रेलघा[र] पर ठहर के उधर आने का विचार है। सो दादरे से आपके पास तार द्वारा खबर देने में आवेगी। फेर जैसी आप खबर देंगे कि प्रथम बड़ोदे को ही आना किंवा सूरत और भरूच को होके बड़ोदे को आना, वैसा किया जायेगा। आगे एक पण्डित रखने के लिये महादेव गोविन्द आदि ने ५० रुपैयों का निश्चय किया है। तथा मथुरादास लौजी और छबिलदास

1. इस की सूचना पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ३४८ पर है। जी० च० के अनुसार पूना पहुंचते ही यह विज्ञापन दिया था।

2. अर्थात् पूना छावनी।

3. इस नाम का गुजराती समाचारपत्र उस काल में छपता था।

लल्लू भाई आदि आर्यसमाज के सभासदों ने भी वेदभाष्य होने के लिये २०००० रुपैये जमा करने के लिये सेर[1] १०० रुपैयों का खड़ा करके १०००० रुपैये तक तो सेर भर गये हैं। और बहुत शीघ्र ही वे लोग बीस हजार ही रुपैये जमा कर लेंगे, ऐसा मालूम पड़ता है। एक पण्डित के लिये राजा जयकृष्णदास जी ने स्वीकार किया ही है। तथा यहां महादेव गोविन्द आदि की तथा हमारी भी इच्छा है कि एक पण्डित के रखने के लिये ५० रुपैयों का प्रबन्ध आप लोगों की ओर से होय तो अच्छा है। फेर जैसी आप लोगों की इच्छा होय वैसा कीजिये। आगे हम बहुत आनन्द में हैं ईश्वरानुग्रह से। तथा आप लोग अत्यन्त आनन्द से रहना। आगे अन्य सब लोगों से हमारा आशीर्वाद कह देना। संवत् १९३२ श्रावण शुद्ध ८ मंगल[2]

यहां[3] के पण्डित लोग सामने तो कोई भी नहीं आये, किन्तु दूर से बड़-बड़ किया और करते भी हैं, सो जानना।

०

[पूर्ण संख्या ६१] विज्ञापन-पत्र[4]

पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिये आह्वान विषयक।

० —

[पूर्ण संख्या ६२] पत्र

श्रीयुक्तास्सन्तु।

स्वस्ति श्रीमच्छ्रेष्ठोपमायुक्तेभ्यः श्रीयुतगोपालरावहरिदेशमुख-शर्मभ्यो दयानन्दसरस्वतीस्वामिन आशिषो भूयासुस्तमाम्। शमि-हास्ति तत्रत्यं च नित्यमाशास्महे। आगे पूना और सतारा का वर्त्तमान पत्रों से सुन लिया होगा। एक नवीन बात यह है कि पूना

---

1 अर्थात् 'शेयर'।

2 १० अगस्त १८७५ शुक्ला ८ को सोमवार है। अतः मूल में शुद्ध ९ चाहिये।

3 यह पत्र पूना से लिखा गया है।

4 इसकी सूचना पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ३७५ पर है। जी० च० के अनुसार अयोध्या पहुँचने पर १८ या १९ अगस्त १८७६ को यह विज्ञापन दिया था।

में आर्य्यसमाज स्थापन हो गया है। आगे आर्य्यसमाज स्थापनार्थ दो सभा पूना में हुई थी। सो तो समाचार पत्रों से जाना होगा। परन्तु हम सतारे से आये तब यह निश्चित हुआ कि महादेव गोविन्द रानडे प्रधान, केशवराव गोडबोले मन्त्री। जितने प्रार्थना-समाज के सभासद थे वे सब और अन्य बाबा गोकुले तथा काशिनाथ गाडगील एवं सखाराम भाऊ आदि छावनीस्थ[1] ६० वा ७० सब सभासद हुवे हैं। और अन्य भी बहुत होनेवाले हैं। तथा सतारे में भी कल्याणराव मजांची हेडमास्तर आदि तथा कृष्णराव विट्ठल विचुरकर जज आदि उसी वखत मेरे सामने प्रारम्भ करनेवाले थे। परन्तु हमने कहा कि शीघ्रता मत करो। सो कुछ दिनके पीछे करनेवाले हैं। आगे राणी का पूर्व[2] आके जब तक कलकत्ते की ओर न जायगा, तब तक मुम्बई में रहने का विचार है। फेर सुरत, भरूच, बडोदे की ओर आने का विचार है। मुम्बई के समाज की अच्छी प्रकार उन्नति होती जाती है। तथा पांच हजार रुपये पर्य्यन्त वेदभाष्य बनाने के लिये इकट्ठा कर लिये हैं। और आगे होते जाते हैं। सो २०००० वा २५००० करने वाले हैं। सो मालूम होता है कि कर लेंगे। एक पण्डित का खोज हो रहा है संस्कार की पुस्तक बनाने[3] के लिये। सो अब तक मिला नहीं है। सो वहां कोई पण्डित होय सो भेज देओ। ४०,५० वा ३० पर्य्यन्त मासिक का बने तो भेज देना। आगे आप लोगों को ईश्वर प्रसन्न रक्खे। हम भी तदनुग्रह से प्रसन्न हैं आगे आप भोलानाथ साराभाई, बेचरदास अम्बाईदास तथा महीपतराम आदि को हमारा आशीर्वाद कहना।

संवत् १९३२ मिति आश्विन वद्य २ शनि।[4]

— ० —

१. अर्थात् पूना छावनीस्थ। २. अर्थात् एडवर्ड सप्तम।

३. अर्थात् संस्कारविधि बनाने में सहायक लिपिक। द्र० — पूर्वं पृष्ठ ६९, पं० २०।

४. उत्तर भारतीय पञ्चाङ्ग के अनुसार आश्विन वदि २ (१५ सितम्बर १८७५) को शुक्रवार था शनिवार नहीं था, तथा उस समय श्री स्वामी जी महाराज सतारा नगर में थे। पत्र में सतारा से लौट आने का वर्णन है अतः यह तिथि किसी प्रकार ठीक नहीं हो सकती। यदि आश्विन वदी २ को गुजराती पञ्चाङ्ग के अनुसार मानें तो उस दिन शनिवार पड़ता है,

[पूर्ण संख्या ६२]　　　पत्र

॥ श्रीरस्तु ॥[1]

स्वस्ति श्रीमच्छ्रेष्ठोपमायुक्तेभ्य. श्रीयुत छबिलदास देवीदास

तदनुसार यह पत्र १६ अक्टूबर १८७५ (उत्तर भारतीय पञ्चाङ्गानुसार कार्तिक बदी २) को ही लिखा गया होगा। यहां संवत् का निर्देश उत्तर भारतीय पञ्चाङ्गानुसार है (गुजराती पंचाङ्गानुसार सं० १९३१ था, वहां चैत्र शुक्ला १ के स्थान में कार्तिक शु० १ से संवत् बदलता है) और महीने का निर्देश गुजराती पञ्चाङ्गानुसार अर्थात् यहां दोनों का साङ्कर्य हो गया है।

श्री प० देवेन्द्रनाथ जी द्वारा संकलित उर्दू जी० च० पृष्ठ ३५८ के अनुसार स्वामी जी महाराज २३ अक्टूबर १८७५--कार्तिक बदि ९ (गु० पञ्चाङ्गानुसार आश्विन बदि ९) को सतारा से पूना लौटे, परन्तु इस पत्र से स्पष्ट है कि श्री स्वामी जी महाराज १६ अक्टूबर से पूर्व ही सतारा से लौट आए थे। अतः २३ अक्टूबर को सतारा से पूना लौटना निश्चय ही अशुद्ध है।

सतारा से पूना लौटने और वहां से बम्बई जाने की वास्तविक तिथियां ज्ञात न होने से यह पत्र पूना से लिखा गया था वा बम्बई से, यह भी अनिश्चित है। पत्र में पूना और बम्बई के वृत्त का ऐसी अस्पष्ट भाषा में वर्णन है कि उस से भी किसी निर्णय पर नहीं पहुंचा जा सकता।" ·····

"अब तक बम्बई में रहने का विचार है" यह निर्देश पूना में पत्र लिखने पर भी किया जा सकता है। अतः यदि यह पत्र पूना से लिखा गया हो तो जीवनचरित्र की सतारा से पूना लौटने की २३ अक्टूबर तिथि कदाचित् पूना से बम्बई लौटने की होगी, भ्रम से अस्थान में जुड़ गई होगी। और यदि यह पत्र बम्बई से लिखा गया हो तो स्वामी जी १६ अक्टूबर से पूर्व ही बम्बई पहुंच गये होंगे।

१. यह पत्र पूना से प्रकाशित होने वाले "द मराठा" अंग्रेजी दैनिक के २३ मई १९४१ के अंक में पृष्ठ तेरह पर छपा था। "द मराठा" पत्र में छपे पत्र की श्री प्राध्यापक कृष्णदेव मुकुन्ददेव वडवलकर (नांदेड़) ने फोटोस्टेट कापी प्राप्त कर हमें भेजा था। "वेदवाणी" दिसम्बर १९६० के अंक में प्राध्यापक कृष्णदेव जी ने इस पत्र के सम्बन्ध में विशेष जानकारी दी है।

द्वारिकादास श्यामजी रामदासवर्मादिभ्यो हि तथा गिरिधरलाला-दिभ्य एवं श्रीयुत नवीनचन्द्र झालाख्यादिभ्यश्च दयानन्दसरस्वती-स्वामिन आशिषो भूयासुस्तथान्येभ्यश्च सर्वेभ्य ।।

शमिह वर्त्तते तत्रत्यं नित्यं चाशास्महे भवत्प्रेषित पत्र मस्मन्निधावाश्विनसितपक्षतृतीयायां शनावागतं तदानीमेव प्रत्युत्तर लिखितमिति बोध्यम् । अत्र मुम्बापुरी प्रति मदागमन भवद्भिर्वाञ्छित तन्मया स्वीकृतम् परन्तु मदीयेच्छा तु गुर्जरदेश प्रति गमनस्यासीत् तदनादृत्य भवत्सत्कारार्थमेव तत्रागमन-मिष्यत इति निश्चितम् ।। मन्निवासार्थं तदेव स्थान निश्चितं स्याद्धि भद्रमेव तत्र स्याच्चेत्तदा तद्वदन्यन्निश्चेतव्यम् । तन्नि-श्चित्य पुण्याख्यनगरे महादेव गोविंद रानडे जजाख्य प्रति मद्य प्रत्युत्तर प्रेष्यमिति । अहमागामिबृहस्पतावष्टम्यां पुण्याख्यनगर प्राप्य तत्रागमिष्यामीति वेद्यमनुमितम् । पूनाख्यनगरेऽष्टदिनपर्यंत स्थास्याम्यधिकाद्धिकं पुनस्तत्रागमिष्यामि । परन्तु मन्निवासार्थं स्थानादिकं निश्चित्य भवन्त प्रत्युत्तरपत्र शीघ्र प्रेषयिष्यन्तीति वेद् ।

गुणनेत्राङ्कचन्द्रेऽब्दे आश्विनस्य सिते दले ।
शनीवारे तृतीयायां पत्रमेतदलेखि मम् ।।[2]

॥ भाषार्थ ॥

श्रीरस्तु

स्वस्ति श्रीमान् श्रेष्ठ उपमायुक्त श्रीयुत छबीलदास देवीदास द्वारिकादास श्यामजी रामदास वर्मा आदि को तथा गिरिधरलाल आदि को एवं श्रीयुत नवीनचन्द्र और झाला आदि को तथा अन्य सभी लोगों को दयानन्द सरस्वती स्वामी के बहुत-बहुत आशीष हों ।

१ बृहस्पतिवार को ८मी लुप्त है । पत्रानुसार बृहस्पतिवार ७ अक्टूबर १८७५ को पूना जाना है ।

२ अर्थात् विक्रम संवत् १९२३, आश्विन शुक्ल तृतीया दिन शनिवार । यह श्लोकनिर्दिष्ट काल अशुद्ध है, यहां संवत् १९३२ होना चाहिए । संभव है लेखन में शब्द आगे-पीछे हो गए हों, तदनुसार सन् १८७५ अक्टूबर २ शनिवार । पूना और सतारा आदि की यात्रा सन् १८७५ अर्थात् विक्रम संवत् १९३२ में हुई थी । तदनुसार श्लोक में महीना पक्ष तिथि वार सही है, केवल संवत्-निर्देश में अशुद्धि हुई है ।

यहां कल्याण है, वहां के लिए भी हम नित्य कल्याण की आशा करते हैं। यह विदित हो कि आप द्वारा प्रेषित पत्र मुझे आश्विन शुक्ल पक्ष की तृतीया-शनिवार को प्राप्त हुआ, और उसी समय मैंने [पत्र का] प्रत्युत्तर भी लिख दिया है। इससे आगे आप लोगों ने मुझे मुंबई आगमन के लिए जो प्रार्थना की है उसे मैंने स्वीकार कर लिया है, परन्तु सम्प्रति मेरी इच्छा तो गुजरात देश की ओर जाने की थी, पर अब मैं यह निश्चित कर चुका हूं कि मेरी गुजरात जाने की मनोकामना को अनादृत कर अब मैं आपके सम्मान के लिये ही वहां [मुंबई] आऊंगा। मेरे निवास के लिए वही [पहला वालकेश्वर] स्थान निश्चित हो जाय तो अच्छा ही है। यदि वह न हो सके तो उसी प्रकार का अन्य स्थान निश्चित किया जाय। निवास स्थान का निश्चय होने पर पुणे नगरी में न्यायाधीश महादेव गोविंद रानडे के नाम त्वरित प्रत्युत्तर भेजिये। मेरा यह सुनिश्चित अनुमान है कि मैं आगामी गुरुवार-अष्टमी को पुणे नगरी की ओर जाकर फिर वहां आऊंगा। पुणे नगरी में अधिकाधिक आठ दिन तक रहूंगा और फिर वहां [मुंबई] आऊंगा। परन्तु यह तभी होगा, जब आप मेरे स्थानादि का निश्चय कर शीघ्र ही प्रत्युत्तर भेजेंगे।

८ अक्टूबर १८७५ [विक्रमी सं० १९३२] को आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया शनिवार के दिन मैंने यह पत्र लिखा है। कल्याण हो।

०

[पूर्ण संख्या ६४]　　पत्र-सारांश

[मोक्षमूलर [illegible]]

मेरी इच्छा आने की अवश्य थी, परन्तु यहां के लोग अभी मुझे नास्तिक कहते हैं। जब तक मैं इस देश को अच्छी प्रकार न बतलाऊं कि मैं कैसा नास्तिक हूं तब तक नहीं आ सकता।[1]

०

१ यह सारांश पं० लेखराम कृत जीवनचरित पृष्ठ २८८ (हिन्दी सं०) में छपा है। वहीं आगे लिखा है — जब मैक्समूलर साहब की चिट्ठी आई थी तब यहां के भाटियों ने जहाज पर ले जाने का वचन भी दे दिया था

[पूर्ण संख्या ६५,६६,६७] पत्र-सूचना

[१] ...

[१] केशवलाल[1] निर्भयराम, मुम्बई।[2]

[१] हरिश्चन्द्र चिन्तामणि मुम्बई।[2]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६८] पत्र

[3]स्वस्ति श्रीमच्छ्रेष्ठोपमायुक्तेभ्यः श्रीयुतलालजी[4] लक्ष्मण-शास्त्रि[5]-पूर्णानन्द[6]-नाथुरामादिभ्यो दयानन्दसरस्वतीस्वामिन आशिषो भूयासुस्त[माम् श]मिहास्ति तत्र भवदीयं च नित्य-[माशा]स्महे। [चि]ट्ठी मैंने भेजी है एक ... [दू]सरी केशव-लाल नि[र्भय-राम] ...[ती]सरी हरिश्चन्द्र चिन्ता[मणि] और

यही, पृष्ठ २८८। प० लेखराम ने लिखा है – [लखनऊ में] 'एक बङ्गाली बाबू को अंग्रेजी पढ़ाने को नौकर रखा था। और पढ़ना आरम्भ किया।' पृष्ठ २९३ (हिन्दी सं०)। इण्डियन मिरर (कलकत्ता) बिहार बन्धु (पटना) हिन्दू बान्धव (लाहौर) के समाचारपत्रों में भी इसी आशय की सूचनायें छपी थीं। द्र० —वही, पृष्ठ २९३। मैक्समूलर के पत्र के आशय के लिये देखो ऋ० द० का पत्र व्यवहार, भाग ३।

१ केशवलाल निर्भयराम के द्रव्य की सहायता से संस्कारविधि का प्रथम संस्करण (सं० १९३३) छपा था। २ देखो पूर्णसंख्या ६८ का पत्र।

३ राजस्थान प्रतिनिधि सभा के महोपदेशक श्री प० रामसहाय जी ने यह मूल पत्र हमें भेजा था। प० कालूराम जी के शिष्य स्वामी स्वरूपानन्द जी से उन्हें यह हस्तगत हुआ। अब यह हमारे संग्रह में संख्या १ पर सुरक्षित है। पीले रंग के कागज पर दोनों ओर श्री स्वामी जी के हाथ का लिखा हुआ है। फटे हुए स्थानों पर हमने बिन्दु दे दिए हैं।

४ श्री लालजी शर्मा दाधीचकुलोत्पन्न बैजनाथ शर्मा के पुत्र थे। इनके उद्योग से ऋ० द० कृत 'सन्ध्योपासनादि पंचमहायज्ञविधि (सं० १९३२) आर्याभिविनय (सं० १९३३) ग्रन्थ छपे थे।

५ लक्ष्मण शास्त्री भट्ट नारायण के पुत्र थे। इन्होंने ऋ० द० कृत सन्ध्योपासनादिपंचमहायज्ञविधि (सं० १९३२), आर्याभिविनय (सं० १९३३) ग्रन्थों का मुद्रणपत्र (प्रूफ) संशोधन किया था।

६. ऋषि दयानन्द की सम्मति से इनका लिखा एक विज्ञापन पूर्ण संख्या ४७ पृष्ठ ६१ पर देखें।

यह चौथी चिट्ठी भेजी जाती है। सब ग्रन्थों का हिसाब एक के पास रहना अच्छा है। सेठ हनुमंतराम पित्ती जी के पास से रु० ७५) वा १५०) ले के लक्ष्मणशास्त्री जी को आर्य्याभिविनय की छपाई में दिये होंगे तथा लिखे प्रमाणे केशवलाल निर्भयराम जी के पास पुस्तक १००० रख दिये होंगे। जो अब तक यह काम न किया होय तो पत्र देखते ही शीघ्र करना पीछे दूसरा काम करना। आगे आर्य्याभिविनय के पुस्तक ५०० प्रयाग में पण्डित सुन्दरलाल जी पास पोस्[त] मास्तर जनरल की कचेरी के ठिकाने से केशवलाल जी से कहके शीघ्र भेजवा देना। और जो लक्ष्मणशास्त्री जी ने अब तक पुस्तक वहां न रक्खे होय तो आप श्रम करके केश[व] ला० पास पु० १००० ·· म रु० १५०) हनुमत[राम पित्ती]···तथा केशवला० को · [प्र]याग में उक्त ठिकाने पुस्तक ·· [आ]र्याभि० भेजवा देना। इतना काम [शी]घ्र करना क्योंकि] · इस देश में उसके ग्राहक बहु[त हैं]—इससे विलम्ब करने में हानि है। शीघ्र काम करने में लाभ है। सब आर्य्य-समाज के सभासदों को मेरा आशीर्वाद अति प्रेम से कहना। यहां परमानन्द है।

सं० [१९३३] आषाढ़ बदि ९ शुक्रवार।[1]

— ०: —

[पूर्ण संख्या ६६] प्रश्नों के उत्तर

लखनऊ[2] में वहां के रईस बजलाल की विस्तृत प्रश्नमाला स्वामी जी द्वारा उनके प्रश्नों का युक्तियुक्त समाधान[3]

प्रश्न १—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र किस प्रकार हैं? कबसे हैं? और किसने बनाये हैं?

उत्तर कर्मों की दृष्टि से चारों वर्ण ठीक हैं और लोक व्यव-

---

१. १६ जून १८७६। उस समय स्वामीजी काशी में थे।

२. लखनऊ में इस बार स्वामी जी सन् १८७६ के २७ सितम्बर से १ नवम्बर तक रहे थे। उसी के मध्य कभी आगे उद्धृत प्रश्नोत्तर किसी दिन हुए थे। सम्भवतः ये प्रश्न और उत्तर लिखित रूप से हुए थे।

३. पं० लेखरामजी कृत जीवन चरित्र, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ २९३-२९६ तक।

हार से (आजकल जैसे लोक में प्रचलित है वैसे व्यवस्था) ठीक नहीं है अर्थात् जो जैसा कर्म करे वैसा उसका वर्ण है, उदाहरणार्थ जो ब्रह्मविद्या जाने वह ब्राह्मण जो युद्ध करे वह क्षत्रिय जो लेन-देन, हिसाब-किताब करे, वह वैश्य और जो सेवा करे वह शूद्र है। यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय या शूद्र का काम करे तो ब्राह्मण नहीं। सारांश यह कि **वर्ण कर्मों से होता है, जन्म से नहीं।** जन्म से यह चारों वर्ण (वर्तमान अवस्था में) लगभग बारह सौ वर्ष से बने हैं (माने जाने लगे हैं स०)। जिसने बनाये उसका नाम इस समय स्मरण नहीं परन्तु महाभारत आदि से पीछे बने हैं।

प्रश्न २—क्या ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से और क्षत्रिय भुजा से उत्पन्न हुए हैं?

उत्तर—इस (वेद वाक्य) का अभिप्राय यह है कि जैसे शरीर में मुख श्रेष्ठ है ऐसे सब वर्णों में ब्रह्म का जानने वाला (ब्राह्मण) श्रेष्ठ है। इसी कारण कह दिया कि ब्राह्मण मुख से हुआ है; इसी प्रकार और वर्णों को समझ लो।

प्रश्न ३—ब्राह्मण यज्ञोपवीत किस लिये रखते हैं?

उत्तर—यज्ञोपवीत केवल विद्या का चिह्न है।

प्रश्न ४—कोई कर्म करना चाहिये या नहीं?

उत्तर—उत्तम कर्म करना चाहिये।

प्रश्न ५—उत्तम कर्म कौन सा है?

उत्तर—सत्य बोलना, परोपकार करना आदि उत्तम कर्म है।

प्रश्न ६—सत्य किसे कहते हैं?

उत्तर—जिह्वा से सत्य बोलना, जो मन में होवे वह वाणी से कहना या ऐसा विचार करके कहना जो कभी झूठ न हो।

प्रश्न ७—मूर्तिपूजन कैसा है?

उत्तर—बुरा है। कदापि मूर्तिपूजन न करना चाहिये। इस मूर्तिपूजा के कारण ही तो संसार में अन्धकार फैला है।

प्रश्न ८—बिना मूर्ति के किसका ध्यान करें और किस प्रकार करें?

उत्तर—जैसे सुख-दुःख का ध्यान मन में होता है वैसे परमेश्वर का ध्यान मन में होना चाहिये मूर्ति की कुछ आवश्यकता नहीं।

प्रश्न ९—क्या कर्म करना चाहिये?

उत्तर—दो समय संध्या करे और मन्त्र जाप और जो श्रेष्ठ कर्म परोपकार के हों वह करे।

प्रश्न १०—संध्या दो समय करनी चाहिये या तीन समय?

उत्तर—केवल दो समय, प्रातः तथा सायं तीन समय नहीं।

प्रश्न ११—बार बार या प्रत्येक बार मन्त्र जपना या परमेश्वर का नाम लेना चाहिये या नहीं? और जैसे ब्राह्मण लाख, दो लाख मन्त्र या परमेश्वर के नाम का जाप और पुरश्चरण करते हैं यह ठीक है या ठीक नहीं है?

उत्तर—पहचानना चाहिए[1]। जप और पुरश्चरण करना कुछ आवश्यक नहीं।

प्रश्न १२—परमेश्वर का कोई और रूप है या नहीं?

उत्तर—उसका कोई रूप और रङ्ग नहीं है, वह अरूप है। और जो कुछ इस संसार में दिखलायी देता है। (वह सब) उसी का रूप है, क्योंकि केवल एक अर्थात् वही एक सबका बनाने और उत्पन्न करने वाला है।

प्रश्न १३—ईश्वर संसार में दिखलायी क्यों नहीं देता है?

उत्तर—यदि दिखलायी देता तो कदाचित् सब कोई अपना मनोरथ पूर्ण करने को कहते और उसे तङ्ग करते। दूसरे, जिन तत्वों से मनुष्य का यह शरीर बना है उनसे उसका देखना असम्भव है। तीसरे, जिसने जिसको उत्पन्न किया उसको वह क्यों कर देख सकता है?

प्रश्न १४—जब दिखायी नहीं देता तो किस प्रकार उसको पहचानें?

उत्तर—दिखलायी देता तो है[2]? अर्थात् मनुष्य पशु वृक्षादि ये सब वस्तुयें जो संसार में दिखलायी देती हैं उन सबका कोई एक अर्थात् वही एक बनाने वाला प्रतीत होता है—यही उसका देखना है और जैसे सुख, दुःख पहचाना जाता है वैसे ही उसको पहचानें।

---

1 आगे चलकर १४वें प्रश्न के उत्तर में यही बात स्पष्ट करके बतायी है कि अदृश्य परमेश्वर को, सुख-दुःख की भांति पहचाना या अनुभव किया जा सकता है।

2 परमात्मा दिखलायी देता है—उसका ज्ञान होता है—कैसे? यह यहां बता रहे हैं।

प्रश्न १५—ब्रह्म हम में और सब में है या नहीं ?

उत्तर—सबमें है और हम में भी है।

प्रश्न १६—किस प्रकार विदित हो ?

उत्तर—जिस प्रकार दुःख-सुख का प्रभाव मन में विदित होता है उसी प्रकार वह भी विदित हो सकता है।

प्रश्न १७—सब स्थानों पर एक समान है या न्यूनाधिक ?

उत्तर—सर्वत्र एक समान है, परन्तु यह बात भी है कि जिसके आत्मा में उस चेतन का जितना प्रकाश है अर्थात् जितना जिसको ज्ञान है, उतना उसको अनुभव होता है।

प्रश्न १८—देव किसको कहते हैं ?

उत्तर—जो मनुष्य विद्यावान् और बुद्धिमान् पण्डित हो उसको देव कहते हैं।

प्रश्न १९—रामलीला देखना दोष है ?

उत्तर—हां दोष है। हजार हत्या के समान दोष है। और इसी प्रकार मूर्तिपूजा करना हजार हत्या के समान है; क्योंकि बिना आकृति के प्रतिबिम्ब नहीं उतर सकता और जबकि उसकी आकृति नहीं तो मूर्ति कैसी ? यदि किसी का फोटोग्राफ से या और किसी प्रकार यथार्थ प्रतिबिम्ब उतार कर संस्मरण और देखने के लिये सम्मुख रखा जाये तो वह ठीक है परन्तु उसको अर्थात् ब्रह्म की मूर्ति और आकृति बनाना और प्रतिलिपि की प्रतिलिपि बनाकर कुछ का कुछ कर देना नितान्त अशुद्ध और अनुचित है।

प्रश्न २०—संस्कृत भाषा कब से है और उसको अच्छा क्यों कहते हैं ?

उत्तर—संस्कृत भाषा सदा से है और अत्यन्त शुद्ध है। इसके समान कोई भाषा अच्छी नहीं है। उदाहरणार्थ, यदि फारसी और अंग्रेजी में केवल "व" प्रकट किया चाहें (ध्वनि का संकेत देना चाहें) तो शुद्ध (दूसरी ध्वनियों से रहित) प्रकट नहीं किया जा सकता अर्थात् फारसी में ('व' के स्थान पर) "वे" और अंग्रेजी में 'वी' है, परन्तु जिसमें और कोई (और कोई ध्वनि) सम्मिलित न हो यह प्रकट करने का गुण केवल संस्कृत भाषा में ही है।

प्रश्न २१—वेद में परमेश्वर की स्तुति है तो क्या उसने अपनी प्रशंसा लिखी ?

उत्तर—जैसे माता पिता अपने पुत्र को सिखाते हैं कि माता पिता और गुरु की सेवा करो उनका कहा मानो। उसी प्रकार भगवान् ने सिखाने के लिये वेद में लिखा है।

प्रश्न २२—भगवान् का जब स्वरूप और शरीर नहीं तो मुख कहां से आया कि जिससे वेद कहा ?

उत्तर—भगवान् ने चार ऋषियों—अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा—के हृदय में प्रकाश करके वेद बनाया।

प्रश्न २३—अब विदित हुआ कि चार वेद उन चार ऋषियों के बनाये हुए हैं।

उत्तर—नहीं, नहीं, भगवान् ने वेद बनाये और कहे हैं क्योंकि वे चारों कुछ पढ़े न थे और न कुछ जानते थे। उनके द्वारा आप ही कहे हैं।

प्रश्न २४—भगवान् ने उनके हृदय में किस प्रकार आकर वेद कहा ?

उत्तर—जैसे कोई मनुष्य पित्त वा सन्ताप में आप ही आप बोलने लगता है, उसी प्रकार उस ने उन चारों के घट में और जिह्वा में प्रकाश करके कहा और उन्होंने उसकी शक्ति से विवश होकर कहा। इसलिये प्रकट है कि भगवान् ने वेद कहे हैं।

प्रश्न २५—जीव एक है या अनेक ?

उत्तर—जीव का प्रकार एक है और जातियां अर्थात् योनियां अनेक हैं। उदाहरणार्थ मनुष्य की एक जाति है और पशु की दूसरी जाति है। इसी प्रकार और जातियां भी समझ लो।

प्रश्न २६—यह जीव प्रत्येक देह में जाता है और छोटा बड़ा हो जाता है ?

उत्तर—जैसे जल में जो रङ्ग मिला दोगे वही रङ्ग हो जावेगा, इसी प्रकार जिस देह में यह जीव जावेगा वैसा ही उसका छोटा-बड़ा देह होगा परन्तु जीव सब का एक-सा (एक ही प्रकार का) है; जैसे चींटी का वैसा ही हाथी का।

—·०·—

[पूर्ण संख्या ७०]　　　　**पत्र-सारांश**

[भीमसेन][1]

---

१ यह पत्र प० भीमसेन के पत्र (द्र० भाग ३ पूर्णसंख्या २१ के) उत्तर

तुम शीघ्र ही हमारे पास चले आओ। दर्शन ग्रन्थों में से एक बार हम किसी ग्रन्थ का पाठ तुम को पढ़ा दिया करेंगे और शेष ४-५ घण्टे लिखाया करेंगे। इस काम का तुम को आठ रुपया मासिक वेतन देंगे और भोजन वस्त्र का व्यय भी सब तुमको मिलेगा।

—दयानन्द सरस्वती

[पूर्ण संख्या ७१] पत्र-सूचना[1]

[केशवलाल निर्भयराम मुम्बई]

संस्कारविधि के मुद्रण सम्बन्ध में १ नवम्बर १८७६ [कार्तिक सु० १५ बुध सं० १९३३]

[पूर्ण संख्या ७२] पत्र

Bareilly, the 14 of Nov. 1876

my dear Soonderlal[2]

Today I have sent an application to the Post Master Genl. N W P for ragistering my monthly Tract Veda Bhashya, which is going to be issued from the month of December 1876 please do the needful

I shall send 2 tracts no sooner they are printed, to the Post Master General N W. P

All right with me and hope the same with you. Yours ffly

दयानन्द सरस्वती

में लिखा था। मूलपत्र संस्कृत में रहा होगा। यह पत्र का आशय पूर्णसिंह शर्मा लिखित पं० भीमसेन शर्मा के जीवनचरित्र जो सं० १९७५ (सन् १९१८) में ब्रह्म प्रेस इटावा में छपा था। उसके पृष्ठ ६३ पर उद्धृत है।

१. लखनऊ अथवा शाहजहांपुर से मुम्बई को भेजा गया। इस पत्र का संकेत केशवलाल निर्भयराम के श्री स्वामी जी के नाम लिखे गए ता० ६ नवम्बर १८७६ के पत्र में है। [केशवलाल निर्भयराम का यह पत्र पं० भगवद्दत्त जी के संग्रह में था। जो देश-विभाजन के समय लाहौर में नष्ट हो गया।]

२. यह पण्डित सुन्दरलाल को लिखे पत्र की प्रतिलिपि है जो परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान है।

P. S.

Please try to get as many sudscribers as you can for the Veda Bhashya and send a list to my agent at Banares. He will send you the pamphlets monthly. You can distribute among your friends For the present you can collect Rs. 3/10 6 from each subscriber for a whole year 500 Slokas will be issued monthly rate- 4/- four annas including postage But in the first issue there will be 1000 Slokas in two pamphlets. Therefore I have kept annas /4'6 in access.

For further information write to my agent Banamali Singha at Banares.

दयानन्द सरस्वती

N. B.

I will start for Mooradabad in a week and after staying there a week I will go to chelasvar and after that to Delhi.

दयानन्द सरस्वती

[भाषानुवाद]

बरेली, १८ नवम्बर १८७६

प्रिय सुन्दरलाल

आज मैंने एक प्रार्थनापत्र पोस्टमास्टर जनरल एन डब्लू पी को मेरे मासिक ट्रैक्ट 'वेदभाष्य' के रजिस्ट्रेशन हेतु भेजा है, यह ट्रैक्ट माह दिसम्बर १८७६ से प्रति माह भेजा जायगा आप इस सम्बन्ध में आवश्यक कार्यवाई करें।

मैं दो ट्रैक्ट, उनके छपते ही, पोस्टमास्टर जनरल एन डब्लू पी को भेजूंगा।

मैं यहां ठीक हूं और आशा करता हूं कि आप भी ठीक होंगे

आपका

दयानन्द सरस्वती

पुनश्च,

कृपया वेदभाष्य के लिये जितने अधिक से अधिक हो सकें ग्राहक बनाएं और उनकी सूची बनारस में मेरे प्रतिनिधि को भेज दें। वह आपको प्रतिमाह पैम्फलेट्स भेज देगा आप उन्हें अपने मित्रों में बंटवा दें। वर्तमान में आप ३ रु० १० आना ६ पाई एक पूरे वर्ष के लिये इकट्ठा कर सकते हैं। प्रति माह ५०० श्लोक दिये

जाएंगे। चार आने डाक-व्यय के निमित्त हैं. परन्तु प्रथम अङ्क में एक हजार श्लोक दो पंम्फलेट्स में होंगे, इसलिये मैंने ८ आना ६ पाई अधिक रखा है।

अधिक जानकारी के लिये बनारस में प्रतिनिधि, बनमाली सिंह को लिखें।

दयानन्द सरस्वती

पुनश्च मैं मुरादाबाद के लिये एक सप्ताह में रवाना हो जाऊंगा और वहां एक सप्ताह ठहरने के बाद मैं छलेसर जाऊंगा और उसके बाद दिल्ली।

दयानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७३] **पत्र**

Bareilly[1]

From 18 Nov. 1876

Dayanand Saraswati
Bareilly

To.

Babu Ramadhara Bajpai
Hd Clerk Govt Tele: Office
Lucknow

Dear Sir.

The first copy of Veda Bhashya will shortly issue So you must try with your whole heart and soul to secure as many subscribers as you can in your town.

My Babu will start for Benares on Monday to have the tract published at once and distribute among the subscribers. On his way down he will stop at your town for a day I have instructed to take his quarters at the PATSHALA, if Gangesh Swami is there please inform him about it

As for my doings here and at Shajahanpur, I think, you have already heard from Gangesh Swami, the rest you can hear from my Babu. I don't think there is any necessity of detailing it here

१. मूल पत्र से प्रतिलिपि किया गया। मूलपत्र आर्यसमाज लखनऊ के संग्रह में सुरक्षित है। यह मसह हम श्री प० रामबिहारी जी तिवारी प्रधान आर्यसमाज की कृपा से सन् १९१८ में प्रतिलिपि करने के लिए प्राप्त हुआ था।

Hoping you are in the enjoyment of perfect health. My blessings to all of you

Yours ffly
दयानन्द सरस्वती

[भाषानुवाद]

बरेली १८ नवं० १८७६[1]

दयानन्द सरस्वती बरेली से

बाबू रामधार वाजपेयी
हेड क्लर्क सरकारी तार घर लखनऊ।

प्रिय महाशय !

वेदभाष्य का प्रथमाङ्क शीघ्र निकलेगा, सो आप को अपने नगर में जितने ग्राहक आप बना सकते हैं, बनाने के लिये पूर्ण तन, मन से यत्न करना चाहिये।

ईश्वर[2] को तत्काल छपवाने और ग्राहकों में बंटवाने के लिये मेरा बाबू सोमवार को बनारस की ओर चलेगा।[3] और गोंव को जाते हुये वह आप के नगर में एक दिन के लिये ठहरेगा। मैंने उसे कह दिया है कि यदि गणेश स्वामी[4] वहीं हों तो वह पाठशाला में उतरे। कृपया उन्हें यह कह दें।

शाहजहांपुर और वहां के मेरे कार्य के सम्बन्ध में, मेरा विचार है, आप पहले ही गणेश स्वामी से सुन चुके होंगे। शेष आप मेरे बाबू से सुन सकते हैं। मेरा विचार है कि इस के यहां विस्तार करने की कोई आवश्यकता नहीं।

आशा है, आप पूर्ण स्वास्थ्य का आनन्द ले रहे होंगे।

मेरा आप सब को आशीर्वाद।

आपका विश्वसनीय
दयानन्द सरस्वती

:o: –

१ मार्गशीर्ष शुक्ला ३ शनिवार सं० १९३३।

२ 'ईश्वर' से यहां पूर्व निर्दिष्ट 'वेदभाष्य के प्रथम अङ्क' से तात्पर्य है, अथवा आगे पृष्ठ सं० '७८ पर निर्दिष्ट वेदभाष्यविषयक 'विज्ञापन-पत्र' से, यह सन्दिग्ध है।

३ अर्थात् २० नवम्बर १८७६ मार्गशीर्ष शुक्ला ४ सं० १९३३।

४ ये महाशय एक वृद्ध सूक्ष्म काय सन्यासी थे। लखनऊ में इन्होंने एक संस्कृत पाठशाला खुलवा रखी थी। यह अच्छे विद्वान् थे। श्री स्वामी

[पूर्ण संख्या ७४]   विज्ञापनपत्र

ओम् नमः सर्वशक्तिमते जगदीश्वराय

॥ विज्ञापनपत्रमिदम् ॥

॥ श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृतम् ॥

॥ वेदभाष्यप्रचारार्थं विज्ञेयम् ॥

इदं वेदभाष्यं संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां भूषितं क्रियते ।
कालरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे भाद्रमासे सिते दले ।
प्रतिपद्यादित्यवारे भाष्यारम्भः कृतो मया ॥१॥[2]

तदिदमिदानीं[3] पर्य्यन्तं दशसहस्रश्लोकप्रमितं तु सिद्धं जातम् । तच्चेदं प्रत्यहमपेक्षे न्यूनान्न्यून पञ्चाशच्छ्लोकप्रमितं नवीनं रच्यत एवमधिकादधिकं शतश्लोकप्रमाणं च । तच्च वाराणस्यां लाजरसकंपन्यालयस्य यंत्रालये प्रतिमासं मासिकपुस्तकवद् यन्त्रित[4] कार्य्यते मासिकस्य मूल्यमेतावत् ।), एवं द्वादशमासानां मिलित्वैतावद् भवति ३।।।), इदं राजमार्गेणैतद्दानेन[5] सहैतावन्मात्रं

जी से छपना आरम्भ हो गया। श्री स्वामी जी के देहावसान के पीछे भी लगभग ३१ वर्ष तक जीवित रहे। इन का उल्लेख महर्षि ने ७ सितम्बर १८७७ को रामाधार वाजपेयी को लिखे पत्र में मिलता है।

१. इस सम्बन्ध में द्वितीय भाग के अन्त में द्वितीय परिशिष्ट की टिप्पणी देखें।

२. अर्थात् सं० १९३३ भाद्रशुक्ला प्रतिपदा, रविवार, तदनुसार २० अगस्त १८७६ को वेदभाष्य बनना आरम्भ हुआ। यह काल ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के प्रारम्भ का है। भूमिका के लेखन का प्रारम्भ अयोध्या के सरयू बाग में चौधरी गुरुचरणलाल के मकान में हुआ था। देखो पं० लेखरामकृत जीवनचरित हिन्दी सं० पृष्ठ २९२ तथा देवेन्द्रनाथ संकलित जी० च० पृष्ठ ३५४

३. अर्थात् मार्गशीर्ष शुक्ला १५ सं० १९३३ (१ दिसम्बर १८७६) तक भाष्यानुवाद के आरम्भ से [illegible] गया निर्देश। यह विज्ञापन सम्भवतः बरेली में लिखा गया।

४. यन्त्रितम् = मुद्रितम् इत्यर्थः।

५. अर्थात् पुस्तकप्रेषणव्ययेन (डाकपोस्टद्वारा प्रेषणव्ययेन)

४॥) वार्षिकं जायते । अस्य वेदभाष्यस्य ग्रहणेच्छा यस्य भवेत् स लाजरसकपन्याख्यस्य वा भाष्यकर्त्तुः श्रीमद्दयानन्दसरस्वती-स्वामिनः समीपं वार्षिकं धनं ४॥) प्रेषयेत् । तस्य समीपमेकवर्ष-पर्य्यन्तं प्रतिमासं मासिकपुस्तकं पोष्टाख्यराजमार्गप्रबन्धेनावश्य-मागमिष्यति ॥ पुनर्ग्राहकैर्वार्षिकं देयं चैवमेव पुनः पुनर्ज्ञेयम् । योऽस्य वार्षिकं मूल्यं प्रेषयिष्यति तन्नामलेखपूर्वकं मासिकपुस्तकपृष्ठोपरि [1]यन्त्रयित्वैकवारं प्रसिद्धं भविष्यतीत्थमेव तस्य विश्वासार्थं भवि-ष्यति मद्धनं तेन भाष्यकर्त्रा वा [2]यन्त्रणकर्त्रा प्राप्तं चेति ॥ अत्रान्यथा यः कुर्यात्तस्य समाधाता स एव भविष्यति ॥ सर्वशक्ति-मदीश्वरानुग्रहेणात्र व्यत्ययः कदाचिन्नैव भविष्यतीति विज्ञायते-ऽस्माभिः । एकरीत्यनुवृत्त्या श्लोकसहस्रद्वयप्रमितं न्यूनान्न्यूनमुत्त-मपत्राक्षरललितदर्शनं दृश्यं पुस्तकं ग्राहकाः प्राप्स्यन्त्येव ।

इदं वेदभाष्यमपूर्वं भवति । कुतः ? महाविदुषामार्य्याणां पूर्व-जानां यथावद्वेदार्थविदामाप्तानामाप्तकामानां धर्म्मात्मनां सर्व-लोकोपकारबुद्धीनां श्रोत्रियाणां ब्रह्मनिष्ठानां परमयोगिनां ब्रह्मादिव्यासपर्य्यन्तानां मुन्यृषीणामेषां कृतीनां सनातनानां वेदाङ्गानामैतरेयशतपथसामगोपथब्राह्मणपूर्वमीमांसादिशास्त्रोप-वेदोपनिषच्छाखान्तरमूलवेदादिसत्यशास्त्राणां वचनप्रमाणसंग्रह-लेखयोजनेन प्रत्यक्षादिप्रमाणयुक्त्या च सहैव रच्यते ह्यतः । वेदानां यः सत्यार्थः सोऽनेन भाष्येण सर्वदा सज्जनानां मनुष्याणा-मात्मसु सम्यक् प्रकाशो भविष्यति । पुनरनर्थव्याख्यानानि[3] यानि वेदानामुपरि वर्त्तन्ते तन्निवृत्तिरनेन च तत्प्रयुक्तभ्रमजालोऽपि लयं गमिष्यत्यवश्यमनश्च । ततोऽसत्यव्यवहारत्यागात् सत्याचार-ग्रहणप्रवृत्तिश्च मनुष्याणां महान् सुखलाभो निश्चितो भविष्यति वेदेश्वरयोः सत्यार्थसाम्राज्यप्रकाशश्चातः ॥ सत्यधर्मार्थकाम-मोक्षाणां यथावत् सिद्धिश्चेत्यादयोऽस्य भाष्यस्यापूर्वत्वे हेतवो विज्ञेयाः । एतदर्थं सत्यविद्याप्रियैर्विद्वद्भिः सत्यार्थजिज्ञासुभिर्मनु-ष्योपकारसत्यविद्योन्नतिं चिकीर्षुभी राजादिनृवर्य्यैरस्मिन् महति सर्वोपकारके कार्ये मासिकपुस्तकग्रहणेनान्यप्रकारेण च सर्वथा-

---

१ यन्त्रयित्वा मुद्रयित्वा ।　　२ यन्त्रणकर्त्ता मुद्रणकर्त्ता ।

३ सायणाचार्यमैक्समूलरविलसनप्रभृतिभिः कृतानीत्यर्थः

यथाशक्त्या[1] 'सहायः कार्य इति विज्ञाप्यते ॥

॥ विज्ञापनपत्र ॥

॥ भाषार्थ ॥

सो यह दयानन्द सरस्वती स्वामी जी ने प्रसिद्ध किया है। इस का यह प्रयोजन है कि चारों वेदों का भाष्य करने का आरम्भ मैंने किया है। सो सब सज्जन लोगों को विदित हो कि यह भाष्य संस्कृत और आर्य भाषा जो कि काशी प्रयाग आदि मध्य देश की है, इन दोनों भाषाओं में बनाया जाता है। इस में संस्कृत भाषा भी सुगम रीति की लिखी जाती है। और वैसी आर्य भाषा भी सुगम लिखी जाती है। संस्कृत ऐसा सरल है कि जिसको साधारण संस्कृत को पढ़ने वाला भी वेदों का अर्थ समझ ले। तथा भाषा का पढ़ने वाला भी सहज में समझ लेगा। संवत् १९३३ भाद्रमास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा[3] के दिन इस भाष्य का आरम्भ किया है। सो संवत् १९३३ मार्गशिर शुक्ल पौर्णमासी[4] पर्यन्त दश हजार श्लोकों[5] के प्रमाण भाष्य बन गया है और कम से कम ५० श्लोक और अधिक से अधिक १०० श्लोक पर्यन्त प्रतिदिन भाष्य भी रचते जाते हैं। इस भाष्य को काशी जी में लाजरस कम्पनी के छापेखाने में छपवाते हैं। सो छापने का प्रबन्ध इस प्रकार से किया है कि मासिक पुस्तक की नाईं छपता जायगा। उस का मासिक जो एक अंक होता है उस का मूल्य ।-) पांच आना है। सो बारह महीनों का मिलके ३।।।)पौने चार रुपये होते हैं। सो डाक का खर्च महीने महीने में -)एक आने का टिकट पड़ेगा सो मिलके

---

१ यथाशक्त्या में अव्ययीभावश्च (अष्टा० २।४।१८) सूत्र के अनुसार नपुंसकलिङ्ग और अव्ययीभावश्च (अष्टा० १।१।४१) से अव्यय संज्ञा होने से 'यथाशक्ति' प्रयोग होना चाहिये, परन्तु ये दोनों नियम प्रायिक हैं। महाभाष्य १।१।२८ के 'यथाप्राप्तस्यैक भूयेत' वाक्य में 'यथाप्राप्त' पद का प्रयोग इनके प्रायिकत्व में ज्ञापक है। काशिका २।३।१२५ में प्रयुक्त 'यथाप्राप्त' के व्याख्यान में हरदत्त ने 'यथा येन प्रकारेण प्राप्तं प्राप्तिर्यस्येति बहुव्रीहिः, अव्ययीभावे ह्रस्वत्वम् स्यात्' लिखा है, यह सब आधुनिक लक्षणैकचक्षु वैयाकरणों की क्लिष्ट कल्पना मात्र है।

२ साहाय्यं कार्यमिति भावः। विनापि भावप्रत्ययेन भावार्थो गम्यते।

३. २० अगस्त १८७६। ४. प्रथम दिसम्बर १८७६।

५. ग्रन्थ परिमाण बताने के लिये ३२ अक्षर का श्लोक मानकर गिनती करने की प्राचीन परिपाटी है।

एक वर्ष का ४॥) साढ़े चार रुपये होते हैं। सो जिस किसी को इस पुस्तक को लेने की इच्छा हो वह लाजरस कम्पनी के पास एक वर्ष का मूल्य भेज दे। अथवा स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के पास भेज दे। उस के पास महिने-महिने में एक वर्ष पर्यन्त पोस्ट मार्ग से अर्थात् सरकारी डाक के प्रबन्ध से मासिक पुस्तक अवश्य पहुंचेगा। पुनः एक वर्ष के पीछे फिर भी दूसरे वर्ष का इसी प्रकार जमा करना होगा। और [१]गाहकों के पास इसी प्रकार से मास-मास में पुस्तक पहुंचा करेगा। सो जिस महिने में जो गाहक मूल्य भेजेगा उस महिने के अथवा दूसरे महिने के अङ्क में उस का नाम लेख पूर्वक उस धन की पहुंच मासिक पुस्तक के पृष्ठ के ऊपर छपा के उस लेख द्वारा सर्वत्र प्रसिद्ध कर दिया जायगा। सो एक वर्ष में एक का नाम एक वार ही छपेगा। पुनः दूसरे वर्ष में भी इसी प्रकार से होगा। उस लेख को गाहक लोग अपने पास रख लें। और यह निश्चय जान लेवें कि मेरा धन उस के पास पहुंच गया और जो पुस्तक देने वाला वा गाहक इस में अन्यथा करेगा वह इस बात को पूरी करने वाला होगा। सो हम लोग निश्चय जानते हैं कि जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा है उस की कृपा से इस काम में विघ्नशीलता कभी न होगी। सो गाहक लोगों को एक रुपये में २००० दो हजार श्लोक मिलेंगे। सो इस में कागज और अक्षर अच्छे रहेंगे जो बांचने वाले और देखने वाले जिसको देख और बांच के प्रसन्न हों।

सो यह वेदभाष्य अपूर्व होता है। अर्थात् अत्यन्त उत्तम बनता है क्यों कि इसमें अप्रमाण वा कपोल कल्पित नहीं होता। जो बड़े विद्वान् आर्यावर्त्तवासी प्रथम हो गये हैं, जो वेदों के अर्थ को यथावत् जानते थे, जो कि सत्यवादी जितेन्द्रिय और धर्मात्मा थे तथा जिन की बुद्धि में सब लोगों का उपकार करना ही रहता था जो कि वेदों में परम विद्वान् थे और जिन की निष्ठा एक अद्वितीय ब्रह्म में थी जो ब्रह्मा से लेके व्यास जी पर्यन्त मुनि जो कि मननशील थे और ऋषि जो कि वेद मन्त्रों के अर्थों को यथावत् जानने वाले थे उनके किये

[१] अर्थात् ग्राहक। गाहक यह जनसाधारण से प्रयुक्त शब्द है

सनातन जो ग्रन्थ हैं शिक्षा कल्प व्याकरण निघण्टु निरुक्त छन्द और ज्योतिष ए वेदों के छ अङ्ग कहाते हैं तथा ऐतरेय शतपथ साम और गोपथ ए चारों वेदों के चार ब्राह्मण कहाते हैं तथा पूर्वमीमांसा वैशेषिक न्याय योग सांख्य और वेदान्त ए छ शास्त्र कहाते हैं और चार उपवेद आयुर्वेद जो वैद्यक शास्त्र है, धनुर्वेद जो राजविद्या है, गान्धर्ववेद जो गान शास्त्र है और अर्थवेद जो शिल्पशास्त्र है, ये चार उपवेद कहाते हैं। तथा केन कठ प्रश्न मुण्डक माण्डूक्य तैत्तिरीय ऐतरेय[1] [बृहदारण्यक, छान्दोग्य] और मैत्रेयी ए दश[2] उपनिषद् कहाती हैं। ११२७ ग्यारह सै सत्ताईस वेदों की शाखा, जो कि वेदों के ऊपर मुनि और ऋषियों के किये व्याख्यान हैं, इनमे से जितनी शाखा मिलती हैं। और मूल वेद जो ऋक् यजु साम और अथर्ववेद इनकी जो चार मन्त्र संहिता हैं ए ईश्वर कृत सनातन चार वेद कहाते हैं। शिक्षा से लेके शाखान्तर पर्यन्त वेद के जो सत्यार्थ युक्त व्याख्यान हैं, जो कि ब्रह्मा से लेके व्यास जी पर्यन्त ऋषि और मुनियों के किये हैं उन सनातन सत्य ग्रन्थो के वचनो का सब प्रमाण से सहित और मूल वेदों के प्रमाणो से सहित यह वेद भाष्य रचा जाता है। और प्रत्यक्षादि प्रमाणो की योजना भी इस मे लिखी जाती है। इस कारण से यह वेदभाष्य अपूर्व होता है। और इस वेदभाष्य से वेदों का जो सत्य अर्थ सो सब सज्जन लोगों के आत्माओ मे यथावत् प्रकाशित होगा। तथा वेदों के ऊपर लोगों[3] ने मिथ्या जो व्याख्यान किये हैं उन की

---

१ यहां बृहदारण्यक और छान्दोग्य स्पष्ट ही लिखने से रह गई।

२ यहां सर्वाग्रभूत 'ईश' उपनिषद् की गणना नहीं की है। इस छोड़ने का कारण सम्भवतः यजुर्वेद के ४० वें अध्याय के रूप में मूल वेदों में ही अन्तर्भाव मानना है। इस का संकेत ऋषि दयानन्द ने सं० १९३७ वैशाख वदि ७ शनिवार (१ मई १८८०) को राजा शिवप्रसाद जी के नाम लिखे पत्र में किया है—"मैं वेदों में एक ईशावास्य को छोड़कर अन्य उपनिषदों को नहीं मानता"। पूर्व पृष्ठ ९१० ३ में दश उपनिषदों में ईश की गणना की है। वहां 'मैत्रेयी' का नाम नहीं है। पूर्व पृष्ठ ९५० ३ में १० उपनिषदें गिनाई हैं। वहां 'श्वेताश्वतर और कैवल्य' का निर्देश है।

३ सायणाचार्य आदि भारतीयों ने तथा मैक्समूलर विल्सन प्रभृति पाश्चात्त्य लोगों ने।

निवृत्ति भी इस भाष्य से अवश्य होगी। और जो उन व्याख्यानों के देखने से मिथ्या ज्ञान जगत् में प्रवर्त्तमान है सो भी इस भाष्य से नष्ट अवश्य हो जायगा। इस कारण से भी यह वेदभाष्य अपूर्व होता है क्योंकि जब वेदों का सत्य अर्थ सब को विदित होगा तब मनुष्य लोग असत्य व्यवहार को छोड़ के सत्य का ग्रहण और सत्य में ही प्रवृत्त होंगे। इस के होने से मनुष्यों को सुख की प्राप्ति अवश्य होगी। तथा वेद का सत्य अर्थ रूप जो राज्य और परमेश्वर का यथावत् प्रकाशरूप जो अखण्ड राज्य है सो भी इस भाष्य के होने से जगत् में यथावत् प्रकाशित होगा। इस निमित्त से भी यह वेदभाष्य परमोत्तम होता है और सब इस वेदभाष्य को यथावत् विचार के उस के कहे प्रमाण से जे मनुष्य आचरण करेंगे उन को सत्य धर्म सत्य अर्थ सत्य काम और नित्य सुख रूप जो मोक्ष इन चारों पदार्थों की सिद्धि यथावत् प्राप्त होगी। इस में कुछ सन्देह नहीं। बहुत लिखना बुद्धिमानों के लिये अवश्य नहीं, किन्तु इस वेदभाष्य को जब देखेंगे तब उनको ए सब बात देखने में आवेंहीगी। और वेदों की भूमिका जो बनाई है उस को भी देखने से सज्जन लोगों के हृदयकमल अत्यन्त आनन्दित होंगे। जिस से इसकी प्रवृत्ति यथावत् हो इसलिये यह विज्ञापन किया जाता है कि जे सत्य विद्या के प्रेमी विद्वान् हैं तथा जे सत्य अर्थ के जानने की इच्छा करने वाले हैं तथा सब मनुष्यों को सत्य विद्या से सुख प्राप्त हो और सब मनुष्यों की बढ़ती हो इस उपकार की इच्छा करनेवाले जे मनुष्य हैं उन राजाओं से लेके जे भृत्य पर्यन्त और जे ऐश्वर्य युक्त और उत्तम मनुष्य हैं जो सब मनुष्यों का उपकार करने वाला वेदभाष्य का होना यह बड़ा कृत्य है इस में जितना जिस का सामर्थ्य हो उतना सहाय करना सब को उचित है। सो सहाय दो प्रकार से होगा एक तो मासिक पुस्तकों के ग्रहण करने से और दूसरा इस के बनने और छपवाने में धन और पण्डितों के रखने में सहाय देने से होगा। यही सब सज्जनों से विज्ञापन है कि अत्यन्त प्रीति से इस कार्य में दो प्रकार का सहाय सदा करें॥

भाष्यस्यापूर्वत्वे दृष्टान्ताः संक्षेपतोऽग्रेऽपि लिख्यन्ते। तत्र सत्येष्वार्षेषु सनातनग्रन्थेषु रूपकाद्यलङ्कारेण सत्यविद्याप्रकाशिकाः

प्रमाणयुक्तिसिद्धा अनुत्तमा बह्व्यः कथा लिखिताः सन्ति। तासां मध्याद्दिग्दर्शनवत् काश्चित् कथा अत्र वेदभाष्यभूमिकायां मयोल्लिखिताः[1]। यासामज्ञानादाधुनिकपुराणग्रन्थेषु भ्रान्त्या मनुष्यैस्ता अन्यथैव लिखिता उपदिश्यन्ते श्रूयन्ते च। तत्परीक्षार्थं संक्षेपतोऽत्र विज्ञापनपत्रेऽपि काश्चिल्लिख्यन्ते। तद्यथा

प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायद् दिवमित्यन्य आहुरुषसमित्यन्ये तामृश्यो भूत्वा रोहितं भूतामभ्यैत्। तस्य तद्रेतसः प्रथममुददीप्यत तदसावादित्योऽभवत्। ऐतरेयब्रा० पञ्चिका ३, अध्याय ३ [कण्डिका ९, १०]॥ प्रजापतिः सविता[2]। शतप० काण्ड १०, अध्याय २ [ब्राह्मण २ कण्डिका ८]॥ तत्र पिता दुहितुर्गर्भं दधाति पर्जन्यः पृथिव्याः॥ निरु० अध्याय ४, खं० २१॥ द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्। उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात्॥ निरु० अध्याय ४, खण्ड २१॥ शासद् वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद्विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन्॥ पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्त्सं शग्म्येन मनसा दधन्वे॥ [निरु० अध्याय ३, खण्ड ४॥] ऋग्मन्त्रद्वयमिदम्[3]॥ ज्योतिर्भाग आदित्यः॥ निरु०। अ० १२। खण्ड १॥

॥ भाषार्थ ॥

इस भाष्य के अपूर्व होने में तीन कथा दृष्टान्त के लिये इस विज्ञापन पत्र में संक्षेप से लिखते हैं। उनमें से एक यह कथा है कि जिसको श्रीमद्भागवतादि नवीन ग्रन्थों में बहुत विपरीत करके लिखी है। जिस कथा को वेदविरोधी मत वाले नहीं जानके लोगों को मिथ्या बहका के अपने चेले कर लेते हैं और जो वेद मत वाले हैं वे भी सत्य कथाओं के नहीं जानने से

---

१. ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषय इत्यर्थः। इस विज्ञापन का लेखन मार्गशीर्ष शुक्ला १५ (१ दिस० १८७६) को हुआ था। अतः उपर्युक्त लेख से जाना जाता है कि सम्भवतः मार्गशीर्ष के मध्य अर्थात् नवम्बर १८७६ के मध्य तक ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का लेखन हो गया था।

२. शतपथे (१०।६।२।४) तु 'प्रजापतिर्वै सुपर्णो गरुत्मान् एष सविता' इत्येव पाठ उपलभ्यते।

३. 'द्यौर्मे पिता जनिता (ऋ० १।१६४।३३) शासद् वह्निर्दुहितुः (ऋ० ३।३१।१)' इत्यर्थः।

और मिथ्या कथाओं को सुनके भ्रान्त होके उनके चेले हो जाते हैं। सो देखो चित्त देके कि कितना बड़ा भ्रम मनुष्यों को अज्ञान से हुआ है। (प्रजापतिर्वै०) प्रजापति नाम है सूर्य का, क्योंकि सब प्रजा का जो पालन होता उसका मुख्य हेतु सूर्य ही है। उसकी दो कन्या हैं। एक द्यौ अर्थात् प्रकाश और दूसरी उषा जो चार घड़ी रात्रि रहने से प्रातःकाल पूर्व दिशा में किंचित्प्रकाश होता है क्योंकि जो जिससे उत्पन्न होता वह उसका सन्तान कहाता है। सो इन दोनों का पिता की नाईं सूर्य है। और उन दोनों को सूर्य की कन्या की नाईं समझना। उषा जो सूर्य की कन्या उस में पिता जो सूर्य उसने अपना किरण रूप वीर्य को डाला। उन दोनों के समागम से यह जो आदित्य अर्थात् प्रकाशमय दिन है यह एक पुत्र उत्पन्न होता है॥१॥ तथा इसी प्रकार से पर्जन्य जो मेघ है सो पिता स्थानी है और पृथिवी उसकी कन्या स्थानी है क्योंकि जल से पृथिवी की उत्पत्ति होती है। इससे ये दोनों पिता पुत्रवत् हैं। सो अपनी कन्या जो पृथिवी उसमें मेघ जो पिता वह वृष्टि द्वारा जल रूप वीर्य को डालता है। इन दोनों के परस्पर समागम से गर्भ धारण होने से अन्न ओषधि और वृक्षादि अनेक पुत्र उत्पन्न होते हैं। यह पिता और दुहिता की रूपकालंकार कथा से उत्तम विद्या का अत्यन्त प्रकाश होता है। इस उत्तम कथा को बिगाड़ के अज्ञानी लोगों ने बुरी प्रकार से लिखी है॥२॥

दूसरी यह कथा है जिसको बहुत प्रकार से लोगों ने पुराणों में बिगाड़ के लिखी है।

इन्द्रागच्छेति गौरावस्कन्दिन्नहल्यायै जारेति तद्यान्येवास्य चरणानि तैरेवैनमेतत् प्रमुमोदयिषति॥ [शत० काण्ड ३, अ० ३, ब्रा० ४, कं० १८] रेतः सोमः। शतपथ० काण्ड ३ अ० ३ [ब्रा० २ कं० १]॥ रात्रिरादित्य[स्य, आदित्य]स्योदयेऽन्तर्धीयते। नि० अ० १२ खं० ११॥ सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्व इत्यपि निगमो भवति। सोऽपि गौरुच्यते। नि० अ० २ खं० ६॥ जार इव भगम्। आदित्योऽत्र जार उच्यते। रात्रेर्जरयिता। नि० अ० ३ खं० १६॥ एष एवेन्द्रो य एष तपति। श०काण्ड १ अ० ६[ब्रा० ४ कं० १८]॥

॥ भाषार्थ ॥

इसको इस प्रकार से बिगाड़ी है। इन्द्र जो देव लोक का राजा

था वह गोतम ऋषि की अहल्या जो स्त्री उससे व्यभिचार करता था। इस बात को गोतम ने जब जाना तब इन्द्र को शाप दिया कि तेरे शरीर में हजार भग हो और अहल्या को शाप दिया कि तू शिला हो जा। इस शाप का मोक्षण राम के पांव की धूल के स्पर्श से होगा। सो इसी कथा को विद्याहीन लोगों ने इस प्रकार से बिगाडी है। यह ऐसी कथा है कि इन्द्र नाम है सूर्य का तथा चन्द्रमा का नाम गोतम है और रात्रि का नाम अहल्या है क्योंकि अहर् नाम है दिन का, सो लय होता है जिसमें, इस कारण से रात्रि का नाम अहल्या है। जैसे स्त्री और पुरुष का जोडा होता है इसी प्रकार रात्रि और चन्द्रमा का रूपकालङ्कार किया है। इस रात्रि का जार[1] सूर्य है क्योंकि जिस देश में रात्रि है उसमें सूर्य का किरण रूप जो वीर्य है वहां उसके गिरने से रात्रि अन्तर्धान अर्थात् निवृत्त हो जाती है। इससे सूर्य का नाम अहल्या का जार है। रात्रि की उमर को सूर्य ही बिगाडता है। अर्थात् उसकी हानि कर्ता है इससे सूर्य रात्रि का जार कहाता है। और चन्द्रमा अपनी स्त्री जो रात्रि है उससे सब संसार को आनन्द करता है। इस अत्यन्त श्रेठ कथा को लोगों ने बिगाड के अन्यथा ही लिखी है ॥२॥

तथा तीसरी यह कथा है जो इन्द्र और वृत्रासुर के युद्ध की कहानी है। तद्यथा—

अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ॥ वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमवजग्मुरापः। ऋग्वेद अष्टक १ अध्याय २ वर्ग ३७ [मन्त्र २][2] । इत्यादय एतद्विषया वेदेषु बहवो मन्त्राः सन्ति। अद्रिरित्यादिषु मेघस्य त्रिंशन्नामसु वराहः, अहिः, वृत्रः, असुर इति चत्वारि नामानि यास्कमुनिकृतनिघण्टौ[3]

---

१ रात्रि का नाश करने वाला (जृष् वयोहानौ)।

२. मण्डल विभागानुसार—म० १, सू० ३२, मन्त्र २।

३ निघण्टु यास्क-मुनिकृत है यह बात ऋषि दयानन्द ने निघण्टु की भूमिका में भी लिखी है। आधुनिक विद्वान् निघण्टु को यास्क की कृति नहीं मानते थे। पं० भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर ने आधुनिक विद्वानों के इस मत का खण्डन और ऋषि दयानन्द के मत का मण्डन अनेक अकाट्य प्रमाणों से किया है। देखो 'वैदिक वाङ्मय का इतिहास—वेदों के भाष्यकार' नामक भाग पृष्ठ १८१—१९५।

प्रथमाध्याये [दशमे खण्डे] लिखितानि ॥

इन्द्रशत्रुरिन्द्रोऽस्य शमयिता वा शातयिता वा तस्मादिन्द्रशत्रुस्तत् को वृत्रो मेघ इति नैरुक्तास्त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः । वृत्रं जघ्निवानपववार तद् वृत्रो वृणोतेर्वा वर्त्ततेर्वा वर्द्धतेर्वा । यदवृणोत्तद् वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विज्ञायते । [यदवर्त्तत तद् वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विज्ञायते । यदवर्धत तद् वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विज्ञायते ॥] निरुक्त अध्याय २ खण्ड १६, १७ ॥

वृत्रो ह वा इदँ सर्वं वृत्वा शिश्ये । यदिदमन्तरेण द्यावापृथिवी स यदिदँ सर्वं वृत्वा शिश्ये तस्माद् वृत्रो नाम । तमिन्द्रो जघान स हतः पूतिः सर्वत एवापोऽभिप्रसुस्राव सर्वत इव ह्यँ समुद्रस्तस्मादु हैका आपो बीभत्सां चक्रिरे ता उपर्युपर्यति पुप्लुविरे त इमे दर्भास्ता हैता अनापूयिता आपोऽस्ति वा इतरासु सँसृष्टमिव यदेना वृत्रः पूतिरभिप्रास्रवत् तदेवासामेताभ्यां पवित्राभ्यामपहन्त्यथ मेध्याभिरेवाद्भिः प्रोक्षति तस्माद् वा एताभ्यामुत्पुनाति ॥ शतपथ काण्ड १ अ० १ [ब्रा० ३ कं० ४।५]

तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः । अग्निः पृथिवीस्थानो वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः सूर्यो द्युस्थान इति । निरु० अ० ७ खण्ड ५ ।

॥ भाषार्थ ॥

(अहन्नहि०) यह ऋग्वेद का मन्त्र है, इत्यादि इस विद्या के निरूपण करने वाले और भी बहुत मन्त्र हैं । इन्द्र नाम है सूर्य का [और त्वाष्ट्र अहि वृत्र असुर ये चार मेघ के नाम हैं] सो निघण्टु में लिखे हैं । इन दोनों का रूपकालङ्कार से युद्ध की नाईं वर्णन किया है । जब त्वष्टा जो सूर्य है अर्थात् मेघ और सब चीजों का काटने वाला है । वह जब मेघ को अपनी किरण रूप वज्र से काटता है तब वह वृत्रासुर जो मेघ है सो पर्वत और भूमि का आश्रय लेता है पुन उसका शरीर रूप जो जल है सो समुद्र को प्राप्त होता है । पुनरपि सूर्य की किरण से उसके शरीर का खण्ड २ होता है । सो वायु के साथ आकाश में ऊपर चढ़ता है । फिर भी बादल रूप सेना को जोड़ के सूर्य की सेना जो किरण रूप है उसको रोकता है । पुन सूर्य भी अपनी किरण रूप सेना से उसका हनन करता है, पुन वह मेघ पृथिवी में गिर पड़ता है । पुनरपि उठ के इसी प्रकार युद्ध करता है । (इन्द्रशत्रु) इन्द्र शत्रु है जिसका ऐसा

जो मेघ उसका छेदन करनेवाला सूर्य ही है। इससे सूर्य का नाम त्वष्टा है। उसके पुत्र की नाईं मेघ है क्योंकि मेघ की उत्पत्ति सूर्य के निमित्त से ही होती है। इससे त्वाष्ट्र मेघ का नाम है और असुर भी नाम है। वृत्र नाम मेघ का इस कारण से है कि सूर्य के प्रकाश का आवरण कर्त्ता है और सूर्य से ही वृद्धि को प्राप्त होना है यही मेघ का वृत्रपन है। सो जब आकाश में वृद्धि को प्राप्त होता है तब मेघ का आवरण करके आकाश और पृथिवी के बीच में सोता है। पुनः जब सूर्य इस मेघ को हनन करके पृथिवी में गिरा देता है तब पृथिवी को आच्छादित करके पृथिवी में सोता है। पुनरपि उसी प्रकार ऊपर को चढ़ता है। इसी प्रकार से सूर्य और मेघ के रूपकालङ्कार से परमोत्तम जो मेघ-विद्या है उसका इस कथा में परमेश्वर ने इसके अनुसार मुनि और ऋषियों ने भी उपदेश किया है। इसको यथावत् नहीं जान के बालकों की नाईं विपरीत कथा मनुष्यों ने रच ली है। ऐसी अनेक कथा रूपकादि अलङ्कारों से वेदादि सत्य शास्त्रों में लिखी हैं। उन में से कई एक कथा वेद की भूमिका[1] में सज्जनों को जानने के लिये लिखी है, तथा वेदों की उत्पत्ति किस प्रकार से है, वेद नित्य हैं वा अनित्य हैं वेद ईश्वर ने बनाये हैं वा अन्य ने, वेदों में सब विद्या है वा नहीं इत्यादि बहुत कथा[2] भूमिका में लिखी हैं। जब भूमिका छपके सज्जनों के दृष्टिगोचर होगी तब वेद शास्त्र का महत्त्व जो बड़ापन तथा सत्यपना भी सब मनुष्यों को यथावत् विदित हो जायगा। सो भूमिका[3] के श्लोक न्यून से न्यून संस्कृत और आर्यभाषा के मिल के आठ ८ हजार हुये हैं। इसमें सब विषय विस्तार पूर्वक लिखे हैं। सो इस को छपवा के हम लोग प्रसिद्ध किया चाहते हैं। इसलिये सब सज्जन लोगों का यही विज्ञापन है कि अत्यन्त उत्साह से पूर्वोक्त दो प्रकार का सहाय इस उत्तम काम में यथावत् देवें॥ ओं नमः सर्वशक्तिमते जगदीश्वराय॥ यही परमेश्वर स्वकृपा से

---

१ अर्थात् ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषय में।

२ अर्थात् विषय।

३ अर्थात् नवम्बर १८७६ के मध्य तक भूमिका बन चुकी थी। इस से ज्ञात होता है कि भूमिका के बनने में लगभग पौने तीन मास लगे।

सब का सहायक हो ॥

[पूर्ण संख्या ७५]   पत्र

ओम्

स्वस्ति श्रीमच्छ्रेष्ठोपमा० वनमालीसिंह योग्य इतो स्वामी दया० आशीर्वाद । पौष शुदी ७ रविवार को हम दिल्ली केश गये हैं । सो आपको लिखा जाता है कि विज्ञापनपत्र[1] हजार १००० और वेदभाष्य पुस्तक १००० चिट्ठी देखते ही भेजो । और बाकी पुस्तक लाजरस कम्पिनी में रहने दो । वहां[2] से उठाना नहीं । पत्र देखते ही २००० पुस्तक और चिट्ठियां देशावर से हमारे नाम की आई थी, और जो वेदभाष्य देखकर सूचीपत्र बनाया था, उस को भी लेते आना क्योंकि तुम को हमारे पास रहना होगा । और जो कुछ किराया रेल का होगा सो इहां से दे दीया जाइगा । अगर जो पुस्तक लाजरस कम्पिनी ने रवाने करि दी हों तो भी आप हमारे पास चले आना । अलं विज्ञेष्वधिकम् ।

पौष शुदी ४ भौम सं० १९३३ ।[3]

[पूर्ण संख्या ७६]   पत्र

स्वस्ति श्रीमच्छ्रेष्ठोपमायुक्तेभ्य श्रीयुतपण्डित सुन्दर-

---

१. पूर्व छपा वेदभाष्य विषयक विज्ञापन पत्र ।

२. अर्थात् वहां से

३. १९ दिसम्बर सन् १८७६ । यह पत्र देहली से काशी को लिखा गया था । मूल पत्र गुलाबी रंग के बारीक कागज पर लिखा हुआ है ।

यह पत्र श्री देवेन्द्र बाबू के संग्रह में था । इस पर उनकी संख्या ८/४ पड़ी है । श्री पं० घासी राम जी मेरठ निवासी ने पं० मामराज जी को अक्तूबर १९२९ में मूल पत्र ला दिए थे । अब यह हमारे संग्रह में संख्या २ पर सुरक्षित है ।

वनमालीसिंह श्री स्वामी जी का बाबू अर्थात् अंग्रेजी आदि लिखने वाला क्लर्क प्रतीत होता है । इस से स्वामी जी महाराज ने अंग्रेजी पढ़ना भी प्रारम्भ किया था । [द्रष्टव्य पं० देवेन्द्रनाथ जी संकलित जी० च० पृष्ठ ३७७] ।

लाल हरनारायणशर्मभ्यो दयानन्द सरस्वती स्वामिन आशिषो भूयासुस्तमाम् । शमत्रास्ति तत्र भवदीय च नित्यमाशास्महे । आगे हम दिल्ली में अजमेर दरवाजे गुड़गामा की सड़क पर से रामचन्द्र के बाग में ठहरे हैं यहां डाकघर के पास जो चिट्ठी वा पारसल हमारे नाम से आई हो सो इस ठिकाने भेज देना और सब से आशीर्वाद कह देना और पुस्तकनी ? न में ३ संस्कारविधि का केशवलाल निर्भयराम मुंबई में भेजे सो उनको अपने पास रखकर रसीद उनके पास भेजि देना और दिन १५ इस जगह हम रहेंगे अग्रे कि पौष सुदी ५

बुध सं० १९३३

— — —

[पूर्ण संख्या ७७] पत्रांश

श्रीयुतपण्डितकालूरामशर्मादिभ्यो दयानन्दसरस्वती-स्वामिन आशिषो भूयासुस्तमाम् । शमिहास्ति तत्र भवदीयञ्च नित्यमाशास्महे । आपने धर्म जिज्ञासा की, उसका उत्तर यह है कि इस विषय में जो सत्यार्थप्रकाशादि मद्रचित ग्रन्थ हैं उन में सन्ध्या-सन्ध्यादि सर्व धर्म विषय लिखा हुआ है उसी रीति से कार्य्य करो[3] इत्यादि ......

— —

[पूर्ण संख्या ७८] पत्र

स्वस्ति श्रीमच्छ्रेष्ठोपमायोग्यस्य श्रीयुतपण्डितकालूराम शर्मभ्यो[4] दयानन्दसरस्वतीस्वामिन आशिषो भूयासुस्तमाम् । शम-

१ यह पण्डित सुन्दरलाल को भेजे पत्र की प्रतिलिपि है, जो परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान है।

२ यहां सं० १९३३ चाहिए।

३ यह पत्रांश श्री जयनारायण पाहार कृत प० कालूराम जी शर्मा के जीवनचरित में पृष्ठ २६ पर उद्धृत है। आर्यसमाज जयपुर की स्मारिका पृष्ठ ७२ के अनुसार यह पत्र सन् १८७७ में देहली से लिखा गया होगा।

४ प० कालूराम जी रामगढ़ (शेखावाटी) रियासत जयपुर के निवासी थे। इन की योग में अच्छी गति थी। उन को तन्द्रावस्था में श्री स्वामी

आश्विन मध्य भवदीय च निरयमाशास्महे ॥ आगे प्रेत की गिनती जिस समय प्राण छूटे उसी समय से मानना और 'अद्यतन' शब्द से आगामिनी अर्द्धरात्री पर्यन्त काल का ग्रहण होता है। इसी रीति अर्द्धरात्रि से दिवसारम्भ जानना। और वेदोक्त मार्ग को कितने पुरुष स्वीकार करते हैं सो इसका परिगणन नहीं कर सकते। असंख्यों में से दो चार लिख देते हैं जैसे महाराज इन्दौर के और बड़ौदा के और कपूर्थला के विक्रमसिंह महाराज राजा जयकृष्णदास ठाकुर मुकुन्दसिंह तथा लाला लक्ष्मी नारायण बरेली के इत्यादि बहुत जान लेना ॥ और मैं अब नहीं आ सका परन्तु कभी

जी के दर्शन हुए। उसी समय से इन्होंने श्री स्वामी जी का गुरु धारण कर लिया। बहुत काल पश्चात् फिर श्री स्वामी जी के दर्शन को गए। इन्हीं के उपदेश से .मगढ़ के आस पास के लोग आर्य धर्म में श्रद्धावान् हुए [भारतसुदशाप्रवर्तक के मई १८८३ के अङ्क में ठा० कालराम जी के विषय में लिखा है वर्तमान में आठ सहस्र मनुष्य उनके उपदेश पर पूर्ण प्रीति रखते हैं]। इन्हीं के कारण मु० समर्थदान तथा भक्त श्री स्वामी जी की सेवकाई करने लगा। ज्येष्ठ सु० १० संवत् १९५७ को अपनी इच्छा से शरीर त्याग गए।

१. अद्यतन (आज) शब्द की व्याख्या प्राचीन ग्रन्थों में दो प्रकार की दर्शाई जाती है। एक **'आन्याय्यादुत्थानादान्याय्याच्च संवेशनादेषोऽद्यतनः कालः'** अर्थात् न्याय्य प्रातः काल उठने के समय (ब्राह्ममुहूर्त) से न्याय्य सोने के समय तक का काल अद्यतन कहाता है। इस लक्षण में प्रायः रात्रि के १० से प्रातः ४ बजे तक के काल की गिनती अद्यतन में नहीं होती। दूसरा लक्षण **'अहरुभयतोऽर्धरात्रमेषोऽद्यतनः कालः'** है। तदनुसार अर्धरात्रि पर्यन्त काल अद्यतन कहाता है (ये दोनों लक्षण काशिकावृत्ति १।२।५७ में लिखे हैं) आजकल के पाश्चात्य विद्वान् भी द्वितीय लक्षण को मानते हैं रात्रि के १२ बजे के उत्तर क्षण में वे तारीख बदलते हैं भारतीय ज्योतिषी सूर्योदय क्षण से लेकर अगले सूर्योदय के पूर्व क्षण तक अद्यतन काल मानते हैं। यद्यपि यहां ऋषि दयानन्द ने अद्यतन की व्याख्या द्वितीय लक्षणानुसार की है परन्तु अनेक पत्रों में भारतीय ज्योतिषियों के व्यवहारानुसार भी निर्देश किया है। (देखो ५ जुलाई सन् १८८२ को बाबू रूपसिंह को लिखा ऋ० दयानन्द का पत्र — आज हम इन्दौर से दो बजे [रात्री] की गाड़ी .... ।

अनोदक होगा तो जरूर आऊंगा। अनुमान है कि यहां से मेरठ की ओर जाना होगा।

संवत् १९३३ माघ कृष्ण ४ बुधवार।[1]

०

[पूर्ण संख्या ७९] विज्ञापन-अंश

अपने पण्डितों को एकत्र करके सत्यासत्य के निर्णय करने का यह अत्यन्त उपयुक्त अवसर है।[2]

— ० —

[पूर्ण संख्या ८०] पत्र

To

Meerutt 20 1/77

Pandit Soonder Lall[3] Ram Narain
Post master Generals' office
Allahabad

Dear Sir,

Will you kindly inform me whether you received (500) five hundred copies of Sunskar-Biddhee from Bombay for Lalla Kasab Lall Nirbhey Ram long ago were requested by me to send you the above number of copies without delay. I am now-a-days in Meerutt & will continue to stop here for a fortnight nearly & so please send me your letter to Meerutt

---

१. ३ जनवरी १८७७ को देहली से भेजा गया। मूल पत्र हमारे पास श्री प० रामगोपाल जी ने भेजा था। प० कालूराम जी के शिष्य स्वामी ब्रह्मानन्द जी से उन्हें यह पत्र मिला था। यह गुलाबी रंग के बारीक हाथी मार्का कागज पर लिखा हुआ है। अब यह पत्र हमारे संग्रह में संख्या ३ पर सुरक्षित है।

२. इस का निर्देश प० देवेन्द्रनाथ संकलित जी० च० में पृष्ठ ३८५ पर मिलता है। यह सम्भवतः जनवरी १८७७ में दिल्ली दरबार के अवसर पर दिया था।

३. यह पण्डित सुन्दरलाल को भेजे पत्र की प्रतिलिपि है जो परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान है।

according to my following address

Yours well wisher
Swamee Dya Nand Sarassootee
Sooruj Koond in the Kothi
of Dr Mahtab Singh
Meerutt

दयानन्द सरस्वती

[भावानुवाद]

सेवा में,   मेरठ, २० जनवरी १८७७

पण्डित सुन्दरलाल रामनारायण
पोस्ट मास्टर जनरल का ऑफिस,
इलाहाबाद.

प्रिय महोदय,

क्या आप मुझे सूचित करने की कृपा करेंगे कि आपको बम्बई के लाला केशवलाल निर्भयराम द्वारा भेजी गई (५००) पांच सौ प्रतियां संस्कारविधि की प्राप्त हो गई हैं या नहीं। मैंने कुछ समय पूर्व उनसे निवेदन किया था कि वे उपरोक्त प्रतियां आपको अविलम्ब भेज दें।

इन दिनों मैं मेरठ में हूं और आगामी लगभग १५ दिनों तक मैं यहीं रहूंगा, अतः कृपया आप अपना पत्र मेरठ मेरे निम्नलिखित पते के अनुसार भेज दें -

आपका शुभेच्छु
स्वामी दयानन्द सरस्वती
सूरजकुण्ड, डा. महताबसिंह जी
की कोठी
मेरठ

(ह० दयानन्द सरस्वती)

[पूर्ण संख्या ८१]   पत्र

Meerut
6.2.77[1]

My dear sir[2]

I am very happy to acknowledge the receipt of your letter

१. फाल्गुन कृष्ण ६ मङ्गलवार सं० १९३३।

२. यह पत्र पं० रमाधार बाजपेयी लखनऊ को लिखा गया था। मूल पत्र आर्यसमाज लखनऊ के संग्रह में सुरक्षित है।

date unknown, and feel much pleasure to learn from your writing that you have Procured good many subscribe[rs for] Veda Bhasya Please inform all those subscribers who are ready to buy monthly tract, to send their subscription money to Benares to the address of Messrs E.J. Lazarus&Co Medical Hall Press Benares The Bigyapan Pattra's or notices are not intended to be sold for price. but only to improve the number of subscribers for Veda Bhasya. So please show and give them to all of your friends and neighbours who are expected to be subscribers for Veda Bhasya E. J Lazarus & Co will acknowledge receipt for the money which is to be sent to him, but all subscribers must send their respective correct addresses for receiving their copies from him [Massrs E. J. Lazarus & Co)

I hope you will keep continue trying your utmost in increasing the No of subscribers Hoping you are alright with your family I am to stay here up to 15th inst. and then will leave this for Saharanpore An early answer will ever oblige Annual subscription for Veda-Bhasya is 4 8 -only

Yours well wisher
Swami Dayanand Saraswati
(Sd.) दयानन्द सरस्वती

Please let me know the total No. of subscribers already collected by you in Lucknow. I have written five copies in my list against your name for furnish you with five copies and others can get more on advancing their annual subscription Rs 4 8/ only.[1]

Sd. Swamee D. Nand Sarusswatt
दयानन्द सरस्वती

[भाषानुवाद]

मेरठ
६. ३. ७७[2]

मेरे प्रिय महाशय !

आप के अज्ञात तारीख के पत्र को रसीद की स्वीकृति बताने में मुझे

---

१. पूर्व पत्र के साथ ही यह पुनर्लेख मिलता है।

२. फाल्गुन कृष्ण ६, मङ्गलवार सं० १९३३।

बड़ा आनन्द है, और आप के लेख से यह जान कर बड़ा हर्ष है कि आपने वेदभाष्य के लिये बहुत से ग्राहक बना लिये हैं। कृपया उन सब ग्राहकों को जो मासिक अङ्क खरीदना चाहते हैं यह बता दें कि वे अपना चन्दा बनारस में मेसर्ज ई० जे० लाजरस और कम्पनी मेडिकल हाल प्रेस, बनारस के पते पर भेज दें। विज्ञापन पत्र मूल्य पर बेचने के लिये नहीं है, परन्तु वेदभाष्य की ग्राहक संख्या बढ़ाने मात्र के लिये है। सो अपने उन मित्रों और पड़ौसियों को दिखा दें कि जिन के वेदभाष्य के ग्राहक बनने की सम्भावना है। ई० जे० लाजरस और कम्पनी, जो रुपया उन्हें भेजा जायगा, उस की रसीद भेजेंगे। परन्तु सब ग्राहकों को उन से (मेसर्ज ई० जे० लाजरस और कम्पनी से) अङ्क प्राप्त करने के लिये अपना २ शुद्ध पता भेजना चाहिये।

मैं आशा करता हूं कि ग्राहक संख्या बढ़ाने में आप अपना पूर्ण यत्न करते रहेंगे। आशा है आप सपरिवार आनन्द में होंगे। यहां २४ तारीख तक रहूंगा और फिर यहां से सहारनपुर को जाऊंगा, शीघ्र उत्तर कृतार्थ करेगा। वेदभाष्य का वार्षिक चन्दा ४॥) मात्र है।

आपका शुभचिन्तक
द० दयानन्द सरस्वती

कृपया कुल ग्राहक संख्या जो आप ने लखनऊ में अभी तक एकत्र की है मुझे लिखें। मैंने अपनी सूची में आपके नाम पर भेजने को पांच प्रतियां लिखी हैं और अन्य लोग वार्षिक चन्दा ४॥) भेजने पर और ले सकते हैं।
दयानन्द सरस्वती

[पूर्ण संख्या ८२]　　　　पत्र

Meerut
13.2.79[1]

My dear sir,[2]

I recd. Yours dated 9th inst. and in its reply I feel much pleasure to send you herewith ten more copies of Brahman-Patters as you wished to be distributed there

---

१. फाल्गुन कृष्ण ३०, मङ्गलवार, सं० १९३५।

२. यह पत्र प० रामाधार वाजपेयी लखनऊ को लिखा गया था। मूल पत्र आर्यसमाज लखनऊ के संग्रह में सुरक्षित है।

Well done my dear, why you not do so? Let Sanskar Biddhee come from Bombay, as soon expected and then not only one but ten or fifteen copies will be sent to you without fail.

I will leave Meerutt on the 15th of this month for Saharanpore and so your answer should reach me there and not here. Hoping you are well with your family.

Yours well wisher
Swami Dayanand Saraswati
(Sd) दयानन्द सरस्वती

[भाषानुवाद]

मेरठ, १३-२-७७[1]

मेरे प्रिय महाशय !

आप का पत्र तारीख ८ का मिला। उसके उत्तर में, जैसा आप ने वहां बांटने को चाहा था, मैं विज्ञापन पत्र की १० दस और प्रतियां भेजने में बहुत प्रसन्न हूं।

मेरे प्रिय आपने बहुत अच्छा किया, भला आप ऐसा क्यों न करेंगे? जैसा कि शीघ्र आशा है, संस्कार-विधि मुम्बई से आ जाय और तब एक नहीं, परन्तु दश या पन्द्रह प्रतियां बिना देरी आप को भेजी जायेंगी।

मैं इस मास की १५ तारीख को मेरठ से सहारनपुर जाऊंगा और इस लिये आप का पत्र मुझे वहां मिलना चाहिये और यहां नहीं। आशा है आप सपरिवार आनन्द में होंगे।

आप का शुभचिन्तक
ह० दयानन्द सरस्वती

—०—

[पूर्ण संख्या ८३] **पत्र-सारांश**

[मुन्शी प्यारेलाल, चांदपुर]

यदि शास्त्रार्थ कम से कम दो सप्ताह तक हों तो हम आ सकते हैं।[2]

०

१. द्र० टिप्पणी १, पृ० १११।

२. इस पत्र का निर्देश प० देवेन्द्रनाथ स० जी० च० पृष्ठ ३६१ पर मिलता है। यह २८ फर्वरी १८७७ के समीप लिखा होगा। पूर्ण संख्या

[पूर्ण संख्या ८४]   पत्र

Saharun-pore
28/2/77[1]

My dear pundit

I am very glad to inform you that I will now visit the Chandapore Religious Fair situating in Rohelcund Shajahanpore District, where, I have been repeatedly invited by the Fair-proprietors and others, The fair has been founded for assembling and collecting all the Religious Philosophers of India to enquire from, what is the God's true Religion to be followed for Salvation. I will leave Saharunpore by the 11th march and reach the fair-place on the 15th and so you are expected to join the Fair which will stop for a week (being postponed from 3 days to a week) with all your friends, who wish to come there The fair will be most interesting and worthy to be seen and a great many pundits, Moulvees and Padrees from all parts of India will attend and beautify it indeed Hoping you are well with your children Have you now recd /full required copies from Benares An early answer will ever oblige

Yours well wisher
Swami Dayanand Sarusswati
(Sd) दयानन्द सरस्वती

To

Pdt Ramadhar Bajpayee,
Lucknow

[भाषानुवाद]

सहारनपुर
२८ २—७७[2]

---

८४ ८६ के पत्रों में श्री स्वामी जी ने चांदपुर के मेले में पहुँचने की सूचना दी है। अतः यह उस से पूर्व का पत्र है।

१. चैत्र कृष्ण १, बुधवार, सं० १९३३। मूल पत्र आर्यसमाज लखनऊ के संग्रह में सुरक्षित है।

मेरे प्रिय पण्डित !

मैं आपको यह बताने में बड़ा प्रसन्न हूं कि मैं अब चान्दापुर धार्मिक मेले में जाऊंगा, जो कि रुहेलखण्ड जिला शाहजहांपुर में है, और जहां कि मेले के अध्यक्षों और दूसरों से मैं बारम्बार निमन्त्रित किया गया हूं। यह मेला आर्यावर्त के सब धार्मिक दार्शनिकों को एकत्र करने के लिये बुलाया गया है, और उन से पूछा जायगा कि मुक्ति प्राप्त करने के लिये परमात्मा का सत्य धर्म कौन सा है ? मैं ११ मार्च को सहारनपुर से चलूंगा और मेला स्थान पर १५ को पहुंचूंगा और इस लिये आप को भी अपने सब मित्रों के साथ जो आना चाहते हैं, मेले में आना चाहिये, जो कि एक सप्ताह तक रहेगा (२ दिन से एक सप्ताह के लिये हो गया है)। मेला बड़ा रुचिकर और देखने योग्य होगा और बहुत से पण्डित, मौलवी और पादरी भारत के सब भागों से आवेंगे और निश्चय ही इसे सुशोभित करेंगे। आशा है आप स्वास्थ्य सहित आनन्द से होंगे। क्या आप को अब बनारस से अभीष्ट प्रतियां मिल गई हैं ? शीघ्र उत्तर कृतार्थ करेगा।

आपका शुभचिन्तक

ह० दयानन्द सरस्वती

सेवा में पं० रामाधार बाजपेयी, लखनऊ

— ० —

[पूर्ण संख्या ८५] पत्र-सारांश

[मुन्शी प्यारेलाल, चांदपुर]

हम १५ मार्च को चांदपुर पहुंच जावेंगे और आप मुरादाबाद से मुंशी इन्द्रमणि को अवश्य बुला लें।[1]

— ० —

[पूर्ण संख्या ८६] पत्र

Saharan-pore
9-3-1877

My dear Pundit,

I am in receipt of your letter D/6 3 77 and in its reply I

---

१. इसका निर्देश पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ३९२ में है।

२. चैत्र कृष्ण १०, शुक्रवार, सं० १९३३। मूल पत्र आर्यसमाज लखनऊ के संग्रह में सुरक्षित है।

am happy to inform you that the five more copies of Veda Bhashya have been sent to you with my permission and Messrs E. J. Lazarus is not in mistake this while. Please distribute them among the subscribers about whom you had written to me some days ago. I will reach Chanda-pur Fair on the 15th Inst which will now continue to stop for a whole week from 19th inst. Please let me know how many Sanskar Biddhis you require and address me after the 11th Chandapur Fair and not Saharanpore which I will leave for, on the said date. Please accept best Asheerbad and see the fair, if possible.

Yours well wisher
(Sd) Swami Dayanand Saruswati
दयानन्द सरस्वती

P. S. You can send the subscription money for the five more copies you recd. twice to the Medical Hall Press Benares with addresses.

[भाषानुवाद]

सहारनपुर
९-३-७७[1]

मेरे प्रिय पण्डित !

आपका ६-३-७७ का पत्र मिला और उसके उत्तर में मैं यह प्रसन्नता से लिखता हूं कि आप को वेदभाष्य की पांच और प्रतियां भेज दी गई हैं और अब के मेसर्स ई० जे० लाजरस ने अशुद्धि नहीं की। कृपया उन्हें उन ग्राहकों में बांट दीजिये जिन के विषय में आपने कुछ दिन पहले मुझे लिखा था। मैं इस मास की १५ तारीख को चांदापुर पहुंचूंगा जो कि अब १६ तारीख से लेकर पूरा एक सप्ताह रहेगा। कृपया लिखें कि आप को कितनी संस्कारविधियों की आवश्यकता है और ११ [तारीख] के पीछे मुझे चांदापुर मेले के पते से लिखें और सहारनपुर नहीं, जहां से मैं उक्त तारीख को चला जाऊंगा। कृपया मेरा हार्दिक आशीर्वाद स्वीकार करें और यदि सम्भव हो तो मेला देखें।

आप का शुभचिन्तक
द० दयानन्द सरस्वती

---

१. चैत्र कृष्ण १० शुक्रवार, सं० १९३३।

पु० नि० जो पांच अधिक प्रतियां आप को दुबारा पहुंच गई हैं उनका बण्डल पता सहित मैडिकल हाल प्रेस बनारस को भेज दें।

—०—

[पूर्ण संख्या ८७] पत्र

Loodhiana
8/4/77

My dear Ram Narian[1]

In reply to your letter dated 5th inst[2] you are informed not to send any more Sunskar Biddhi to me this time. I don't require them at all. It was written to you as this by mistake & you may now keep all of them together in your charge. Please send the remaining subscription Rs. 2/28 - for five copies to Messrs E. J. Lazarus & Co who have put Rs 350/- against my name by balance of February & March together regarding the publication of Veda-Bhashya. I have delivered many lectures at Meerutt & Saharunpore with successful consequence & now since I have reached Loodhiana daily Sabhas are assembled here & the lectures are still going on with the same beauty indeed as in beginning. I will next visit Amaritsar. My asheerbad to Pandit Soonder Lall as well as you. The Veda Bhashya copies are published twice only i. e. for February & March & not before as you suppose. The year for the works issue commences from February 77. You received copies for 1st & 2nd months, but for the third month (April) you will get next.

Yours well-wisher
Pandit Swami Dayanand Sarusswatti
दयानन्द सरस्वती

[भाषानुवाद]

प्रिय रामनारायण, लुधियाना ८ अप्रैल १८७७

आपके दिनांक ५ अप्रैल के पत्र[2] के उत्तर में आपको सूचित किया जाता है कि आप संस्कार-विधि की अब और प्रतियां इस समय न भिज-

---

१. यह रामनारायण को भेजे पत्र की प्रतिलिपि है, जो परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान है।

२. यह पत्र हमें नहीं मिला।

जाएं क्योंकि मुझे उनकी आवश्यकता नहीं है। आपको यह भूल से लिख दिया गया था और अब आप उन सबको अपने पास सुरक्षित रखें। आप पांच प्रतियों की शेष राशि रु० २२/८, —मैसर्स ई. जे. लाजरस एण्ड कम्पनी को भिजवावें, जिन्होंने मेरे हिसाब में फरवरी व मार्च माह के वेदभाष्य के प्रकाशन के २५० रुपये शेष निकाल रक्खे हैं।

मेरठ और सहारनपुर में मेरे कई व्याख्यान हुए व उनका अच्छा प्रभाव पड़ा। तथा क्योंकि अब मैं लुधियाना पहुंच गया हूं, यहां प्रतिदिन सभा होती है तथा व्याख्यान उसी सफलता से हो रहे हैं जैसे प्रारम्भ में होते थे। आगे मैं अमृतसर जाऊंगा।

पण्डित सुन्दरलाल तथा आपको मेरा आशीर्वाद। वेदभाष्य की प्रतियां दो बार प्रकाशित हुई हैं, अर्थात् फरवरी और मार्च में तथा इससे पहले नहीं, जैसा कि आपने सोचा है। भाष्य के लिये नया वर्ष फरवरी-७७ से शुरू हुआ है। आपको पहले व दूसरे माह की प्रतियां मिल गई हैं, परन्तु तीसरे माह (अप्रैल) के लिये आपको प्रतियां आगे मिलेंगी।

आपका शुभेच्छु

पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती

(ह० स्वामी दयानन्द)

—०—

[पूर्ण संख्या ८८] अम्बहटा निवासी मुंशी चण्डी प्रसाद के प्रश्न तथा स्वामी दयानन्दजी के उत्तर[1]

प्रश्न—वेद शास्त्र के अनुसार हिन्दुओं को किस-किस की उपासना करनी चाहिये और जन्मदिवस से लेकर मृत्युपर्य्यन्त क्या-क्या काम करने चाहियें ?

उत्तर.—नारायण (परमेश्वर) के अतिरिक्त और किसी की उपासना न करनी चाहिये। विद्या प्राप्त करके मन की शुद्धि करनी चाहिये और सत्य व्यवहारपूर्वक आजीविकार्थ तथा अन्य सामा-

---

१. श्री पं० लेखरामजी जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ३०३ पर लिखते हैं—सहारनपुर में निवास के समय कई लोगों से धर्मसम्बन्धी बातचीत करते रहे और "भूमिका" भी बनाते रहे। उस समय स्वामीजी के साथ ग्राम अम्बहटा, जिला सहारनपुर निवासी मुंशी चंडीप्रसाद के प्रश्नोत्तर हुए। उन्हें पं० लेखरामजी ने सियालकोट से प्रकाशित "धर्मसंवाद" पत्रिका के अङ्क सं० ५ पृष्ठ २,३,४ से यहां उद्धृत किया है।

रिक कार्य करने उचित है।

प्रश्न—प्राय हिन्दू, उदाहरणार्थ कायस्थ, क्षत्रिय आदि, मद्य और शिकार (मांस) खाते-पीते हैं सो यह काम भी करने उचित हैं या नहीं?

उत्तर—मद्य और शिकार (मांस) का खाना पीना न चाहिये और बुद्धि के अनुसार भी प्राणधारी का खाना अन्याचार में सम्मिलित है और वेद तथा शास्त्र की दृष्टि से निषिद्ध है।

प्रश्न—भूत और चुड़ैल और जिन्न और परी की छाया कहीं कुछ है या नहीं? क्योंकि प्राय लोग ऐसी घटना होने पर मुल्लाओं, स्यानों और कब्रों आदि से उनको भगाने की इच्छा करते हैं।

उत्तर—भूत और चुड़ैल तथा जिन्न व परी की छाया कहीं कुछ नहीं है, यह लोगों का भ्रममात्र है। यदि ये कुछ होते तो फिरंगियों पर उनकी छाया अवश्य होती।

प्रश्न—शरीर के नष्ट होजाने पर यह आत्मा कहां जाती है?

उत्तर—मृत्यु के पश्चात् आत्मा शरीर से पृथक् होकर यमराज अर्थात् वायु के यहां चली जाती है।

प्रश्न—मृत्यु के पश्चात् पुनर्जन्म भी होता है या नहीं और स्वर्ग और नरक का क्या वर्णन है? कोई ऐसी बुद्धिगम्य युक्ति नहीं है कि जिससे आवागमन, तथा स्वर्ग और नरक का वृत्तान्त भलीभांति विदित हो जाय, कारण यह है कि जन्म से पहले और मृत्यु के पश्चात् का वृत्तान्त किसी को (कभी) विदित ही नहीं हुआ।

उत्तर—पुनर्जन्म भी अवश्य होता है और स्वर्ग नरक भी सर्वत्र विद्यमान है। जिस प्रकार मनुष्य बुद्धि के द्वारा पहचान सकता है कि पृथिवी और आकाश तथा मनुष्यों और पशुओं का उत्पन्न करने वाला परमात्मा है, इसी प्रकार विद्याप्राप्ति के द्वारा वह स्वर्ग और नरक की परिस्थिति को यहां जान सकता है। दिल्ली दरबार के अवसर पर मुंशी कन्हैयालाल साहब अलखधारी से भेंट हुई थी और ज्ञात हुआ था कि वह भी आवागमन और स्वर्ग और नरक को नहीं मानते हैं। वह मुझसे एक ग्रन्थ ले गये हैं। मुझे विश्वास है कि जिस समय उक्त मुंशी महोदय उस ग्रन्थ

को भली भांति देख सकेंगे तो उनका सन्देह निवृत्त हो जावेगा।

प्रश्न — ईश्वर ने सृष्टि को क्यों उत्पन्न किया ? और उत्पन्न करने में उसका क्या उद्देश्य था ?

उत्तर — जैसे आंख का काम होता है देखना और कान का काम है सुनना और देखने या सुनने में आंख या कान का कोई उद्देश्य नहीं होता परन्तु (वह तो उसका) प्राकृतिक स्वभाव ही है इसी प्रकार सृष्टि की रचना करना नारायण का भी काम ही है और (सृष्टि को) उत्पन्न करने अथवा उसके संहार करने में उसका उद्देश्य कोई नहीं है।

प्रश्न — आवागमन कब तक होता रहेगा ?

उत्तर — इस विषय में तुम्हारा सन्तोष सत्यार्थ प्रकाश तथा वेदभाष्य के एक-दो ग्रन्थ पढ़ने पर ही हो सकेगा मौखिक रूप में बतलाने से तुम्हारा सन्तोष नहीं हो सकता।

प्रश्न — ईश्वर ने सृष्टि कब उत्पन्न की थी ? और चारों युगों — अर्थात् सतयुग द्वापर त्रेता कलियुग में से प्रत्येक की कितनी-कितनी आयु (अवधि) है ?

उत्तर — ये सभी बातें वेदों से भली प्रकार सिद्ध हो सकती हैं। प्रत्येक युग की अवधि भिन्न-भिन्न है वेदशास्त्र के भाष्य से तुम स्वयं देख लोगे।

प्रश्न — स्त्री और पुरुष का विवाह कितनी-कितनी आयु में करना चाहिए और उसकी क्या विधि होनी चाहिये ?

उत्तर — विवाह के समय पुरुष की आयु (कम से कम) २५ वर्ष और स्त्री की आयु (कम से कम) १६ वर्ष होनी चाहिये। विवाह के समय स्त्री-पुरुष इससे कम वय परिमाण के कदापि न हों और विवाह स्त्री (तथा पुरुष) की अपनी रुचि के अनुसार करना चाहिये क्योंकि पुरुष को स्त्री से और स्त्री को पुरुष से सारे जीवन भर निभाव करना पड़ता है। जब वे अपनी रुचि के अनुसार एक दूसरे के रूप, आकार, प्रकार और चाल चलन तथा अन्य विषयों को देख लेंगे तो फिर सम्भव नहीं कि स्त्री और पुरुष में परस्पर झगड़े की कोई अवस्था उत्पन्न हो। नहीं तो (केवल) माता और पिता का पसन्द किया हुआ सम्बन्ध स्त्री (तथा पुरुष ?) को कब पसन्द हो सकता है ?

प्रश्न — वेद के दृष्टिकोण से (बताइये कि) विधवा स्त्री अथवा विधुर पुरुष का (पुनः) विवाह होना उचित है या नहीं? और यह कि अपनी स्त्री के जीवित रहते अथवा उसकी मृत्यु के पश्चात् दूसरा और तीसरा विवाह करने से पुरुष को कुछ दोष तो नहीं लगता?

उत्तर — विधवा स्त्री का पुनर्विवाह होना चाहिये और पुरुष अपनी स्त्री के जीवित रहते हुए दूसरे विवाह का पात्र नहीं, परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् उसको अधिकार है कि वह पुनः विवाह चाहे करे या न करे। ऐसा ही अधिकार विधवा स्त्री को भी होना चाहिये।

प्रश्न — गुरु किसको बनाना चाहिये और वह गुरु कितने गुणों से युक्त हो?

उत्तर — गुरु पिता आदि (माता पिता आदि) को बनाना चाहिये और जीवनपर्य्यन्त उनकी आज्ञा का पालन करे और उनकी प्रसन्नता का अभिलाषी रहे।

प्रश्न — यदि कोई ब्राह्मण या वैश्य या कोई अन्य (जात-पात का) व्यक्ति हिन्दुओं के धर्म में से, हानि और लाभ को समझे बिना, अथवा किसी मनुष्य के कहने-सुनने से मुसलमान या ईसाई हो जावे और इनके विवाह या मृत्यु आदि रीति-रिवाज में अथवा खानपान में कुछ दिन तक सम्मिलित रहा हो और उसके पश्चात् यदि वह व्यक्ति अपने अपराधों की क्षमा का प्रार्थी हो तो उसको अपनी जात (बिरादरी) में सम्मिलित करा लेना चाहिये या नहीं?

उत्तर — निस्सन्देह, यदि वह अपने अपराधों की क्षमा का प्रार्थी हो तो समाज को चाहिये कि उसको अपनी बिरादरी (जात) में सम्मिलित कर ले।

प्रश्न — ईश्वर किस स्थान पर रहता है क्योंकि प्रकटरूप में तो उसका कोई रंग-रूप किसी की दृष्टि में आता नहीं?

उत्तर — नारायण सर्वव्यापक है अर्थात् सर्वत्र विद्यमान तथा (सबका) द्रष्टा है। जो कोई मनुष्य ज्ञान से अपने हृदय-दर्पण को शुद्ध रखता है, वह उसे देख सकता है। वस्तुतः तो अज्ञानियों की दृष्टि से वह दूर है।

प्रश्न—ब्रह्मा के चार मुँह थे या नहीं? और वेद को ब्रह्मा ने किसी कागज पर लिखा था या उसको वे पूरे के पूरे चारों वेद कण्ठस्थ थे?

उत्तर—ब्रह्मा के चार मुँह नहीं थे, प्रत्युत चारों वेद उसके मुख में थे (कण्ठस्थ थे)। यदि उसके चारों ओर चार मुँह होते तो उसको सोना और विश्राम करना तक भी अत्यन्त कठिन हो जाता। मूर्खों ने 'चारों' वेद कण्ठस्थ थे, इसके स्थान पर उसके चार मुँह कल्पित कर लिये।

प्रश्न—ईश्वर ने जो पृथिवी तथा आकाश, सूर्य तथा नक्षत्र, दिन तथा रात, मनुष्य तथा पशु और भिन्न-भिन्न प्रकार की, भिन्न-भिन्न वर्णों और आकृतियों की वस्तुएं बनायी हैं वे किसी सामग्री अथवा मसाले से बनायी हैं? या और किसी प्रकार से बनायी हैं?

उत्तर—नारायण को किसी मसाले की आवश्यकता नहीं है, वह तो स्वयं निर्विवाद रचयिता है और ये सारी वस्तुएं उसने माया अर्थात् प्रकृति से बनायी हैं।

प्रश्न—आपके कथन से विदित हुआ कि ब्रह्मा के चार मुख नहीं थे और न किसी का कोई वर्ण था परन्तु कर्म (व्यवसाय) के अनुसार वर्ण निश्चित हुए अर्थात् जो वेदशास्त्र पढ़कर उसके अनुसार उपदेश करता था वह ब्राह्मण, और जो बाहुबल से वीर और प्रजा का पालन करता था वह क्षत्रिय और जो व्यापार अथवा कृषि करता था वह वैश्य और जो मजदूरी चाकरी आदि करता था वह शूद्र कहलाता था। इस लेख के अनुसार यह बात अवश्य माननीय हो जाती है कि यदि किसी चमार या भङ्गी या कसाई ने विद्या प्राप्त कर ली हो तो वह भी पण्डित के तुल्य है। अब प्रश्न यह उठता है कि यदि वह चमार या भङ्गी या कसाई, जिसने विद्या प्राप्त की है, यह चाहे कि मैं किसी ब्राह्मण के घर में अपना विवाह करूं तो ब्राह्मण को भी यह उचित है या नहीं कि अपनी कन्या उसको विवाह दे?

उत्तर—यदि इन छोटे (अवर) व्यवसाय करने वालों में से किसी ने विद्या प्राप्त की हो तो वह वस्तुतः पण्डित के तुल्य है परन्तु इस कारण कि बहुत समय तक अवर व्यवसायी मनुष्यों में उसका पालन हुआ है आवश्यक है कि नीचता की गन्ध उसके मस्तिष्क में न जावे तो उसका ब्राह्मण की कन्या से सम्बन्ध होना

उचित नहीं।

प्रश्न—हिन्दुओं में विवाह के पश्चात् जो मुकलावे अर्थात् गौने की प्रथा प्रचलित है वह भी होनी चाहिये या नहीं क्योंकि और जातियों में यह प्रथा बिल्कुल नहीं है अर्थात् मुसलमान और ईसाई इस प्रथा को नहीं मानते।

उत्तर—यह निरा व्यर्थ है यदि वेद में युक्ति-युक्त कारणों से इस प्रथा का उल्लेख होता तो उसका करना आवश्यक हो सकता था। जिन जातियों में यह प्रथा नहीं है उनमें (इसके अभाव में) क्या बुराई है?

प्रश्न—दशहरा, होली, दिवाली आदि हिन्दुओं के त्योहारों में जो प्रथाएं अब प्रचलित हैं वे भी ठीक हैं या नहीं?

उत्तर—होली और दीवाली आदि उचित रूप में (मनाने) चाहियें।

प्रश्न—स्त्रियों को भी विद्या प्राप्त करनी चाहिये या नहीं?

उत्तर—स्त्रियों को विद्या अवश्य पढ़ानी चाहिये क्योंकि बिना विद्या के मनुष्य की बुद्धि पशु की बुद्धि के तुल्य है।

प्रश्न—हिन्दू लोग जो पण्डितों से जन्मपत्र लिखवाते हैं और पण्डित लोग मीन, तुला, कुम्भ, धन, मकर की राशियों का वृत्तान्त शास्त्रीय पत्रे से जानकर मंगल, सूर्य और शनि की खोटी दशा और हानि-लाभ बतलाते हैं जिनमें से प्रायः बातें तो ठीक निकलती हैं और बहुत सी अशुद्ध भी होती हैं इसका क्या कारण है?

उत्तर—यह जन्मपत्र नहीं प्रत्युत शोकपत्र है। पण्डित सब किसी को खोटी दशा के उपशमन के लिये अवश्य कुछ न कुछ बतलाता है। बुद्धिमान् व्यक्ति ऐसी बातों को नहीं माना करते।

प्रश्न—भारत के लोग स्त्रियों को इस प्रयोजन से कि वे व्यभिचारिणी न हों पर्दे में रखते हैं और ईसाई अपनी स्त्रियों को पर्दे में नहीं रखते और स्थान-स्थान पर भ्रमण कराते हैं। इतना होने पर भी भारत की स्त्रियां ईसाई स्त्रियों से अधिक व्यभिचारिणी दिखायी देती हैं (इसका क्या कारण है?)

उत्तर—स्त्रियों को पर्दे में रखना आजन्म कारागार में डालना है। जब उनको विद्या होगी वह स्वयं अपनी विद्या के द्वारा बुद्धिमती होकर प्रत्येक प्रकार के दोषों से रहित और पवित्र रह सकती हैं। पर्दे में रहने से मनोरक्षा नहीं कर सकतीं और

से बिना विद्याप्राप्ति के बुद्धिमती हो सकती है। और पर्दे में रखने की यह प्रथा इस प्रकार प्रचलित हुई कि जब इस देश के शासक मुसलमान हुए तो उन्होंने शासन की शक्ति से जिस किसी की बहू-बेटी को अच्छी रूपवती देखा उसको अपने शासनाधिकार से बलात् छीन लिया और दासी बना लिया। उस समय हिन्दू विवश थे इस कारण उनमें सामना करने की सामर्थ्य न थी। इसलिये अपने सम्मान की रक्षा के लिये उन्होंने अपनी स्त्रियों और बहू-बेटियों को घर से बाहर जाने का निषेध कर दिया। सो मूर्खों ने उसको पूर्वजों का आचार समझ लिया। देखो, मेमों अर्थात् अंग्रेजों की स्त्रियों को वे भारत की स्त्रियों की अपेक्षा कितनी साहसी, विद्यावती, बुद्धिमती और सदाचारिणी होती हैं।

—०—

[पूर्ण संख्या ८६]　　　**पत्र**

Loodhiana
16th April 1877[1]

My dear Baboo

I am extremely happy to read yours of the 12th inst. and am over [glad][2] to learn the delightful intention of Mr. Shamji to visit England for three ye[ars][2]. In my opinion this is the exampled opportunity for him [to][3] grasp it without fail which will prove mutually best indeed for both countrymen for their success in many ways. Your inducement to him in this respect will be considered as first rate and he will be crowned with high honour by all educated people both in England and India for his such a praiseworthy attempt when returned successfully. Will he take his wife with him? Why his father-in-law Sath Chhabil Dass does not coincide with and join your common opinion? Please give me further information again on this matter and I am very glad to express my best opinion this time that Mr. Shamji would not be considered a wise

१. वैशाख शुक्ल ३ सोमवार संवत् १९३४। मूल पत्र प्रो० धीरेन्द्र वर्मा जी के संग्रह में सुरक्षित है।

२. कोष्ठगत पाठ फटा हुआ है।

३. यह शब्द मूल में नहीं है।

man if he turned his foot backward from this illustrious undertaking

Now I will leave Loodhiana for Lahore on 19th of April 77 and will stop there in the garden of Ratun Chand Darhiwala Please send all your letters to the above address till further information

Accept my best ashirbad

Swami Dyanand Saraswat
Sd दयानन्द सरस्वती

To Baboo Harish Chander Chintamani Bombay [1]

[भाषानुवाद]

लुधियाना
१९ अप्रैल १८७७[2]

मेरे प्रिय बाबू

मैं आपका १२ ता० का पत्र पढ़कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और महाशय शाम जी को तीन वर्ष के लिये इङ्गलैण्ड जाने की इच्छा को जानकर असीम आनन्द हुआ। मेरी सम्मति में यह शुभ सुअवसर है जिससे अवश्य लाभ उठाना चाहिये, जो वस्तुतः यह विचार दोनों देशवासियों को कई प्रकार की सफलताओं के लिये सर्वोत्तम सिद्ध होगा। इस विषय में आपकी प्रेरणा सर्वोत्तम होगी और जब सफल होकर लौटेगा तो अपने इस प्रशंसनीय प्रयत्न के लिये इंगलैण्ड और भारत दोनों देशों की शिक्षित जनता द्वारा अत्यन्त सम्मानित होगा। क्या वे अपनी पत्नी को साथ ले जावेंगे। उनके श्वसुर सेठ छबीलदास जी इस सम्मति से सहमत और सहयोगी क्यों नहीं हैं? कृपया इस विषय में आगे मुझे सूचित करें और इस समय अपनी सम्मति व्यक्त करता हुआ मैं अत्यन्त प्रसन्न हूं कि शाम जी यदि इसे स्वीकार नहीं करेंगे तो यह उन की बुद्धिमत्ता न होगी।

मैं १८ एप्रिल ७७ को लुधियाना से लाहौर को प्रस्थान करूंगा और वहां रतनचन्द दाढ़ी वाला के बाग में ठहरूंगा। कृपया अगली सूचना

१. बा० हरिश्चन्द्र चिन्तामणि मुम्बई आर्यसमाज के प्रधान तथा वेदभाष्य के प्रबन्धक थे।

२. वैशाख शुक्ल ६, सोमवार, सं० १९३४।

मिलने तक सब पत्र उपर्युक्त पते पर भेजें।

मेरा शुभ आशीर्वाद स्वीकार करें।

स्वामी दयानन्दसरस्वती

सेवा में श्री बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि बम्बई।[1]

—०—

[पूर्ण संख्या ९०] निवाससूचना-विज्ञापन

विदित हो कि सं० १९३४ वैशाख महिने में देश पंजाब लुधियाना वा अमृतसर में स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी निवास करेंगे[2]

—०—

[पूर्ण संख्या ९१] पत्र-सारांश

[लेफ्टिनेण्ट गवर्नर, पंजाब, लाहौर]

[मैं आप से मिलने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।[3]]

१४ (?) मई[4] १८७७

—०—

[पूर्ण संख्या ९२] पत्र

Lahore
15th May 1877[5]

---

१. दे० पूर्व पृष्ठ टि १।

२. ऋ० भाष्य भूमिका अङ्क (९) संवत् १९३४। यह अङ्क फाल्गुन १९३३ (फरवरी १८७७) में छपा था। वेदभाष्यों के अङ्कों पर स्वा० दयानन्द के आगामी निवास काल वा स्थान की सूचना छापी थी। यहां उस प्रकार की केवल १० सूचनाएं ही सङ्कलित की हैं। क्योंकि आगे वेद-भाष्य के अङ्क बहुत विलम्ब से निकलने लगे। आगामी सूचना का महत्व नहीं रहा।

३. इस का निर्देश प० देवेन्द्रनाथ स० जी० च० पृष्ठ ४१४ में है।

४. उक्त जीवन चरित में १४ मई लिखा है, वह अशुद्ध है। लेफ्टिनेण्ट गवर्नर पंजाब के निजी मन्त्री मि० जे० ग्रिफिथ ने १२ मई के पत्र में श्री स्वामी जी को १४ मई को १० बजे मिलने की सूचना दी थी (देखो यही पत्र विज्ञापन संग्रह पृष्ठ १३४ की टि० २)। अतः यह पत्र ८-१० मई के लगभग लिखा गया होगा।

५. ज्येष्ठ शुक्ल २, मंगल, संवत् १९३४।

My dear pundit[1]

I duly received your both letters and understood all the particulars stated therein. The reason I could not answer you was that the books required by you were not ready in my hand to despatch and so I waited to receive them all the while till this date.

I have got now some of them however, though in very limited number and can send you a few copies whatever I have with me, on your informing me how many books of Suttiarth-Perkash and Aryabhi-Binoi[2] etc. will suffice you, to be sold for ready payment because I also stand in need of money in my visiting places and at least fifty copies are required for Lahore and Amritsar.

Please send me an estimate of books, necessarily required for your Sabha and then I will send you some copies indeed.

May Permatma bless your object of establishing Satya-Niroopan-sabha, which is expected to bring forth good fruit for the public. Hoping you are well with your friends. Accept my Asheerbad.

Yours well wisher
Pundit Swami Dayanand Sarusswatti
Sd दयानन्द सरस्वती

[भाषानुवाद]

लाहौर
१५ मई, १८७७[3]

मेरे प्रिय पण्डित !

मुझे आप के दोनों पत्र समय पर प्राप्त हुए और उन में लिखा सब समाचार विदित हुआ। मेरे उत्तर न देने का कारण यह है कि आप से

१. श्री स्वामी जी के मूल भाषा पत्र का अंग्रेजी में उल्था करने वाला प्रकट नहीं हुआ [illegible] मूल अंग्रेजी पत्र लखनऊ आ० स० के संग्रह में सुरक्षित है, यह पत्र पं० [illegible] वाजपेयी लखनऊ को लिखा गया था।

२. इस प्रकार के शब्द भी अंग्रेजी [illegible] की अशुद्ध मनोवृत्ति को प्रकट करता है।

३. ज्येष्ठ शुक्ला २, मंगल, सं० १९३४।

मांगी गई पुस्तकें मेरे पास भेजने को तय्यार न थी और इस लिए मैं आज तक उन की प्राप्ति की प्रतीक्षा में रहा।

मुझे अब उन में से कुछ मिल गई हैं। आप का पता आने पर कि सत्यार्थप्रकाश और आर्याभिविनय की कितनी पुस्तकें आप के लिये पर्याप्त होंगी, मैं उन्हीं में से कुछ प्रतियां आप को भेज सकता हूं। आप उन का मूल्य तत्काल प्राप्त करें, क्योंकि मुझे भी नये स्थानों में जाने के लिये धन की आवश्यकता है और न्यून से न्यून लाहौर और अमृतसर के लिये पचास प्रतियां चाहिये।

कृपया जितनी पुस्तकें आप की सभा के लिये अत्यावश्यक हैं, उन की गणना का अनुमान मुझे भेजें और तब निस्सन्देह मैं आप को कुछ प्रतियां भेजूंगा।

परमात्मा आप के 'सत्य-निरूपण-सभा' के स्थापन के उद्देश्य को फलीभूत करें। इससे जनता के बड़े लाभ की आशा है। आशा है आप स्वमित्रों सहित आनन्द से होंगे। मेरा आशीर्वाद स्वीकार करें।

आप का शुभचिन्तक
ह० दयानन्द सरस्वती

[पूर्ण संख्या ९३] निवास-सूचना-विज्ञापन

विदित हो कि सं० १९३४ ज्येष्ठ महीने में पंजाब देश के लाहौर नगर में पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती जी निवास करेंगे।[1]

[पूर्ण संख्या ९४] पत्र[2]

Lahore 6th June 1877

Dear Sir,

I am exceedingly glad to read yours of the 30th ult. which refreshed my soul very much. Your boldness in virtuous path is beyond measure and your exertions in Indian's welfare are

---

१ ऋ० भाष्यभूमिका, अङ्क (२) संवत् १९३४।

२ ज्येष्ठ दि० बदी १०, बुध संवत् १९३४। मूल पत्र श्री० धीरेन्द्र वर्मा जी के संग्रह में सुरक्षित है।

३ यह पत्र पं० गोपालरावहरि देशमुख जी को लिखा गया था।

unspeakable By the laws of nature you are deserving good reward from heaven, your prosperity will grow higher and higher rapidly

I am willing to follow your advice, and ready to translate white Yajur Veda as you wish [1] But in this case I will stand in need of two Pandits more and the Printing Charges will also get increased for the double issue of the work every month There-fore you can yourself think over the matter properly and inform me then of your final opinion on the matter so that I may employ two writers more and begin to translate the work with certainity, I have every reason to believe that the darkness of ignorant India—which has reduced the people to such low condition in which they seem and still carless will one day be banished away, if the sun of civilization shone over and the true knowledge of Vedas, diffused over the country

Noble and high spirited person like you and your companion only can be expected to undertake this mighty work for the public good and though such souls are few in number but their rarity is better than their abundance

I wish that Shamji Krishan Varma should come to me for some time before starting for Oxford, I wish to give him some of the most important hints on Vedas which are necessarily required for him He must not care for his expenses or anything else and I will furnish him with all necessities indeed. In my opinion his going to England is very usefull for him but let me know what is your opinion about the matters I will also write directly to him. I have got no copy of Maha Nirwana Tantra with me but it is procurable from Calcutta Hoping you are well Please let me know Shamji K Varma's answer about my enquiry and accept my Asheerbad

Yours well wishe

Pandit S Dayanand Saraswati

[भाषानुवाद]

लाहौर ६ जून १८७७[2]

---

१ इस पत्र से प्रतीत होता है कि ऋग्वेदभाष्य के मुद्रण के साथ-साथ शुक्लयजुर्वेदभाष्य का मुद्रण प० गोपालरावहरि देशमुख के प्रस्ताव से ही हुआ था।

२ ज्येष्ठ द्वि० वदि १०, बुधवार, १९३४।

प्रिय महोदय !

मैं आपका गत २० ता० का पत्र पढ़ कर बहुत प्रसन्न हुआ और मेरी आत्मा को शांति मिली। सन्मार्ग में आप की निर्भीकता अपरिमेय है। तथा आप के प्रयत्न भारत के कल्याण की दृष्टि से अकथनीय हैं। प्रकृति के नियमों के अनुसार आप पुरस्करणीय हैं, शीघ्र ही आप की समृद्धि उत्तरोत्तर बढ़ेगी।

मैं आपकी सम्मति के अनुसार चलने के लिये सहमत हूं और जैसी कि आपकी इच्छा है, शुक्ल यजुर्वेद का भाष्य करने को तैयार हूं[1]। किन्तु ऐसी स्थिति में मुझे दो अन्य पण्डितों की आवश्यकता होगी और प्रति-मास कार्य के द्विगुणित हो जाने से मुद्रण व्यय भी बढ़ जायगा। अतः आप स्वयं इस विषय पर उचित रूप से विचार कर लें और अपनी अन्तिम सम्मति से मुझे सूचित करें जिससे मैं दो लेखक और रख सकूं जिससे निश्चित रूप से भाष्य का कार्य आरम्भ हो जावे। मेरा पूर्ण विश्वास है कि यदि देश में सभ्यता का सूर्य चमके और वेदों का सत्य ज्ञान फैले तो अज्ञानी भारत का अन्धकार जिसने जनता को ऐसी अधोगति में डाल दिया है, एक दिन अवश्य दूर हो जायगा।

आप और आपके साथियों जैसे भद्र और उच्च भावना वाले पुरुषों के सहयोग से ही जनहित के लिए इस महान् कार्य को हाथ में लेने की आशा की जा सकती है और यद्यपि ऐसी आशाएं संख्या में कम हैं परन्तु उनकी न्यूनता उनकी अधिकता से अच्छी है।

मैं चाहता हूं कि ऑक्सफोर्ड के लिये प्रस्थान करने से पहले श्याम जी कृष्ण वर्मा थोड़े समय के लिए मेरे पास आ जावें। मैं वेदों के विषय में उनको कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संकेत देना चाहता हूं जो उनके लिये अत्यन्त आवश्यक हैं। उन्हें व्यय या अन्य किसी वस्तु की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। मैं उनकी सब आवश्यकताओं की पूर्ति कर दूंगा। मेरी सम्मति में उनका इंगलैण्ड जाना उनके लिये बहुत उपयोगी है, परन्तु इस विषय में आप अपनी सम्मति से मुझे सूचित करें। मैं सीधा उनके पास भी पत्र लिखूंगा। मेरे पास महानिर्वाण तन्त्र की कोई प्रति नहीं है, किन्तु यह कलकत्ता से प्राप्य है। आशा है आप कुशल होंगे। कृपया मेरे प्रश्नों के

---

१. देखो—पृष्ठ १२८, टि० १।

विषय में श्याम जी कृष्ण वर्मा के उत्तर से अवगत करावें और आशीर्वाद स्वीकार करें।

आप का शुभचिन्तक
पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या ९५] निवाससूचना-विज्ञापन

विदित हो कि सं० १९३४ दूसरे ज्येष्ठ महिने में पंजाब देश के लाहौर नगर में पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी निवास करेंगे।[1]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ९६] पत्र

Lahore 7 June 1877

My dear Ram Narain[2]

Your letter 3rd ultimo[3] is to hand. You need not our ... ... ondu Perashad any thing about.. ....its price & let him Keep ....if he likes it

Wait some time more for Shookul Surjoo Pershads answer, from whom I have received a letter this morning. He wishes to send me some money for purchasing Punjabs woollen cloth for him & perhaps he will also include the price of books in his money order. I have replied him today. Hoping you are well with your uncle Pt Soonder Lall.

My asheerbad to you all Yours well-wisher
Pandit Swami Dayanand Sarusswatti
सरस्वती

[भाषानुवाद]

प्रिय रामनारायण, लाहौर, ७ जून १८७७

आपका ३ तारीख[3] का पत्र हस्तगत हुआ है। आपको किसी बात की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है ······ प्रसाद ········इसका मूल्य और उसे रखने दें ·· यदि वह ऐसा चाहते हैं तो।

---

१. ऋ० भाष्य भूमिका, अङ्क (३) संवत् १९३४।

२. यह रामनारायण को भेजे पत्र की प्रतिलिपि है, जो परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान है।

३. यह पत्र हमें प्राप्त नहीं हुआ।

शुक्ल सरजूप्रसाद के उत्तर की कुछ समय और प्रतीक्षा करें। उनका आज प्रातः एक पत्र मुझे मिला है। वे मुझे कुछ रुपये पंजाब से उनके लिये गर्म कपड़े ख़रीदने के लिये भेजेंगे, शायद वे पुस्तकों का मूल्य भी अपने मनीआर्डर में जोड़ दें। मैंने आज उन्हें उत्तर भिजवा दिया है। आशा है आप तथा आपके चाचा पं० सुन्दरलाल ठीक होंगे।

मेरा आप सबको आशीर्वाद

आपका शुभेच्छु
पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती
(दयानन्द सरस्वती)

—:o:—

[पूर्ण संख्या ९७] पत्र

Lahore
8th June 1877[1]

My dear Pandit[2]

Please let me know whether you require some more copies of Sanskar-Bidhi or Suttiarth-Parkash for your Sabha as you requested once before Have you recovered the price of twenty Sanskar-Bidhis and have you sold all of them to the people ?

The other books are not ready with me but when come to hand, you will be informed at once Successful lectures are going on here every day and with good consequence Hoping you are well with your children Accept my Asheerbad.

Yours well wisher
Pundit Swami Dayanand Sarasswatti
Sd/दयानन्द सरस्वती

[भाषानुवाद]

लाहौर
८ जून १८७७[1]

मेरे प्रिय पण्डित ![2]

कृपया मुझे बताएं कि जैसा आप ने पूर्व एक बार लिखा था, क्या आप

---

१. ज्येष्ठ द्वि० बदी १२, शुक्र संवत् १९३४।

२ पण्डित रामाधार वाजपेयी को लिखा गया यह मूल पत्र लखनऊ आर्यसमाज के संग्रह में सुरक्षित है।

अपनी सभा के लिये संस्कारविधि या सत्यार्थप्रकाश की कुछ और प्रतियां चाहते हैं ? क्या आपने बीस संस्कारविधियों का मूल्य प्राप्त कर लिया है और क्या आप ने वे सब लोगों को बेच दी हैं ?

दूसरे पुस्तक मेरे पास तय्यार नहीं हैं, पर जब आ जायेंगे, तो आप को तत्काल सूचना दी जायगी। यहां प्रति दिन व्याख्यान बड़ी सफलता से हो रहे हैं। उनका परिणाम अच्छा होगा। आशा है आप स्वसन्तान सहित अच्छे हैं। मेरा आशीर्वाद स्वीकार करें।

आप का शुभचिन्तक
ह० दयानन्द सरस्वती

— ०, —

[पूर्ण संख्या ९८] पत्र

My dear Baboo Umritsar 21st July 1877.[1]

Your letter of the 17th instant duly came to hand I was really glad to learn from it that by the mercy of Supreme Being you are in enjoyment of perfect health According to your request and wishes I herewith send a pattern of the Veda's monthly commentaries also a copy of prospectus of the same for your information. The subscription for the current year has been fixed Rs. 4-8-0 only including postage, but for the future years, the amount of subscription will be increased or decreased according to the size of the work I'll be very glad to inform you now and then all about my gradual progress in my undertakings and regular movement from place to place without fail. Hoping you are well and rejoicing. Please accept my best asheerbad I have intended to stop at Umritsur up to the end of August, and have arrived here since the 12th inst. from Lahore.[2]

Your well wisher
Pundit Swami Dayanand Sarusswatti
Sd दयानन्द सरस्वती

---

१ आषाढ़ शुक्ल ११ शनि संवत् १९३४।

२ पं० लेखरामकृत उर्दू जीवन चरित पृ० ३२१ (हिन्दी सं० ३६१) और देवेन्द्र बाबू तथा पं० घासीराम कृत जीवन चरित पृ० ४२१ पर लिखा है कि श्री स्वामी जी ५ जुलाई को अमृतसर पहुंचे। इस पत्र से ज्ञात होता है कि श्री स्वामी जी १२ जुलाई को अमृतसर पहुंचे।

P. S.

Address me Umritsur in the garden of Mohmed Jan Raees of the station.

Five parts for the five past months have already been published up to the end of June and the year for the work commences from February 1877.[1]

To.

Baboo Deena Nauth Gangooly.[2]

Darjeeling.

[भाषानुवाद]

अमृतसर २१ जुलाई १८७७[3]

मेरे प्रिय बाबू[1]

आपका १७ ता० का पत्र ठीक समय पर हस्तगत हुआ। मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि परमेश्वर की कृपा से आप पूर्ण स्वस्थ हैं। आपकी प्रार्थना और इच्छा के अनुसार मैं इसके साथ वेद के मासिक भाष्य का नमूना और उसके नियमों की एक प्रति आपके सूचनार्थ भेज रहा हूं।

---

१ श्री देवेन्द्र बाबू के संग्रह में यह मूल पत्र विद्यमान था। म० मामराज अक्तूबर सन् १९२६ में यह मूल पत्र प० घासीराम जी से लाये थे। हम ने उसी से इस की प्रतिलिपि स्वयं की थी। मूल पत्र अब हमारे संग्रह में संख्या ४ पर सुरक्षित है। इस पत्र के विषय में दीनानाथ गांगोली ने बंगला में जो पत्र लिखकर साथ में भेजा था, उस का भाव इस प्रकार है

श्री-श्री दुर्गा सहाय। नमस्कार के पश्चात् निवेदन है कि दयानन्द सरस्वती महाशय का सिर्फ एक पत्र मिला जो भेज रहा हूं। अवश्य उन्होंने किसी दूसरे आदमी से लिखवा लिया होगा। इस में उन के हस्ताक्षर मौजूद हैं। आशा करता हूं आप भी अच्छे होंगे। ता० २४ पौष १३०२ (बंगाली सं०) दीनानाथ गांगोली।

२. बाबू दीनानाथ का पूरा पता ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका प्रथमावृत्ति अङ्क ६, संवत् १९६४ के हरे रंग के अन्तिम पृष्ठ पर ग्राहक संख्या ४९५ पर इस प्रकार है—इंजिनियर इन चीफ आफिस एन० बी० स्टेट रेलवे। सैदपुर, वाया [Via] राजमहल और पार्वतीपुर।

३ आषाढ़ शुक्ल ११ शनिवार संवत् १९३४। पृष्ठ १३२ की टि० २ तथा इसी पृष्ठ की टि० १, २ भी देखें।

चालू वर्ष के लिए चन्दा डाक व्यय सहित केवल ४ रु० ८ आ० निश्चित किया गया है, किन्तु आगामी वर्षों के लिए पत्रिका के आकार के अनुसार चन्दे की रकम घटा या बढ़ा दी जायगी। मैं आपको अपने कार्य की क्रमशः वृद्धि तथा अपने नियमित पर्यटन के विषय में समय समय पर अवश्य सूचित करता रहूंगा। मैं आशा करता हूं कि आप स्वस्थ और आनन्दित होंगे। कृपया मेरा शुभ आशीर्वाद स्वीकार करें। मैंने अगस्त के अन्त तक अमृतसर में ठहरने का विचार किया है। और इसी मास की १२ ता० को लाहौर से यहां पहुंचा हूं।

आपका शुभचिन्तक,

ह० दयानन्द सरस्वती

पुनश्च—

मेरा पता—शहर के रईस मुहम्मद जान का बगीचा अमृतसर। जून के अन्त तक गत ५ महिनों के पांच भाग प्रकाशित हो चुके हैं और पत्रिका का वर्षारम्भ फरवरी १८७७ से होता है।

सेवा में—बाबू दीनानाथ गांगोली, दार्जिलिंग।

—:०—

[पूर्ण संख्या ९९] पत्र-सारांश

[पञ्जाब सरकार, लाहौर]

मैं अपने वेदभाष्य के नमूने के रूप में ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका और वेदभाष्य का नमूना पत्र के साथ भेज रहा हूं। पञ्जाब सरकार इसमें सहायता करे और इसे शिक्षाविभाग के कालेजों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित करे।[1]

—:०:—

[पूर्ण संख्या १००] पत्र

[वेदभाष्य सम्बन्धी पत्र]

मन्त्री आर्य समाज लाहौर की ओर से[2]

---

१ यह पत्र सारांश प० लेखरामकृत जीवन चरित हिन्दी स० पृष्ठ ८२८ पर निर्दिष्ट सूचना के अनुसार बनाया है। यह पत्र १४ मई के पश्चात् लिखा गया था। द्रष्टव्य इसी पृष्ठ की टि० २।

२ १४ मई १८७७ सोमवार को लगभग १० बजे श्री स्वामी जी पञ्जाब के लेफटिनेंण्ट गवर्नर से मिले। देखो लेफटिनेंण्ट गवर्नर के निजी

डाक्टर जी. डब्ल्यु. लाइटनर एम. ए. बार ऐट. ला
रजिस्ट्रार पञ्जाब यूनिवर्सिटी कालेज,
सिमला को

श्रीमन् !

पञ्जाब सरकार ने आपके यूनिवर्सिटी कालेज की सैनेट को पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्य के गुणों को जानने के लिये एक पत्र भेजा था। उसका परिणाम जानने के लिये दक्षिण में मुम्बई और पूना की, पश्चिमोत्तर प्रान्त में मुरादाबाद और शाहजहांपुर की और पञ्जाब में लाहौर और अमृतसर की आर्य समाजें अत्यधिक उत्सुक थीं। ज्यूंही मैसर्ज ग्रिफिथ और टानि तथा लाहौर के कुछ पण्डितों की दी हुई सम्मतियां प्रकाश में आईं, तभी आर्य समाज लाहौर ने, अभिमानी समझे जाने के भय

मन्त्री मि० जे० ग्रिफिथ का १२ मई का श्री स्वामी जी के नाम का पत्र (यह पत्र हमें प्राप्त नहीं हुआ)। उसी दिन गवर्नर से वार्तालाप के अनन्तर स्वामी जी ने अपने वेदभाष्य के सहायतार्थ पञ्जाब सरकार को एक पत्र लिखा था। पत्र के साथ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका और वेदभाष्य का नमूना भी भेजा गया था।

पञ्जाब सरकार ने ये ग्रन्थ सम्मति के लिए यूनिवर्सिटी कालेज की सैनेट के पास भेज दिए। तब पञ्जाब यूनिवर्सिटी कालेज के रजिस्ट्रार ने स्वामी जी के भाष्य पर कुछ भारतीय और कुछ अंग्रेज अध्यापकों की सम्मतियां मगाईं। वे सम्मतियां स्वभावत: श्री स्वामी जी के विपरीत थीं। उन सम्मतियों की आलोचना करने वाला यह उपरिलिखित पत्र जो अंग्रेजी से हमारे द्वारा भाषा में किया गया है लाहौर समाज की ओर से रजिस्ट्रार महोदय को लिखा गया। इस पत्र के साथ श्री स्वामी जी का लिखा हुआ उत्तर भाषा में भी था। उसका भावानुवाद भी अंग्रेजी में भेजा गया। वह आगे पृष्ठ संख्या १०१ पर छपा है।

यह पत्र प० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित पृष्ठ ८०२—८०५ पर (हिन्दी सं० ८३८) छपा है। हमने यह भाषानुवाद मूल अंग्रेजी पत्र से किया है। वह मूल पत्र निम्नलिखित पुस्तक मे छपा है—Essays on Swami Dayanand Saraswati and the Arya Samaj, compiled and Edited by Lala Jiwan Das Pensioner, Lahore, 1902 यह पुस्तक हमारे सग्रह में सुरक्षित है।

में पड़कर भी, अपना यह कर्त्तव्य समझा कि आप को ऐसी सूचना दी जाए, जैसी इसकी सम्मति में, सैनेट ऐसी विद्वत् सभा को अधिक ठीक और परिपक्व निर्णय पर पहुंचने के योग्य बना दे। वह विद्वत्सभा वह सब कुछ सुन ले, जो उस भावी कार्य के अनुकूल या विरुद्ध कहा जा सकता है।

स्वामी दयानन्द ने स्वयं भी इस विषय पर एक लेख लिखा है। समाज उसे स्वामी दयानन्द सरस्वती के आलोचकों के समस्त आक्षेपों का सन्तोषदायक उत्तर समझता है। वह मूल लेख भी साथ ही भेजा जाता है।[1]

प्रतीत होता है कि महाभारत-काल से पहले, जिसे यूरोपियन काल-गणना के अनुसार तथा बहुत न्यून गिनती से भी ईसा के संवत् से ६०० या ७०० वर्ष पहले सरलता से धरा जा सकता है, भारत में वेदों का पठन-पाठन नियम से होता था और उन पर भाष्य रचे जाते थे।[2] उस समय ऐसे गुरुकुल वा विद्यालय थे जिन में केवल वेद ही अध्ययनाध्यापन में आते थे, और भाष्य, कोष तथा व्याकरण लिखे जाते थे। ये ग्रन्थ इस लिये रचे जाते थे कि वेद मन्त्रों का व्याख्यान और स्पष्टीकरण हो। इन में से कई ग्रन्थ काल के अनेक विनाशों के होने पर भी हम तक पहुंच पाए हैं। ये ग्रन्थ यद्यपि अलभ्य हैं, पर सर्वथा अप्राप्य नहीं हुए। इनमें सब से अग्रणी ब्राह्मण, निरुक्त, निघण्टु और पाणिनि का व्याकरण आदि हैं। अत एव यही ग्रन्थ वेदों के सब से पुरातन और विश्वसनीय भाष्य और व्याकरण हैं। क्योंकि जब महाभारत का महासंग्राम हुआ तो उसने हिन्दू समाज को उसकी जड़ तक हिला दिया। उस समय अध्ययन की अपेक्षा लोगों को अपने प्राणों की चिन्ता अधिक थी। उस युद्ध में सारा उत्तर भारत एक अथवा दूसरे पक्ष की ओर हुआ।

सब न केवल युद्ध के काल प्रत्युत उस के शताब्दियों पश्चात् वेद घोर लुप्तावस्था में रहे। अधिक शान्तिप्रद कालों के लौटने पर वैदिक विद्या पुनर्जीवित हुई। नए विद्यालय उठे और नए भाष्य निकल पड़े। इन्होंने पुराने ऋषियों की व्याख्याओं को

१. यह पूर्णसंख्या १०१ पर छपा है।

२. अर्थात् ब्राह्मण ग्रन्थ रूप भाष्य।

तिलाञ्जलि दी और अपने युग की प्रवृत्तियों के अधिक अनुकूल व्याख्याएं कीं। तथापि इस से निकृष्ट समय भी आने वाला था। बौद्ध धर्म भारत में सर्वोपरि हो गया। वेदों के विद्वान् पकड़ और मारे जाते थे। उन की धार्मिक पुस्तकें जलाई जाती थीं और नष्ट की जाती थीं। ब्राह्मणों ने अभी बौद्धों को देश से निकाला ही था, अभी उन्होंने अपना प्रभुत्व पुनः प्राप्त किया ही था जब उन्हें एक अधिक भयानक शत्रु से सामना करना पड़ा। महाभारत के युद्ध ने और बौद्ध धर्म के विस्तार ने जो बात आंशिक रूप में की थी, देश पर मुसलमानों के अधिकार ने वह सर्वथा पूर्ण कर दी। सारी विद्या, सारा वाङ्मय और सारी सच्ची वैदिक विद्वत्ता समाप्त हो गई। इन्हीं उत्तर समयों में सायण, महीधर, उव्वट और रावण[1] के भाष्य हुए। इन से लाभ के स्थान में हानि अधिक हुई। सर्व साधारण लोगों पर इनके भाष्यों का इतना प्रभाव हो गया है कि पुराने भाष्यों को निरर्थक समझा जाता है और उन्हें कभी ही कोई देखता है।

तथापि कुछ दूरी पर एक उज्ज्वल भविष्य होने वाला था। [ईसा की] गत शताब्दी के अन्तिम दिनों में संस्कृत भाषा और

---

१. यह वेदभाष्यकार रावण दाक्षिणात्य पण्डित था (लङ्केश नहीं)। रावणकृत ऋग्वेद के पदपाठ का सम्पूर्ण हस्तलेख फर्रुखाबाद-निवासी पं० निर्मलदेव के घर में विद्यमान था। उस में से ७वें अष्टक का पदपाठ, जिस के अन्त में साक्षात् रावण का नाम और लिपिकाल 'सं० १६२७ आषाढ़ कृष्णा १३ मंगलवार' निर्दिष्ट था को ३ मार्च सन् १६२७ में महाशय मामराज जी ने प्राप्त किया और पं० भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर (डी०ए०वी० कालेज लाहौर के लालचन्द पुस्तकालय के अध्यक्ष) को दिया था। उसे डा० श्री लक्ष्मणस्वरूप अध्यक्ष ओरियण्टल कालेज लाहौर ने उस की फोटो कापी कराने के लिये पं० भगवद्दत्त से लिया। डा० स्वरूप ने फोटो कापी कराकर पंजाब विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में रख दिया। मूल हस्तलेख उन से खोया गया। फोटो कापी भी पाकिस्तान में रह गई। रावण का यजुर्वेद का भाष्य पं० रघुनन्दन मिश्र पुराना शहर, मोहल्ला खतराना, इटावा के घर में था, ऐसी मामराज जी ने सूचना दी थी। रावण सायण महीधर उव्वट आदि भाष्यों के लिये पं० भगवद्दत्तकृत 'वैदिक वाङ्मय का इतिहास' का 'वेदों के भाष्यकार' नामक भाग देखें।

वाङ्मय ने कोलब्रुक, जोन्स और कारी (carıy) ऐसे प्रसिद्ध विद्वानों के ध्यान को पुन अपनी ओर खेंचा । उनके दिए धक्के ने भाषा-विज्ञान में ही आश्चर्य नहीं किया, बाप्प, बर्नफ श्लेगल, विलसन, वेबर और मैक्समूलर सदृश चमकते हुए प्राच्य विद्या-विशारदों की एक विशेष पंक्ति को ही उत्पन्न नहीं किया, और हमें एक राजेन्द्रपाल मित्र ही नहीं दिया, परन्तु हम आशा करते हैं, वह धक्का अवश्य ही स्वामी दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्य के रूप में परिणत होगा । परन्तु इस बात का बड़ा शोक है कि योरोपियन विद्वानों को अपनी अत्यधिक सामग्री के लिये एतद्देशीय पण्डितों पर आश्रित रहना पड़ता है । वे पण्डित ऐसे हैं जिन का अधिक से अधिक ज्ञान भी गहरा नहीं है । और इन में से भी जो सब से अधिक ज्ञानवान् हैं, सायण और महीधर से अधिक बड़े नाम नहीं जानते । यही कारण है कि वैदिक विद्वत्ता ने अपेक्षाकृत धीमी उन्नति की है और योरोप में वेदों की शिक्षा के सम्बन्ध में अशुद्ध विचार फैले हुए हैं।

प्रति वर्ष, प्रति मास और दिन दिन हमारे महान् देश के प्राचीन साहित्य और सभ्यता पर नि स्सन्देह अधिक प्रकाश पड रहा है । यद्यपि इस साहित्य के लिये योरोप में प्राच्य-विद्या के विद्वानों के सम्मिलित यत्नों द्वारा बहुत कुछ पहले ही किया गया है, पन्तु इससे भी अधिक अभी किया जाना शेष है । हमें विश्वास है, एक समय आयेगा जब उपस्थित वेदभाष्य वैदिक विद्वत्ता के प्रासाद का मूलाधार समझा जायगा । वेदों की उलटी व्याख्या करने वाले भाष्यकारों द्वारा योरोपियन विद्वान् जिस प्रकार उलटा समझे हैं, उससे यह सर्वथा आश्चर्य नहीं होता कि वे कुछ काल के लिए इस विचार की अवहेलना करें कि वेद एक ही सद्-ब्रह्म की उपासना सिखाते हैं । परन्तु हमारी धारणा है कि स्वामी दयानन्द ने जो धक्का अब दिया है, वह अधिक गम्भीर अन्वेषण को प्रोत्साहन देगा और सत्य को प्रकाश में लायगा । तथापि इस देश के पण्डितों की अपेक्षा योरोपियन विद्वानों से अधिक आशाएं की जाती हैं । पण्डितों का यह स्वार्थ है कि जब तक वे कर सकें तब तक मूर्तिपूजा और उसकी विधियों को स्थिर रक्खें । समाज इस समय ऐसी ही आशा कर सकता है कि बढ़ता हुआ प्रकाश

किसी दिन अन्धकार को दूर करेगा और सब को सचेत करेगा।

योरोप में वैदिक विद्वत्ता सम्प्रति भी थोड़ी है, इसके अधिक प्रमाण अपेक्षित नहीं। योरोप के सब से बड़े वैदिक विद्वान् दृढ़ता से कहते हैं कि अब भी अनेक मन्त्र हैं कि जिनका कोई अर्थ नहीं निकलता। योरोप में अब तक जितना हुआ है वह शब्दों के अर्थों का अनुमान मात्र करने से अधिक नहीं है। इन से कोई सुसम्बद्ध विचार (मन्त्रों से) नहीं निकाले जा सकते। योरोप के सात प्रमुख प्राच्य-विद्या-विशारदों के एक मन्त्र के निम्नलिखित अनुवाद, जो मूलार्थ से अत्यधिक भिन्न हैं, उच्चस्वर से प्रमाणित करते हैं कि योरोप में वेदार्थ-ज्ञान अभी स्थूल रूप में ही है।

उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत।
दधाना इन्द्र इद् दुवः ॥५॥
उत नः सुभगां अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥६॥[1]

देखो ऋग्वेद संहिता की मैक्समूलर की भूमिका पृ० २२-२४।

१ चाहे हमारे शत्रु कहते हैं, किसी और स्थान को चले जाओ तुम जो केवल इन्द्र की पूजा करते हो

२ अथवा चाहे हे बलशालिन्, सारे लोग हमें भगवान् कहें, हम सदा इन्द्र की रक्षा में रहें।

इन मन्त्रों के सामान्य भाव के सम्बन्ध में मैंने विचारा कि कोई सन्देह ही नहीं हो सकता। यद्यपि इस में एक शब्द अर्थात् '**अरिः**' व्याख्या योग्य है। फिर भी अनेक प्रकार की व्याख्यायें, जो विविध विद्वानों ने की हैं, विलक्षण है। प्रथम यदि हम **सायण** को देखें, तो वह अर्थ करता है—

१ हमारे पुरोहित इन्द्र की स्तुति करें। हे शत्रुओ, इस स्थान से चले जाओ और दूसरे स्थान से भी। हमारे पुरोहित (इन्द्र की स्तुति करें) वही जो सदा इन्द्र की स्तुति करते रहते हैं।

२. हे शत्रुओं के नाशक, शत्रु हमें धनवान् कहें, कितने अधिक मित्र लोग! हम इन्द्र की प्रसन्नता में हों।

प्रोफेसर **विलसन** ने सायण का पूरा अनुकरण नहीं किया। परन्तु उस ने अनुवाद किया—

१. ऋग्वेद १।४।५,६॥

१ हमारा पुरोहित उत्सुकता से उस की स्तुति करता हुआ बोले, ऐ गालियां निकालने वालो यहां से चले जाओ और प्रत्येक दूसरे स्थान से (जहां वह पूजा जाता है)।

२ हे शत्रुओं के नाशक, हमारे शत्रु कहें कि हम समृद्ध हैं। लोग हमें (बधाई दें)। हम सदा उस आनन्द में वास करें जो इन्द्र की (अनुकूलता से मिलता है)।

लेंगलाएस ने अनुवाद किया— ......[1]

स्टीवन्सन ने अनुवाद किया—

१ इन्द्र की स्तुति में सब लोग पुन. सम्मिलित हो जायें। तुम दुष्ट और घृणा करने वाले सब यहां से चले जाओ और प्रत्येक दूसरे स्थान से, जब कि हम इन्द्र सम्बन्धी कृत्य को करते हैं।

२ हे शत्रु-नाशक (तेरी कृपा से) हमारे शत्रु भी हमारे साथ जो हम धनों के स्वामी हैं, शान्ति से बोलें। तब क्या आश्चर्य है कि यदि दूसरे आदमी ऐसा करते हैं। हम सदा उस आनन्द को भोगें, जो इन्द्र के आशीर्वाद से उपजता है।

प्रोफेसर **बेनफी** अनुवाद करता है—

१ और घृणा करने वाले कहें, वे हर एक दूसरे से अस्वीकृत किये गये हैं, अत. वे इन्द्र का उत्सव करते हैं।

२ और शत्रु और देश हमें प्रसन्न घोषित करें, हे नाशक यदि इन्द्र की रक्षा में हैं।

प्रोफेसर राथ ने 'अन्यन्तः' का ठीक अर्थ लिया है अर्थात् भिन्न स्थान को। और इस लिये उसने उस वचन का यही अर्थ किया होगा किसी दूसरे स्थान को गति करो अर्थात् उसी अर्थ में, जैसा भाव मैंने लिया है तथापि कुछ काल पश्चात् S. V. ar उसने अपने आप को ठीक किया, और उन्हीं शब्दों का यह अनुवाद प्रस्ताविक किया "तुम किसी अन्य पदार्थ को भुला दो।"

प्रोफेसर **बोल्सेनसन** (ओरियण्ट एण्ड आक्सिडेण्ट वाल्यूम १, पृ० ४६०) ने किसी सीमा तक प्रोफेसर राथ के दूसरे अनुवाद का अनुसरण किया और प्रोफेसर बेनफी के अनुवाद को ठीक न समझ कर यह दिखाने का यत्न किया कि "वह अन्य पदार्थ जो भुलाया गया है" कुछ अनिश्चित पदार्थ नहीं है, परन्तु इन्द्र के

१. लैटिन भाषा में होने के कारण इस का अनुवाद नहीं दिया गया।

अतिरिक्त दूसरे सारे देवताओं की पूजा है ।

यह है वेदार्थ की [योरुप में] अनिश्चित अवस्था, जिसने प्रोफेसर मैक्समूलर को ऋग्वेद संहिता के प्राक्कथन में यह लिखने पर विवश किया है कि उसका अनुवाद अनेक स्थानों में शुद्धि योग्य है और शीघ्र या कालान्तर में उसका स्थान एक नये अनुवाद को लेना पड़ेगा ।

और कि भारत में वैदिक विद्वत्ता इस से भी अधिक स्वल्प है, यह इसी बात से जाना जा सकता है कि स्वामी दयानन्द के बार-बार के आह्वानों पर भी एक पण्डित भी अभी तक ऐसा प्रकट नहीं हुआ जो वेदों से यह सिद्ध करे कि उन में मूर्ति-पूजा पाई जाती है, यद्यपि ये सब इस बात को कह तो देते हैं । ऐसी अवस्था का यही कारण कहा जा सकता है कि इस देश में वेद अपितु उन के थोड़े-थोड़े भाग ही अर्थज्ञान के बिना कण्ठस्थमात्र किए जाते हैं । इस के विपरीत स्वामी दयानन्द न केवल अपनी वाग्मिता से, न केवल अपने तर्क के असाधारण बल से अपने श्रोता गणों के मनों में विश्वास उत्पन्न करा देता है, प्रत्युत अपने वेदभाष्य में शब्दों के इतिहास को खोलता है,[1] प्रत्येक बात की व्याख्या करता है कि जिस से वह अपने अर्थ पर पहुंचा है और शब्दों के जो अर्थ करता है उनकी पुष्टि में वेदों, ब्राह्मणों, निघण्टु और पाणिनि के व्याकरण से प्रमाण देता है । संक्षेप में वह मानते हैं कि अपनी महती विद्वत्ता की योग्यता से, अपनी धैर्य युक्त गवेषणा से, अपने काम के लिए असीम प्रेम के द्वारा वह मानव-पुस्तकालय के इस सब से पुराने ग्रन्थ में जीवन-प्राण का संचार कर रहा है । वह उन कठि-

१. इस का तात्पर्य यह है कि अमुक शब्द का अमुक अर्थ क्यों है ? इस रहस्य को ऋषि दयानन्द ने शब्दों के यौगिक अर्थ करके दर्शाया है । उसी की ओर यह संकेत है । अतिप्राचीन काल में संस्कृत के समस्त नाम पद यौगिक अर्थात् क्रियानिमित्तक ही माने जाते थे । शब्दों को रूढ मानने की कल्पना बहुत उत्तरकालीन है । विक्रम से कई शताब्दी पूर्व के काशकृत्स्न व्याकरण के रचयिता ने संस्कृत के पाचक याचक आदि सभी कृदन्त शब्दों को वृक्ष आदि के समान रूढ मान कर उनका प्रकृति प्रत्यय विभाग ही नहीं दर्शाया है । देखो हमारा संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, भाग २, पृष्ठ ११-१६, संवत् २०३० का संस्करण ।

नाइयों को प्रकट करता है, जिन्होंने अब तक उस [वेद] की स्वतन्त्र उन्नति को रोक रखा है। **यह भाषा विज्ञान की सामान्य रूप से और भारतीय भाषा-विज्ञान की विशेष रूप से अचिन्त्य सेवा कर रहा है।** उस के वेदभाष्य के एक हजार से ऊपर ग्राहक अब तक बन गए हैं। और ग्राहकों की संख्या प्रतिदिन उन्नति पर है। इन बातों का विचार करके और इस बात को जान कर, जैसा कि पंजाब सरकार और भारत में दूसरी प्रान्तीय सरकार जानती हैं कि वेदों ने भारतीय इतिहास के सब उत्तरवर्ती युगों पर कैसा प्रबल प्रभाव डाला है, और उन का भारतीय वाङ्मय की प्रत्येक शाखा के साथ कैसा घनिष्ठ सम्बन्ध है और उनके धार्मिक और सदाचार के विचारों ने भारतीय जाति के हृदयों में कितनी गहरी जड़ पकड़ी है, तथा उन के सनातन प्रमाणों से भारतीय जीवन के जनता-सम्बन्धी और व्यक्तिगत सब काम नियमित किए जाते हैं। यह सब जान कर समाज विश्वास रखता है कि सरकार ऐसे महाशयों की दी हुई सम्मतियों के अनुसार नहीं चलेगी कि जो अन्य गुणों के रखते हुए भी, समाज की नम्र दृष्टि में, वैदिक विद्वान् होने की प्रतिष्ठा नहीं रखते।

अन्तत समाज आज्ञा चाहता है कि उन मुख्य कारणों को संक्षेप से दोहराए कि जिन के आधार पर वह स्वामी दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्य को पंजाब सरकार द्वारा संरक्षकता चाहता है, और आशा प्रकट करता है कि सरकार देश की दूसरी सब प्रान्तीय सरकारों को प्रेरित करे कि वे भी एक महान् सुधारक और विद्वान् के इस पुण्य और परोपकारयुक्त उद्देश्य के साथ सम्मिलित हों।

(१) **कि भारतीय भाषा-विज्ञान यदि यह स्वाभाविक गति पर चले, तो अवश्य ही वेदों के स्वाध्याय से प्रारम्भ होगा।** अत उन के ज्ञान का प्रचार अत्यधिक अभीष्ट है।

(२) कि इन वेदभाष्य के प्रकाश ने गवेषणा का भाव उत्पन्न कर दिया है। इस का प्रोत्साहन देना श्रेष्ठ है।

(३) कि आशा की जाती है कि वेदों के सच्चे ज्ञान के प्रचार द्वारा हिन्दू मन मिथ्या विश्वास और गहरे गड़े हुए पक्षपात से मुक्त होगा।

(४) कि स्वामी दयानन्द का भाष्य उन सब से अधिक विश्वसनीय प्रमाणों पर समाधारित है कि जिन को योरोपीय विद्वान् भी प्रामाणिक स्वीकार करते हैं, परन्तु जिन्हें वे भी अभी तक पूर्णतया प्रयोग में नहीं लाए।

(५) कि वर्तमान परिस्थितियों में स्वार्थी ब्राह्मणों अथवा भ्रान्त समझने वाले योरोपियनों से निष्पक्ष सम्मतियों की आशा नहीं हो सकती।

अतः पूरा अवसर मिलना चाहिए।

लाहौर | मैं हूँ.................
२५ अगस्त १८७७ | जीवनदास[1]
| मन्त्री आर्यसमाज

—:o:—

[पूर्ण संख्या १०१] पत्र[2]

मुझे वकील हिन्द[3] और यूनीवर्स्टी कालिज पंजाब के [प्रकाशित][4] पत्रों से ज्ञात हुआ कि कई एक साहबों ने मद्रचित वेद-भाष्य पर प्रतिकूल अनुमति दी है। इस लिए मैं उनकी शंकाओं का उत्तर क्रम से निवेदन करता हूँ।

प्रथम उन शंकाओं का उत्तर है जो मिस्टर आर ग्रिफिथ एम

---

१ पं० लेखरामकृत उर्दू जीवन चरित पृ० ८०५ (हिन्दी सं० पृष्ठ ८३२) पर इसके स्थान में यह लिखा है "हम हैं जीवनदास या शारदाप्रसाद भट्टाचार्य" इत्यादि।

२. हमने यह पत्र दयानन्द दिग्विजयार्क, द्वितीयाङ्क पृ० ८२-८८ से लिया है। प्रतीत होता है दिग्विजयार्क के रचयिता पं० गोपाल शास्त्री ने इसका अंग्रेजी से ही भाषा में उलथा किया था। हमने इसकी अंग्रेजी अनुवाद से कुछ तुलना कर ली है। कहीं कहीं हमने अनुवाद में शोधन भी किया है। शोक है कि श्री स्वामी जी का मूल पत्र लाहौर आर्यसमाज की असावधानी के कारण नष्ट हो गया। यह पत्र १४ नवम्बर १८७७ के बाद लिखा गया था।

३ वकीले हिन्द समाचारपत्र'' ऐसा पाठ पं० लेखरामकृत जीवन चरित हिन्दी सं० पृष्ठ ८३२ पर है।

४. कोष्ठगत पाठ अंग्रेजी अनुवाद से लिया गया है।

ए. प्रिंसिपिल बनारस कालिज ने की है।

पांच हजार वर्ष के लगभग से वेद विद्या जाती रही। महाभारत से पहले इस देश में सब विद्या ठीक ठीक प्रचरित थी। परन्तु पीछे से पठन-पाठन के ग्रन्थ और रीति बिल्कुल बदल गई। तब से अब तक वही अशुद्ध प्रणाली प्रचरित है। यद्यपि कहीं-कहीं के लोग वेदादिक सत्य ग्रन्थों को कण्ठ कर लेते हैं परन्तु उसके शब्दार्थ को कोई भी नहीं जानता। न ऐसे कोई व्याकरणादिक ग्रन्थ अर्थ सहित पढ़ाये जाते हैं जिन से वेदों का अर्थ हो सके। आधुनिक जो महीधर आदि के बनाए हुए वेद-भाष्य देखने में आते हैं वे महाभ्रष्ट और अन्धकार के बढ़ाने वाले हैं। उनके देखने वालों को सद्वचित भाष्य ठीक समझ में नहीं आता। **मेरा भाष्य शुद्ध वेदार्थ-बोधक और प्राचीन भाष्यों के ठीक अनुकूल है। यह तभी समझ में आवेगा जब लोग प्राचीन भाष्यादिक ग्रन्थों की सहायता स्वीकार करेंगे।** मैंने प्रत्येक मन्त्र का अर्थ सत्य प्रतीत होने के अर्थ बहुप्राचीन आप्त व्याख्यानकारों का प्रमाण बहुत स्पष्ट पतेवार लिख दिया है। यदि ग्रिफिथ साहब ने प्राचीन भाष्य वा मेरे लिख प्रमाणों और उदाहरणों को पढ़ा होता तो कभी उन की ऐसी विरुद्ध सम्मति न होती जैसी कि उन्होंने हाल में दी है। उव्वट सायण महीधर रावण आदि के रचे हुए भाष्य प्राचीन भाष्यों से सर्वथा विपरीत हैं। केवल इन्हीं भाष्यों का उलथा अंग्रेजी में विलसन और मैक्समूलर आदि प्रोफेसरों ने किया है। इस लिए मैं इन के भाष्यों को भी शुद्ध और न्यायकारी नहीं कह सकता। इन्हीं ग्रन्थों के कारण ग्रिफिथ साहब आदि लोग भी सन्देह मार्ग में पड़े हैं और मुझ को यह कहकर दूषित करते हैं कि स्वामी जी ने अर्थ पलट कर अपने प्रयोजन के सिद्धार्थ दूसरे ही अर्थ नियत किये हैं। परन्तु उन का यह तर्क सर्वथा निर्मूल है। मैंने सर्वत्र ऐतरेय और शतपथ नामक ब्राह्मण ग्रन्थ और निरुक्त तथा पाणिनीय व्याकरणादिक सत्य ग्रन्थों का प्रमाण देकर प्रत्येक मन्त्र का सत्य-सत्य अर्थ लिखा है। यदि ग्रिफिथ साहिब उस को देखते तो कभी ऐसा न लिखते। विचार करता हूं कि उनने मेरा भाष्य बिना ही देखे भाले अपनी मनमानी अनुमति प्रकाशित कर दी है।

मैं नहीं समझ सकता हूं कि ग्रिफिथ साहब मेरा श्रम वृथा क्यों

समझते हैं, जब कि मेरे भाष्य के लेने वाले हजार से अधिक बड़े २ सत्पुरुष हैं और प्रत्यह नवीन जनों के निवेदन पत्र मेरी पुस्तक लेने के विषय में बराबर चले आते हैं। मेरे ग्राहकों में से बहुत अच्छे २ संस्कृतज्ञ और बहुतेरे अंग्रेजी और संस्कृत में पूरे पूरे विद्वान् हैं। ग्रिफिथ साहब का यह अंतिम लेख कि वेदों की ऋचाओं से बहुत से देवताओं के नाम प्रकाशित होते हैं सो उन की यह बात मुझ को तब प्यारी लगे और विद्वानों के समीप प्रामाणिक ठहरे जब वे उस मतलब की कोई ऋचा मुझ को लिख भेजे—

पूर्वलिखित की पुष्टि में निम्नलिखित उद्धरण दिये जाते हैं—

(a) ऐच० टी० कोलब्रुक रचित 'दी वेदाज' से[1]

---

१. यद्यपि वेदों को शीघ्र दृष्टि से देखने से देवताओं के नाम उतने दीख पड़ते हैं जितने कि स्तुति करनेवालों के हैं, परन्तु पुराने व्याख्यान ग्रन्थों के अनुसार कि जो ठीक आर्य धर्म के विषयक हैं वे अनेक नाम देवता वा मनुष्यों और वस्तुओं के नहीं ठहर सकते, अर्थात् वे सब तीन देवताओं ही के नाम से सम्बन्ध रखते हैं और फिर वे तीनों नामों की देवता भी पृथक्-पृथक् नहीं है अर्थात् वे तीनों नाम एक ही परमेश्वर के हैं। निघण्टु अर्थात् वेदों के शब्दकोष के अन्त में तीन नामावली देवताओं की हैं। उनमें से पहली में अग्नि के, दूसरी में वायु के, तीसरी में सूर्य के पर्यायवाची नाम हैं।

निरुक्त के अन्त भाग में जिस में केवल देवताओं का वृत्तान्त है, यह दो बार कथन किया गया है कि देवता केवल तीन हैं (तिस्र एव देवता.)। इन में अधिकतर अनुमान सिद्धान्त यह निकलता है कि केवल एक ही देवता है। यह बात वेद के अनेक वाक्यों से भी सिद्ध होती है और यही आशय निरुक्त और वेद के प्रमाण के अनुसार अति सुगम और संक्षेप रीति से ऋग्वेद के सूचीपत्र में वर्णन किया है। इससे यह निर्णय होता है कि कि आर्यों के पुराने धर्म मार्ग की पुस्तकें केवल एक ही ब्रह्म को गाती हैं और सूत्रों से भी ऐसा ही सिद्ध होता है।

---

* यहां एच टी कोलब्रुक का, जिसके उद्धरण का पाठ भाषान्तर कर के ऊपर दिया हुआ है, उसमें 'ऋग्वेद के सूचीपत्र' से तात्पर्य सम्भवत: कात्यायनकृत सर्वानुक्रमणी अथवा शौनकीय बृहद्देवता की ओर हो।

(b) चार्ल्स कोलमैन रचित "माईथालोजी आफ दी हिन्दूज" से[1]

(c) पादरी गैरट के अनूदित "भगवद्गीता" के परिशिष्ट से[2]

(d) मैक्समूलर रचित "हिस्टरी आफ ऐन्शण्ट संस्कृत लिटरेचर" पृ० ५६७ से[3]

ऋग्वेद में जो प्रथम मंत्र है उसमें अग्नि शब्द आया है। उसका उलथा सी. ऐच. टानी. साहब एम. ए प्रिन्सिपल प्रेसीडेन्सी कालिज कलकत्ता ने आग के अर्थ में अपने उस प्रथमोक्त ब्यान से किया है कि अग्नि भी एक पदार्थ प्रतिष्ठा का वेद में है, परन्तु अग्नि को तत्त्व मान कर किसी प्राचीन ऋषि मुनि ने पूजन वा आवाहन नहीं किया और अग्नि शब्द का जो स्वाभाविक अर्थ आग का है वह केवल उन वाक्यों में लिया जाता है जिन मे लौकिक सम्बन्धी बातें हैं परन्तु ऐसे वाक्यों मे जहां ईश्वर की स्तुति प्रार्थना

---

१. वेदों से ज्ञात होता है कि आर्य ऋषियो का धर्ममार्ग केवल एक बड़े ब्रह्म के पूजन और श्रद्धा वा भक्ति में था, जिस को वे सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ और सर्वव्यापक जानते थे और जिसके सम्बन्धी गुणों को वे अत्यन्त पूजनीय वाक्यों मे प्रगट करते थे और वे सम्बन्धित गुण उसकी तीन प्रकार की शक्तियां हैं। उनमें से प्रथम उत्पादक, दूसरी पालक, तीसरी संहारक नाम से वर्णन की जाती है।

२ इन अति सत्य ब्यानों से हमें पूर्ण विश्वास होता है कि चारों वेद एक ब्रह्म को गाते हैं, जो सर्वशक्तिमान् अनन्त चिरस्थायी स्वयभू ससार का द्योतक और पालक है। मैं इसके सग एक और ऋचा लिखता हू, जिससे एक ही ब्रह्म निश्चित होता है। इस से हम आपकी शका निवृत्ति करते हैं। जानिये कि आर्य लोग स्वाभाविक बुद्धि से सदैव अद्वैतसेवी अर्थात् केवल एक ईश्वर को ही मानते थे।

३ उसी उक्त ऋचा का एक चरण यह है, जिससे निस्सन्देह केवल एक ही ब्रह्म का निरूपण होता है। यद्यपि हम उसको अनेक नाम से आवाहन करते हैं। ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त १६४ की ४६ वीं ऋचा को देखो। स्पष्ट लिखा है कि उसी एक परब्रह्म को ज्ञानवान् इन्द्र मित्र वरुण और अग्नि के नाम से पुकारते है। कोई कहते हैं कि वह आकाश में सपक्ष गरुत्मान् है और कोई कोई बुद्धिमान् उसी के अग्नि यम मातरिश्वा आदि अनेक नाम मानते हैं।

निवेदन आदि का प्रसंग होता है वहां अग्नि शब्द का अर्थ परमेश्वर का घटित किया जाता है।[1] यह अर्थ कुछ मैंने मिथ्या कल्पित नहीं किया। इस प्रकार के युक्तार्थ ब्राह्मण और निरुक्त नामी ग्रन्थों में बराबर वर्णन हो आए हैं।

अन्त पर टानी साहब की जो सम्मति है कि मैंने जो भाष्य बनाया है वह इस कारण से रचा है कि सायण और अंग्रेजी उल्थाकारों के भाष्य कट जावें अर्थात् अशुद्ध ठहरें, सो इस विषय में मैं कभी दूषित नहीं हो सकता हूं। यदि सायण ने भूल की है और अंगरेजों ने उसको अपना मार्ग प्रदर्शक जान कर अंगीकार कर लिया तो भले ही करें, परन्तु मैं जान बूझ कर कभी भूल का काम नहीं कर सकता। परन्तु मिथ्या मत बहुत काल तक नहीं ठहर सकता, केवल सत्य ही ठहरता है और असत्य सत्यता के सम्मुख शीघ्र धुमैला हो जाता है।

पण्डित गुरुप्रसाद हेड पण्डित ओरियंटल कालेज लाहौर ने यह बात कह कर कि स्वामी जी के भाष्य में कोई अशुद्धि छापे की कहे सो नहीं है, मेरे प्रत्येक आशय को दूषित ठहराया है। तथापि मैं उन को धन्यवाद देता हूं। उनने मेरे भाष्य के छापने वाले का विश्वास माना, यह क्या थोडी बात है। परन्तु मैं कहता हूं कि उसका भी दोष वे मेरा ही जाने परन्तु थोडा मुंह खोलकर कहें तो कंकियत् खुले नहीं तो क्या जान पड़े। और जो वे मुझे दूसरे स्थल पर दोष लगाते हैं कि अपने ही पथ का प्रचार किया चाहता है सो मैं ऐसी बातों को सुन अति पश्चात्ताप से कहता और समझता हूं कि वे वेद विद्या से नितान्त अज्ञान हैं। यदि उन्होंने प्राचीन भाष्यों का अवलोकन किया होता तो कभी ऐसा न कहते।

और तीसरा कलंक जो वे मुझे यह लगाते हैं कि इन्द्र वृत्र[2] और त्वष्टा आदि शब्दों के अर्थ स्वामी जी ने अपनी ओर से गढ़े

---

१. तुलना करो सत्यार्थप्रकाश, प्रथम समुल्लास, पृष्ठ २०, पं० २२-२५, तथा पृष्ठ २१, पं० १ १६ तक (रा० ला० क० ट्रस्ट, आर्यसमाज शताब्दी संस्करण संवत् २०३२ का द्वितीय संस्करण)।

२. पूर्व मुद्रित पाठ 'मित्र' है। वह अशुद्ध है। इन्द्र और त्वष्टा के साथ वृत्र' पाठ ही युक्त है। द्र० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित्र भाग २ पृष्ठ ४१७ पर 'वृत्र' शुद्ध पाठ है।

हैं, सो उनकी इस शंका के उत्तर में मैं उनको 'वेदभाष्य के विज्ञापन'[1] का प्रमाण देता हूं और एक प्रति साथ ही इस उत्तर के ऐसी लगाये देता हूं, जिस में उन शब्दों का यथावत् वर्णन है। फिर भी इन सब बातों के परिणाम में मुझे निस्सन्देह हो यही कहना पड़ता है कि उन में पुरातन संस्कृत विद्या अत्यन्त ही कम है।

चौथा दोष जो वे मेरे व्याकरण में यह आरोपण करते हैं कि परस्मैपद के स्थान में आत्मनेपद लिखा है सो अब मैं इस बात का निश्चय कराने को कि स्वयं पण्डितजी व्याकरण का ज्ञान नहीं रखते। कैयट [के भाष्य प्रदीप] और नागेश, रामाश्रम आचार्य, अनुभूतिसरूप आचार्य आदि के ग्रन्थों के कई एक प्रामाणिक उदाहरण पृथक् लिखता हूं।[2] वे मेरे **विदधीमहि**[3] के प्रयोग को ठीक होना प्रकट[4] करते हैं **वदामहे**[5] के शुद्ध प्रयोग के लिये मैंने पाणिनीय व्याकरण के प्रथमाध्याय के तीसरे पाद के ४७ वें सूत्र का प्रमाण दिया है। और उन स्थलों की नकल भी हूबहू उन को भेज सकता हूं जिस से मेरा किया प्रयोग कैसा शुद्ध है यह प्रतीति यथेच्छ हो जावेगी। परन्तु बिना व्याकरण-बोध क्योंकर उनके समझ में आवे।

[यह प्रमाण मूल भाषा लेख के साथ नष्ट हो गये।]

पांचवीं शंका उनको मेरे एक छन्द[6] के प्रयोग पर उपस्थित हुई

---

१. यह विज्ञापन इसी ग्रन्थ में पूर्णसंख्या ७४ पर छपा है।

२. इससे आगे का कुछ पाठ दयानन्द दिग्विजयार्क में छूट गया है।

३. वेदानां यथार्थं भाष्यं वयं विदधीमहि—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, ईश्वरप्रार्थनाविषय पृ० ३, पं० २३, रामलाकट्रस०।

४. पूर्वमुद्रित पाठ 'प्रयोग को सर्वथा युक्त समझते हैं' अशुद्ध है। देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित्र भाग २ पृष्ठ ४१७ पर ऊपरवाला शुद्ध पाठ छपा है।

५. एवं प्राप्ते वदामहे—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका वेदोत्पत्तिविषय, पृष्ठ १४, पं० २६ रामलाकट्रस०।

६. सम्भवतः इसका संकेत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (पृष्ठ १) के 'प्रतिपद्यादित्यवारे' की ओर है। इसमें पञ्चम अक्षर 'दि' संयुक्ताक्षर परे रहने के कारण गुरु है। 'पञ्चमं लघु सर्वत्र' यह वृत्तरत्नाकर के नियम से विरुद्ध है। परन्तु यह नियम प्रायिक है। रामायण महाभारत मनुस्मृति

है। वह अत्यन्त हास्यजनक है। जो मैं उसका इस संक्षिप्त उत्तर में कुछ वर्णन करूं तो असार विस्तार होगा। रहा उनका समाधान सो उसके लिये पैङ्गल सूत्र और उसके भाष्यकार हलायुधभट्ट का एक स्पष्ट प्रमाण पृथक् लिखता हूं। देख शान्त होवें।

[वह प्रमाण मूल भाषा लेख के साथ ही नष्ट हो गया।]

ज्ञात होता है कि **पण्डित हृषीकेश** भट्टाचार्य द्वितीय पण्डित ओरियण्टल कालिज लाहौर सर्वत्र पण्डित गुरुप्रसाद जी के ही अनुगामी हुए हैं। इससे उनकी शंकाओं का उत्तर वही समझना चाहिए जो पीछे लिख आए हैं। **उपचक्रे**[1] शब्द में उनकी शंका एक पृथक् है। सो उन्हें यह बात सुझाने को कि मेरा प्रयोग[2] बहुत ही निर्मल है मैं उन्हें केवल पाणिनीय व्याकरण के प्रथमाध्याय के तीसरे पाद के ३० वें सूत्र का प्रमाण देता हूं। उसको देख तुष्ट होवें।

[वह प्रमाण मूल भाषा लेख के साथ ही नष्ट हो गया।]

अब रहे पण्डित भगवान दास असिस्टेण्ट प्रोफेसर संस्कृत गवर्नमेण्ट कालिज लाहौर। सो उनकी कोई नवीन शंका नहीं है। इस लिए जो मैंने ऊपर कहा वही बहुत है। वे भी तुष्ट होवें इति।

अन्त[3] में मुझे प्रतीत होता है कि इन विरुद्ध लेखों का सारा बल देश के विद्यालयों में मेरे वेदभाष्य के लगाए जाने के विपरीत है। परन्तु मेरे आलोचक भारी भूल कर रहे हैं। **मेरा वेदभाष्य महाभारत के पूर्व के भाष्यों के प्रमाणों को देने के कारण[4] और**

आदि प्राचीन ग्रन्थों में पञ्चमाक्षर गुरु बहुत्र उपलब्ध होता है।

१. यथा पिता स्वसन्तति··· सर्वमनुष्यार्थं वेदोपदेशमुपचक्रे। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका वेदोत्पत्तिविषय, पृष्ठ १६, पं० १५, रालाकट्रस०।

२. पूर्वमुद्रित 'अर्थ' पाठ है यह 'उपचक्रे' प्रयोग के प्रसंग में ठीक नहीं है। देवेन्द्रनाथ सं० जीवन चरित्र भाग २ पृष्ठ ४१७ पर शुद्ध पाठ है।

३ यहां से अन्त तक का पाठ दिग्विजयार्क में नहीं है। हमने इसका अंग्रेजी से अनुवाद किया है।

४. इसका तात्पर्य है कि कृष्ण द्वैपायन व्यास और उनके शिष्य प्रशिष्यों द्वारा जो शाखाप्रवचन हुआ था, वह महाभारतयुद्ध से पूर्व हुआ था।

योरोपीय विद्वानों के विचारों के विरुद्ध होने के कारण गवेषणा का एक ऐसा भाव उत्पन्न कर देगा कि जिस से सत्य प्रकट हो जायगा और हमारे विद्यालयों में सदाचार के भाव को उन्नत करेगा। और इसी कारण सरकार की संरक्षता का अधिकारी है।

—:०:—

[पूर्ण संख्या १०२] निवास-सूचना-विज्ञापन

विदित हो कि सं० १९३४ आधे आषाढ़ से श्रावण मास के अन्त पर्य्यन्त पञ्जाब देश के अमृतसर नगर में पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती जी निवास करेंगे।[1]

—:०:—

[पूर्ण संख्या १०३] पत्र

आर्य्यसमाज[2] के सब सभासदों को स्वामी जी का आशीर्वाद पहुंचे। आगे सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की कृपा से प्रतिदिन अमृतसर आर्य्य समाज का उत्साह वृद्धि को प्राप्त होता जाता है। १०० नियम का पुस्तक (आर्य्योद्देश्यरत्नमाला) भी आज कल छप के जिल्द बन्ध के तैयार हो जावेगा। पांच सौ पुस्तक लाहौर और पचास पुस्तक गुरुदासपुर को भेजे जावेंगे। और संवत् १९३४ भाद्र सुदी ६, गुरुवार ता० १३ सितम्बर सन् १८७७ प्रातःकाल 9½ की रेल में जालन्धर को जाना होगा, सो जानना। जो वेदभाष्य पर विरुद्ध सम्मति के उत्तर के पत्र[3] छपवाकर मुम्बई आदि में भेज दिये जावेंगे, तथा समाचार पत्रों में छपवा दिए जाएं तो बहुत अच्छी बात होगी। आगे आप लोगों की जैसी इच्छा हो वैसा कीजिएगा। सं० १९३४ मिति भाद्रपद सुदी ३, सोमवार, ता० १० सितम्बर सन् १८७७।[4]

दयानन्द सरस्वती

— ० —

---

१. ऋ० भाष्यभूमिका, अङ्क (४,५) संवत् १९३४।

२. आर्य्यसमाज लाहौर।

३ इस का अंग्रेजी से भाषा में किया हमारा अनुवाद पूर्ण सं० १००, १०१ पर छपा है (पृष्ठ १३४-१४३, १४३-१५०)

४. प० लेखराम कृत उर्दू जीवन चरित्र पृ० ३२६ (हिन्दी सं० पृष्ठ

[पूर्ण संख्या १०४] निवास-सूचना-विज्ञापन

विदित हो कि सं० १९३४ भाद्र मास के अन्त पर्यन्त पंजाब देश के जलधर नगर मे पण्डित स्वामो दयानन्द सरस्वती जी निवास करेंगे।[1]

—:o:—

[पूर्ण संख्या १०५] पत्र

आर्य्यसमाज लाहौर के सब सभासदों को नमस्ते विदित हो।[2] आगे अमृतसर से जाकर जालन्धर में पहुंचे गये। सरदार सुचेतसिंह जी[3] के बाग में ठहरा हूं। आगे जो-जो विशेष व्यवहार होगा सो लिखा जायगा। आगे सरदार विक्रमसिंह[4] जी बहुत अच्छे पुरुष हैं। वेदभाष्य का छठा अंक आ गया वा नहीं। मोहर लगाकर

---

१६५) पर उद्धृत। मूलपत्र लुप्त हो चुका है। [यह पत्र अमृतसर से लिखा गया था।]

१. ऋ० भाष्यभूमिका, अङ्क (६) सवत् १९३४।

२. पं० लेखराम कृत उर्दू जीवन चरित पृ० ३४१ (हिन्दी सं० ३८०) पर उद्धृत। मूल पत्र अब लुप्त हो चुका है।

३. देखो अगली टिप्पणी।

४. इनका वंश वृक्ष निम्नलिखित है।

महाराज निहालसिंह (कपूरथला रियासत के राजा)

एक माता | दूसरी माता

राजा रणधीरसिंह — स० सुचेतसिंह (दोनों भाई) स० विक्रमसिंह

राजा रणधीरसिंह → राजा खड़कसिंह → राजा जगजीतसिंह

स० विक्रमसिंह → टिक्का प्रतापसिंह → टिक्का जगजीतसिंह → कंवर मनजीतसिंह

कपूरथला की राजगद्दी राजा रणधीरसिंह के कुल में रही। स० सुचेत सिंह और स० विक्रमसिंह दोनों भाई दूसरी माता के पुत्र थे। वे भी पीछे राजा की उपाधि से युक्त हुए। श्री स्वामी जी उन्हीं के पास जालन्धर में ठहरे थे।

मोहर को अमृतसर भेज देना। सम्वत् १९३४ मिति भाद्र सुदी[1] शनिवार, ता० १५ सितम्बर सन् १८७७।

दयानन्द सरस्वती

जालन्धर

:o: —

[पूर्ण संख्या १०६] पत्र

Jullundher
2nd October 1877[2]

My dear pandit

I believe you might have received one hundred copies of Aryodesh Ratun Malla from Umritsar which according to my permission had been sent to your address by Munsookh Rai of Arya Samaj.

Please acknowledge them, if received duly and in from me of your sound health.

Daily lectures are given here and hope they will end with fair result. I will stop here abaut 9 or 10 days more and then visit next place or perhaps Lahore once more.

You can address me Jullundher city to the care of Sirdar Bikraman singh of Kapoorthala wala Please accept my Asheerbad. The said copies are to be sold at one and half annas each.

Yours well wisher
Pandit Swami Daynand Sarusswatti
Sd. दयानन्द सरस्वती

Vedas Bhomika has now come to its end nearly and the next is to commenced soon.

[भाषानुवाद]

जालन्धर
२ अक्तूबर १८७७[3]

---

१ सुदी ८ चाहिए। प० लेखरामकृत जीवन चरित में ८ नहीं है।

२ [आश्विन कृष्ण १०, मङ्गल, सं० १९३४।] मूल पत्र आर्य्यसमाज लखनऊ में सुरक्षित है।

३ आश्विन कृष्ण १०, मङ्गल, सं० १९३४।

मेरे प्रिय पण्डित !

मैं विश्वास करता हूं कि अमृतसर से आर्य्योद्देश्यरत्नमाला की एक सौ प्रतियां आप ने प्राप्त की होंगी, जो कि मेरी आज्ञानुसार आर्य्य समाज के मनसुखराय ने आप के पते पर भेजी हैं।

कृपया उन्हें स्वीकार करें, यदि वे समय पर मिलें और अपने अच्छे स्वास्थ्य से मुझे सूचित करें।

यहां व्याख्यान प्रतिदिन होते हैं और आशा है कि अच्छे परिणाम के साथ समाप्त होंगे। मैं यहां ९ या १० दिन तक और ठहरूंगा और पुनः अगला स्थान देखूंगा या कदाचित् फिर लाहौर जाऊं।

आप मुझे कपूरथला के सरदार विक्रमसिंह द्वारा जालन्धर नगर के पते से लिख सकते हैं। कृपया मेरा आशीर्वाद स्वीकार करें। पूर्वोक्त प्रतियां प्रति पुस्तक डेढ़ आना के दर से बेचनी हैं।

आपका शुभचिन्तक,
ह० दयानन्द सरस्वती

वेदभाष्यभूमिका अब लगभग समाप्ति[1] को आ रही है और वेद शीघ्र ही आरम्भ किया जायगा।

—:o:—

[पूर्ण संख्या १०७] निवास-सूचना-विज्ञापन

विदित हो कि सं० १९३८ आश्विन मास के अन्त पर्यन्त पञ्जाब देश के लाहौर वा रावलपिंडी नगर में पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती जी निवास करेंगे।[2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या १०८] पत्र-सारांश

[विनयमाधव जी आनन्द रहो]

१२ सितम्बर से यहां हैं[3] ······ ···

---

१. यहां ऋ० भा० भूमिका की 'समाप्ति' का तात्पर्य 'मुद्रण कार्य की समाप्ति' से है। 'भूमिका का लेखन' तो बहुत काल पूर्व हो चुका था।

२. ऋ० भाष्यभूमिका अङ्क (७) सवत् १९३४।

३. प० लेखराम कृत उर्दू जीवन चरित पृ० ३४१ (हिन्दी सं० पृष्ठ ३८०) पर यही अभिप्राय लिखा है। महाशय विनयमाधव कौन थे, इस का हमें ज्ञान नहीं हो सका। [पूर्ण संख्या १०३ के पत्र में १३ सितम्बर को

५ अक्तूबर १८७७ जालन्धर[1]

— ०.—

[पूर्ण संख्या १०६] **पत्र**

[उर्दू पत्र][2]

लाला मनसुख र[ाय जी आनन्दित रहो]
बाद आशीर्वाद के वाजे हो[कि यहां खैरीयत है]
हाल यह है कि अब हम तार[के द्वारा सूचना नहीं देंगे]
पीर[3] को प्रातःकाल यानी सुवह को[7½ चलकर 10½ बजे]
अमृतसर के स्टेशन पर पहुं[चेंगे । और अगले]
रोज यानी तारीख १६ माह हाल[को ... की तरफ]
रवाना हो जावेंगे । अगर मौक[ा मिला तो एक]
व्याख्यान भी देंगे । व[... ...]
जो कुछ हाल किताबों की निसबत को[...]
जुबानी कह दिया जावेगा । अ[ौर ...]
से गलती से बावानारायणसिंह जी[...]
मे[4] भूल हुई है और नारा[यण सिंह जी] के नाम
का[...]आ गया हो तो हजा के साथ
अर्साल होता है । मकान का बन्दोबस्त वास्ते ,एक

जालन्धर जाने का उल्लेख है । लेखरामकृत जीवन चरित(हिन्दी सं० पृष्ठ ४७६) मे भी १३ सितम्बर को जालन्धर पहुचना लिखा है। तथा द्र०—दयानन्द-शास्त्रार्थ-सग्रह, पृष्ठ १७५ (रत्नाकदस०) । अत सम्भव है यहां १३ के स्थान मे भूल से १२ लिखा गया होगा ।

१. आश्विन कृष्ण १४, शुक्रवार, स० १९३४ ।

२ अमृतसर निवासी प० रुद्रदत्त जी ने यह पत्र अक्तूबर १९२६ में हमें दिया था । इस का आधा भाग लुप्त हो चुका था । शेष भी बहुत जीर्णावस्था मे है । हम ने इस के जीर्णभाग जोड दिये हैं । इसके एक ओर उर्दू और दूसरी ओर उर्दू और अगरेजी दोनों हैं । उर्दू भाग हाशियों पर भी लिखा हुआ है । लुप्त अश की पूर्ति कहीं-कहीं कोष्ठों मे की गई है ।

३. सोमवार, १५ सितम्बर १८७७ ।

४. यहां से पृष्ठ की दूसरी ओर का लेख आरम्भ होता है । इस पक्ति का पूर्वार्ध पत्र फट जाने से लुप्त हो चुका है । यह पत्र जालन्धर से अमृतसर को लिखा गया है ।

शब और निस्फ रोज अव्वल के कर लेना [चा]हिए। एक रोज से ज्या[दा] ... ...

... ...

[ ][1] वगैरा की गुफ्तगू जुबानी होगी। सब [सभासदों से आशी]र्वाद कह देना। बाकी खैरीयत है। ज्यादा आशीर्वाद।

११ अक्तूबर १८७७ सन् ईस्वी[2]
राकम

[स्वामी] जी महाराज

[अंग्रेजी भाग]

I will start for Umr[itsar.........on]
the 15th inst. by m[orning train]
at 7-30 A. M. and [will reach there]
at about 10-30 [A. M......]
Please keep a h[ouse there for]
my short stay of[a night and half day]
[sure]ly, for the occ[assion . Accept]
my best ashee[rbad....... ...]

Sd. दयानन्द स[रस्वती][3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ११०] निवास-सूचना-विज्ञापन

विदित हो कि सं० १९३४ आश्विन मास के अन्त पर्यन्त

---

१. यहां से आगे का लेख हाशिये पर है।

२. आश्विन शुक्ल ५, बृहस्पतिवार सं० १९३४। १६ अक्तूबर आश्विन शुक्ल ९ सोमवार को अमृतसर पहुंचे। पं० लेखराम जी ने विजयादशमी से अगले दिन अर्थात् १७ अक्तूबर १८७७ को लाहौर पहुँचना लिखा है (उर्दू, पृ० ३१७ हिन्दी पृ० ३५६)। पं० घासीराम जी ने एक अशुद्धि अधिक की है। वे लिखते हैं - "जालन्धर से १७ अक्टूबर सन् १८७७ ई० को महाराज लाहौर पधारे।" इस पत्र से और जीवन चरितों के लेख से निश्चित होता है कि १५ का आधा दिन, १६ और १७ की प्रातः तक श्री स्वामी जी अमृतसर रहे।

३. जीर्ण आधा मूलपत्र अब हमारे संग्रह में संख्या ५ पर सुरक्षित है।

पञ्जाब देश के लाहौर वा रावलपिंडी नगर में पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती जी निवास करेंगे ।[1]

—:०:—

[पूर्ण संख्या १११] विज्ञापन[2]

सबको विदित हो कि प्रथम वर्ष पूरा होने पर आ गया, और चारों वेद की भूमिका भी पूरी हो गई केवल थोडी सी छपने को बाकी है। अगले वर्ष से मन्त्रभाष्य ही छपा करेगा इस विषय में विशेष प्रकाश करना यह है जितने २ पृष्ठों के मासिक पुस्तक अब निकलते हैं उतने २ ही ऋग् और यजुः इन दोनों वेदों के मंत्रभाष्य प्रतिमास दो अंक छपवाने का विचार है इसलिये ये भाष्यकार उक्त विषय में सब गाहकों की सम्मति जानना चाहता है कि कौन २ गाहक लोग दो २ और कौन २ एक २ अंक लेंगे और जिस २ गाहक ने अब तक चन्दा नहीं भेजा है उन सभों को उचित है कि अब रुपये भेजने में क्षणमात्र विलम्ब न करें, किन्तु दिसम्बर पूर्व २ जरूर २ भेज देवे और आगे के वर्ष में मासिक दो अंकों का जो कुछ नियत होगा उस का विज्ञापन पौष वा माघ मास में दिया जावेगा[3], परन्तु आगे सब गाहकों को वार्षिक चन्दा माघ वा फाल्गुन में जमा करना होगा और अब वेदभाष्य बनाने का क्रम ऐसा रक्खा गया है कि सब अभिप्राय सब को सुगमता से खुल जावेगा। सो क्रम यह है कि एक मूलमन्त्र की भूमिका, दूसरा मन्त्र, तीसरा पदपाठ, चौथा पदार्थ और प्रमाण, पांचवां अन्वय और छठा भावार्थ ये क्रम से पृथक् २ लिखे जायेंगे जिसमें सब को निर्भ्रमता से उक्त विषय विदित होते जायंगे। यह विज्ञापन इस लिये है कि इस को देख के अपनी २ प्रसन्नता से स्वामी जी वा लाजरस

---

१. ऋ० भाष्यभूमिका, अंक (८) संवत् १९३४ ।

२. यह विज्ञापन श्री स्वामी जी महाराज का लिखाया हुआ प्रतीत होता है। यह ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के ९वें अङ्क के आदि में एक स्लिप पर छपा है। इस विज्ञापन का उल्लेख मार्गशीर्ष कृष्ण ८ बुधवार १९३४ पूर्ण संख्या ११६ पृष्ठ १५९-१६१ में है। अतः यह विज्ञापन कार्तिक १९३४ के अन्त में लिखा गया होगा।

३. यह विज्ञापन आगे पूर्णसंख्या १३२ पर छपा है।

कम्पनी बनारस के पास पत्र भेज के अपना २ अभिप्राय विदित करें।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ११२] निवास-सूचना-विज्ञापन

विदित हो कि सं० १९३४ कार्तिक मास के अन्त पर्य्यन्त पञ्जाब देश के लाहौर वा रावलपिंडी नगर में पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती जी निवास करेंगे।[1]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ११३] पत्र-सारांश

[जवाहर व प्रभुदयाल खत्री, रावलपिण्डी]

आप संस्कृतज्ञ नहीं हैं। इस से उत्तर नहीं भेजते। इस से स्वयं रावलपिण्डी में आकर उत्तर देंगे।[2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ११४] पत्र-सारांश

[स्वामी सम्पद्गिरि, रावलपिण्डी]

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वती (ऋ० १०।७५।५) मन्त्र में गङ्गा यमुना आदि नदियों के नाम नहीं हैं, प्रत्युत शरीर की नाडी विशेष के हैं।[3]

—:o:—

---

१ ऋ० भाष्य भूमिका, अङ्क (९) सवत् १९३४।

२. इस का निर्देश प० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ४४७ पर है।

३ इस का निर्देश प० देवेन्द्रनाथ स० जी० च० पृष्ठ ४४९ पर है। इसी पत्र के साथ ऋ० द० ने सम्पद्गिरि को संस्कृत की अशुद्धियां भी लिख कर भेजी थीं।

'**इमं मे**' मन्त्र में गङ्गादि नाम नाड़ियों के हैं। यह ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका के ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्य-विषय में भी लिखा है—**इडापिंगलासुषुम्णा-कूर्मनाड्यादीनां गंगादिसंज्ञाऽस्ति**। पृ० ३५८, रा०ला० क० ट्रस्ट संस्क०।

[पूर्ण संख्या ११५] त्रिपदी-पत्र-अशुद्धि-संशोधन

ओम्*

ओ श्री गणेशाय नम । अथाज्ञ'मतभञ्जन** प्रारभ्यते ।
रावलपिड्य'धिवासी लक्षी'रामाभिधो द्विज. कश्चित् । (द्विजो विद्वान्) नत्वा गणपत्यादीनज्ञमतस्य 'खण्डनं कुरुते ॥१॥

तावन्मध्यस्थ'स्वामिसपद्गिरिसंमत्या सम्मुखमस्मद्विवादो भवतानंगीकुर्वाेन: पत्रोल्लेखने वयं प्रवृत्ता: स्म । हे विद्वन् यत्व'योक्तं शतपथब्रह्मणादिभाग: पुराणमुच्यतेतो अष्टादशपुराणानि [न] पुराणशब्दाभिधेयानि इति । तदसत् । प्रमाणाभावात् । यतः पूर्वमीमांसाया'मुक्तं - "वेदेषु ब्राह्मणं विध्यर्थवादभूत, मन्त्रस्तु कर्माङ्गभूतद्रव्यदेवतास्मारक इत्यत्र ब्राह्मणस्य वेदत्व'मवगीयते । अत एव शतपथादीनां बहुषु वाक्येषु "अनुस्वारस्यꣳ'छन्दसीति," सूत्रेण ꣳकारादेशो दृश्यते । तथा च छन्द शब्देन" वेद एवोच्यते तत्रैव तद्दर्शनात् नान्यत्र" । वेदे तु छन्दोलक्षणाभावेनापि छन्द' शब्दप्रयोगात् । तथा च पूर्वमीमांसासूत्रम् "स्यादाम्नायधर्मित्वाच्छन्दसि" नियम " इति । "छन्दोवत् सूत्राणि इति च । "छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्मादिति श्रुतेश्च ॥

...... ओंकारादिषु छन्दोलक्षणाभावे पि" ..... वेद एव ꣳकार"प्रयोग न तु छन्दोमात्रे .....अथ च अष्टाध्यायीसूत्रम्" 'हृग्रहोर्भश्छन्दसीति' सूत्रे छन्दो वेद एवोच्यते ....."ब्राह्मणानि-

---

* संवत् १९३४ के मध्य मे स्वामी दयानन्द सरस्वती रावलपिण्डी में थे । वहां एक पण्डित लखिराम रहता था । उस ने स्वामी जी को नीले रंग के फुल्सकेप के पूरे ६ पृष्ठों पर एक पत्र शास्त्रार्थ के लिये लिखा । श्री स्वामी जी ने उसी पत्र पर स्वलेखनी से उसकी अशुद्धियां आदि निकालीं । कहीं २ उत्तर के लिए उपयोगी टिप्पणी भी लिख दी । वह संशोधित मूल पत्र भक्त ईश्वरदास जी एम० ए० ने मुझे दिया था । मैंने उसी मूल पत्र का कुछ भाग ऊपर छापकर नीचे श्री स्वामी जी का संशोधन छापा है । तुलना करो प० लेखराम कृत उर्दू जीवन चरित्र पृ० ३४६, ३४७ (हिन्दी सं० पृष्ठ ३८७) । इस का मूल हमारे संग्रह में सुरक्षित है ।

** यहां जिन पर संख्या दी गई है, उनका क्रमश: संशोधन आगे दर्शाया गया है ।

निहासान्[16] ······अथर्वसंहितायां इतिहासश्च[17] पुराणञ्च······ ऋच[18] सामानि छन्दांसि पुराणम् ······चतुर्थमितिहास पुराण[19] पञ्चमं वेदानां वेदं ·· अत्र पुराणशब्दस्य नपुंसकत्वेन[20] नो इतिहासादीनां विशेषणत्वं ······ इतिहासपुराणाभ्यां[21] वेदं समुपबृंहयेत् अधीयते पुराण ये धर्मशास्त्राण्यथति चेति[22] ··· आख्यानानितिहासांश्च[23] पुराणान्यखिलानि[24] चेति ···भेषजमिति[25]श्रुते [26]मनुस्मृते प्रामाण्यं ······अर्धजरति[27]न्यायस्याप्रामाण्यात् अन्यच्च नारायणोपनिषदि[28] पाषाणमणि[29]सुवर्णमयविग्रहेषु पूजापुनर्भोगकरीति स्पष्टार्थं ·· के ते पितर । सोम्यास सोम्याः सोमपा[30] इत्यर्थः ।

(१) [श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का संशोधन]

१ असभ्यकथन । २ अर्थ से अशुद्ध । ३ लक्षि० । ४ एक मात्रा अधिक होने से श्लोक शुद्ध नहीं । २७ मात्रा होने में २८ मात्रा करना अशुद्ध है । ५ संपत्गिरि जी का मध्यस्थ होना असम्भव है, विद्या कम होने से । ६ यत्त्वयोक्तं । ७ इस की टीका में । ८ वेदव्याख्यानत्वम् । ९ अपाणिनीयम् । १० शब्देन । ११ अशुद्ध है एत्कार होने से । १२ पण्डित इन का अर्थ नहीं जानते । १३ पि । १४ अशुद्ध है । १५ नही है हृग्रहोर्भश्छन्दसीति । १६ पण्डित इन का अर्थ नही जानते । १७ ब्राह्मणानीतिहा० पण्डितों ने इस का और १८ [इतिहासश्च०] इस का अर्थ नहीं जाना है । १९ पण्डितों ने इस का भी अर्थ नहीं जाना है । २० यह बात अशुद्ध है । २१ — २२ पण्डितों ने इस का अर्थ नहीं जाना है । २३—नीति० । २४— णानि खि— । २५ श्रुते । २६— स्मृते । २७ जरतीयन्या० । २८ इसमें कही नहीं है । २९ पाषाणलोहमणिमृन्मया । ३० सोम्या ।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ११६] पत्र

Rawalpindi
28th November 1877.[1]

Dear Pandit

The accompanying is a specimen of my Veda Bhashya

१ [मार्गशीर्ष कृष्ण ८, बुधवार, सं० १९३४] मूल पत्र प्रो० धीरेन्द्रजी वर्मा के संग्रह में सुरक्षित है ।

(which is to be commenced and published soon) showing the style and made of dividing the interpretations of the texts into peculiar ways for the facility of its readers. I will do my best to disclose all the most difficult points into plain Sanskrit and Devanagari so that even the boys of insufficient knowledge will be able to understand them without any help.

Please see it yourself first and then circulate it in Ahmedabad and Bombay etc., for approval of the people.

I hope you loose no time in doing so and is communicating your final opinion to me either to keep the style or change into another better one.

The work of text Bhashya has been set up and is under my pen every day so the delay in answer expressive of your and others opinions like that of Moreshwar Kunte is not advisable Address me Rawalpindi to the care of post Master only. I have also given a notice[1] on my Veda's Bhoomika Part No. 9 for the present month regarding the two issues of Rig ahd Yaju from the next year 1878 for learning the subscribers wishes for their acceptance and another notice for fixing subscription etc. and as settled will be published again in the next momth Please reply my other letter too and accept my best Asheerbad I am very glad to hear that you visit Bombay A Samaj every fortnight and deliver a beautiful lecture there on different subjects with the view of public interest. Hoping you are well and rejoicing

Your well wisher
Pt. Swami Dayanand Saraswatti
दयानन्द सरस्वती

To

R. R. Gopal Rao, Hari,
D. Mukh, Torman.

[भाषानुवाद]

रावलपिण्डी
२८ नवम्बर १८७७[2]

---

१. यह नोटिस (=विज्ञापन) पूर्ण सङ्ख्या १११ पर छपा है।
२. मार्गशीर्ष कृष्ण ८, बुधवार, सं० १९३४।

प्रिय पण्डित !

साथ में वेदभाष्य का (जो शीघ्र ही आरम्भ तथा प्रकाशित होने वाला है) नमूना भेज रहा हूं जिसमें पाठकों की सुविधा के लिए वेदों के भाष्य के विभाग की पद्धति विचित्र ढंग से दिखलाई गई है। सभी कठिन स्थलों को सरल संस्कृत तथा देवनागरी में खोलने का शक्ति भर यत्न करूंगा। जिससे अल्प ज्ञान वाले बच्चे भी बिना किसी सहायता के उसे समझ सकेंगे।[1] कृपा करके पहले इसे स्वयं देखिए, फिर इसे जनता की सम्मति और अनुमोदन के लिये अहमदाबाद और बम्बई आदि में प्रचारित कीजिए। मैं आशा करता हूं कि आप ऐसा करने और पद्धति को रखने या इसे और अच्छी बनाने के लिये परिवर्तन के विषय में अपनी अन्तिम सम्मति देने में विलम्ब न करेंगे।

वेदभाष्य का कार्य आरम्भ हो चुका है और प्रतिदिन लेखन कार्य चल रहा है, अतः आप तथा मोरेश्वर कुण्टे जैसे अन्य व्यक्तियों के सम्मति सूचक उत्तर में विलम्ब उचित नहीं। मेरा पता 'द्वारा पोस्ट मास्टर रावलपिण्डी' केवल इतना ही लिखिए। अगले वर्ष १८७८ से ऋग् और यजुः दो अंक निकालने के विषय में ग्राहकों की स्वीकृत्यर्थ इच्छा जानने के लिए इस मास की अपनी भूमिका भाग ६ में एक सूचना[2] निकाली है और दूसरी सूचना चन्दा निश्चित करने के लिए, जैसा निश्चित होगा पुनः अगले मास में प्रकाशित की जाएगी।[3] कृपया मेरे अन्य पत्र का भी उत्तर दीजिए और आशीर्वाद स्वीकार कीजिए। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई

---

१. ऋषि दयानन्द के इस लेख से स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द ने अपना वेदभाष्य सीधी और सरल भाषा में रचा है, रहस्यमयी भाषा में नहीं रचा। अतः 'ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य को समझना साधारण व्यक्ति का कार्य नहीं' इत्यादि कहकर उसे मध्यकालीन साम्प्रदायिक आचार्यों के ग्रन्थों के समान रहस्यमय बनाना ऋषि दयानन्द के अभिप्राय के विरुद्ध है। परन्तु यह भी ध्यान रहे, जब तक ऋषि दयानन्द की वेदार्थशैली और उसके भाव को हृदयंगम न कर लिया जायगा, तब तक सरल शब्दों में प्रतिपादित वेदार्थ भी समझ में कदापि न आवेगा।

२. यह सूचना (विज्ञापन) पृष्ठसंख्या १११ पर छपी है।

३. यह सूचना (विज्ञापन) आगे पृष्ठ संख्या १२१ पर छपी है।

कि आप बम्बई आर्यसमाज में हर पक्ष में जाकर जनता के हित की दृष्टि से विभिन्न विषयों पर सुन्दर व्याख्यान देते हैं। आशा है आप आनन्द सकुशल होंगे।

आप का शुभचिन्तक
ह० दयानन्द सरस्वती

सेवा में—आर आर गोपाल राव, हरि देशमुख, नोरमाण

—:०:—

[पूर्ण संख्या ११७] [1]पारसल-सूचना

[पं० गोपालराव हरिदेशमुख]

वेदभाष्य का नमूना[2]

२८ नवम्बर १८७७ [संवत् १९३४, मार्गशीर्ष कृष्णा ८।]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ११८] पत्र

Rawalpindi
6th December, 1877[3]

Dear Pandit,

Yours of the 30 ultimo, is to hand. To correct proof-sheets in Hindi must be considered my own duty, and I will do that twice or thrice with my own hand every month.

You will have no difficulty at all in conducting this part of the business but do other things which are performable by you only I think Baboo H. Chinta Mani is well qualified and clever enough to superintend the work, but tell me first, what you like to do in this case I have not given contract of the work to Dr. Lazauras for any fixed length of period but his charges have been settled as f llow—

---

१ यहां पारसल शब्द से पारसल पैकेट और बुक पोस्ट का सामान्य रूप से ग्रहण समझना चाहिये।

२. पूर्ण संख्या ११६ के आरम्भ में इस का निर्देश है।

३. [मार्गशीर्ष शुक्ल २, बृहस्पतिवार, सं० १९३४] मूल पत्र प्रो० वीरेन्द्र वर्मा के संग्रह में सुरक्षित है।

(Monthly account for 3100 copies)

He charges for printing and paper at Rs. 6/11/6 per page .... Rs. 161/14/-

For printing the covers including folding and stiching at Rs. 15/-/- the 1000 .. Rs. 46/8/-

For office allowance and agency Rs 30/-/- per month.

The list of subscriptions paid and unpaid with full particulars you will get afterwards at the close of the current year

I will issue Yajoor Veda too; if God wished At what rate per ream the papers like that of my Sanskar Vidhi is procurable in Bombay. I Hoping you are well and rejoicing. My asheerbad to you. Address me still Rawalpindi.

Your well wisher

Pt. Swami Dayananda Saraswatti.

Sd. दयानन्द सरस्वती

To

R. B. Gopal H. Desh Mookh Sarma,

P. S.

What will be the printing rate of such size of copies in equal number as Dr. Lazauras prints at present, in Bombay, if I supply paper on my own cost separately.

If you find the printing cheaper done by contract, let the work be published in Bombay and there is no objection at all from my side.

[भाषानुवाद]

रावलपिण्डी

६ दिसम्बर १८७७[1]

प्रिय पण्डित !

आपका गत ३०ता० का पत्र हस्तगत हुआ। हिन्दी के प्रूफ शोधना मेरा ही कार्य समझना चाहिये और मैं उसे प्रतिमास दो या तीन बार अपने हाथ से करूंगा। आप को यह करने में कोई कठिनाई न होगी परन्तु आप कुछ दूसरे कार्य भी कीजिए जिन्हें आप ही कर सकते हैं। मेरे

---

१. मार्गशीर्ष शुक्ल २, बृहस्पतिवार सं० १९३४।

विचार में बाबू ह० चिन्तामणि बहुत योग्य और कार्य के निरीक्षण में चतुर हैं, परन्तु पहले आप मुझे यह बतलाइये कि आप इस विषय में क्या करना चाहते हैं। मैंने डा० लाजरस को किसी निश्चित अवधि के लिये ग्रन्थ का ठेका नहीं दिया है। किन्तु चार्ज निम्न प्रकार से तय हुआ है।

(३१०० प्रतियों का मासिक व्यय)

वे छपाई और कागज के लिये ६॥ ≡)॥ प्रति पृष्ठ चार्ज करते हैं—१६१॥। =)। टाइटल पेज की छपाई मोड़ाई और सिलाई सहित १५ प्रति सहस्र की दर से ४६॥) दफ्तर व्यय एजेंसी के ३०) प्रति मास।

प्राप्त और अप्राप्त चन्दे की लिस्ट पूर्ण विवरण सहित चालू वर्ष के अन्त में आप के पास भेज दी जायगी।

यदि ईश्वर की इच्छा हुई तो मैं यजुर्वेद भी प्रकाशित करूंगा। मेरी संस्कार-विधि के प्रकार का कागज बम्बई में प्रति रीम किस भाव से मिल सकता है। आशा है आप सकुशल होंगे। आप को मेरा आशीर्वाद। अभी मुझे पत्र रावलपिण्डी के पते पर ही लिखें।

आपका शुभचिन्तक
द० दयानन्द सरस्वती

सेवा में—गोपाल हरि देशमुख शर्मा

पुनश्च यदि मैं कागज पृथक् अपना दूं तो बम्बई में वैसे ही आकार और उतनी ही संख्या में प्रतियों की जितनी कि आजकल डा० लाजरस छापते हैं, छपाई की दर क्या होगी। यदि आपको छपाई ठेके द्वारा उससे सस्ती पड़े तो ग्रन्थ को बम्बई में ही छपने दीजिये। इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं।

—:o:-

[पूर्ण संख्या ११६] पत्र

Rawalpindi 10th Dec. 1877

Dear Ram Narain[1]

Yours of the 5th inst[2]. duly came to hand & understood all what you stated therein. I accepted Rs 30 as donation for the Veda-Bhashya, from Ravgoppa Mangesh Manjeshwarkar with thanks & give much credit to him for his such boldness

---

१. यह रामनारायण को भेजे पत्र की प्रतिलिपि है, जो परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान है। २. यह पत्र हमें प्राप्त नहीं हुआ।

in the path of truth. I also herein enclose a separate receipt for the amount offered by him as well as answer for his good enquiry

I am very glad to hear that Pandit Soonder Lall will be at Amballa but sorry to say that I am too far from the place, i. e. at Rawalpindi which is widely separated from the Railway Line. Please infrorm your uncle not to suffer useless troubles in snowy weather & I am always satisfied to [he]ar only now & then that he is enjoyment of sound health without caring for his long & wide visits. Please give him my best asheerbad & accept the same for yourself

Yours well-wisher
Pt. Swami Dyanand Sarussewatti
दयानन्द सरस्वती

P. S.

Lala Shiva Dyal asst Engineer is coming down to Allahabad on public duty & will see you within a fortnight. I have given him a letter to your address, so please receive him kindly.

(दयानन्द सरस्वती)

[भाषानुवाद]

रावलपिण्डी
१० दिसम्बर १८७७

प्रिय रामनारायण,

आपका दिनांक ५ दिसम्बर[1] का पत्र यथासमय प्राप्त हुआ तथा उसमें आपने जो कुछ लिखा है, मैं सब समझ गया हूं।

मैंने राव गोपालगेश मोबेश्वरकर से रु. ३०/- वेदभाष्य के लिये सधन्यवाद भेंटस्वरूप स्वीकार किये हैं और उनके द्वारा सत्य के पथ पर दिखलाई निर्भीकता के लिये उन्हें धन्यवाद देता हूं। उनके द्वारा भेंट की गई राशि की रसीद तथा उनके द्वारा की गई जिज्ञासा का उत्तर मैं साथ ही भिजवा रहा हूं।

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि पण्डित सुन्दरलाल अम्बाला आयेंगे, किन्तु मुझे यह लिखते हुए दुःख है कि मैं उस स्थान से बहुत दूर

---

१. यह पत्र हमें प्राप्त नहीं हुआ।

हूं, रावलपिण्डी रेलवे लाइन से बहुत दूरी पर अलग स्थित है। अपने बाबाजी से कहें कि वे व्यर्थ में ही इस बर्फीले मौसम में कष्ट न उठावें। मैं जब-तब यह सुनकर कि उनका स्वास्थ्य उत्तम है, संतुष्ट हूं। इसके लिये वे इतनी लम्बी यात्रा न करें। उन्हें मेरा शुभाशीर्वाद तथा आपको मेरा आशीर्वाद।

आपका शुभेच्छु
पं० स्वामी दयानन्द सरस्वती

पुनश्च —

लाला शिवदयाल, एसिस्टेन्ट इन्जीनियर, सरकारी कार्य से इलाहाबाद आ रहे हैं और आपसे एक पखवाड़े के अन्दर मिलेंगे। उन्हें मैंने आपको सम्बोधित एक पत्र दिया है, अतः कृपया उनकी अगवानी प्रेम से करना।

— :o: —

[पूर्ण संख्या १२०] पत्र

Rawalpindi[1]
12th Dec. 1977.[2]

Dear Pandit jee,

Yours......... ....[3] the 6th current is to hand. To know that the .... of Vedbhashya Rs. for 31......... ...... of 24 pages.. .... do include the cost of paper...... . ... clude it... .. ..

No objection from my side for giving the work in contract if it can possibly be printed cheaper than at present in Benares.

---

१. इस पत्र की फोटो कापी श्री इन्दुलाल मोतीलाल पटेल (सायला) तथा श्री अम्बालाल नरसिंह पटेल (जेतपुर) के प्रयत्न से श्री बलभद्र जी राणा, लीमड़ी (सौराष्ट्र) से प्राप्त हुई। इसी पत्र की दूसरी प्रति श्री बलभद्र जी राणा के कनिष्ठ भ्राता जे० एन० राणा (बम्बई) के संग्रह में विद्यमान है। हमने अक्टूबर १९८० को बम्बई जाकर देखी।

२. मार्गशीर्ष शुक्ल ७ बुधवार १९३४।

३. मूल पत्र जो कि खस्ता हो चुका था उसे ३-४ स्थान पर कागज चिपकाकर फोटो लिया गया। उससे जो पद अक्षर दब गये उन स्थान पर हमने ....बिन्दु रख दिये हैं। इसका ब्लाक बनवाकर हम प्रतिकृति छाप रहे हैं।

If Shamji Krishna Verma does not go to England & like to govern the Vedbhashya printing in its distribution etc. then III ....glad...... ....and that ..... upon desire...... .. .. hand allowing . .. .. . in the meantime Rs. 30 or even Rs 40 per month including house rent for putting the printed copies in store, as I pay...... .... Lazarus for the same duty, except the postage expenses Shamji Verma is a very good pundit & can correct both Sanskrit and Hindi ....properly.

You yourself and Baboo H Chintamani will have to watch the regular movement of the work either by correspondence or personally, while for myself, the translation of the Vedas & preaching the true doctrine all round the country must be considered .... duty of work to do My asheerbad to you.

Yours wellwisher
Pt. S. D. Saraswatti
दयानन्द सरस्वती

[To
R B. Gopal Rao.] H. Deshmukh Sharma

[भाषानुवाद]

रावलपिण्डी
१२ दिसम्बर १८७७

प्रिय पण्डित जी,

आपका[पत्र]वर्त्तमान मास दिनांक ६ हस्तगत हुआ। जानना ······ कि वेदभाष्य के ···रु० ३१ के लिये······ · २४ पृष्ठ के ····· ··· कागज का मूल्य भी सम्मिलित··· ·· ····

कार्य को ठेके पर देने के लिए मेरी ओर से कोई आपत्ति नहीं, यदि सम्प्रति बनारस की अपेक्षा सस्ता मुद्रण हो सकता हो। ········ यदि श्याम जी कृष्ण वर्मा इंगलैण्ड नहीं जाते हैं और वेदभाष्य मुद्रण वितरण आदि की व्यवस्था करना चाहते हों, तो मुझे प्रसन्नता होगी। ·· ··· · और कि · ·· इच्छानुसार···· ·····हाथ अनुमत ··· इस बीच ······ ·· ··· · ··· तीस या चालीस रुपये प्रति मास, जिसमें मुद्रित प्रतियों को भण्डार में रखने के लिए मकान किराया सम्मिलित है, जो मैं ·· ·· लाजरस को पोस्टेज व्यय के अतिरिक्त, इसी कार्य के

लिए चुकाता हूं। श्याम जी वर्मा बहुत अच्छे पण्डित हैं और संस्कृत तथा हिन्दी दोनों·········उचित रूप से संशोधन कर सकते हैं।

स्वयं आप और बाबू ह० चिन्तामणि को, पत्रव्यवहार द्वारा अथवा व्यक्तिशः, कार्य के सतत सञ्चालन का ध्यान रखना होगा। जहां तक मेरा प्रश्न है, वेदभाष्य तथा सत्य सिद्धान्त का सम्पूर्ण देश में प्रचार मेरा कर्त्तव्य समझा जाना चाहिये। आपको मेरा आशीर्वाद।

आप का शुभचिन्तक
पण्डित स्वा० द० सरस्वती
[दयानन्द सरस्वती]

··· ··· ···········
·····ह० वेतामुल शर्मा
········ ······

— ० —

[पूर्ण संख्या १२१] पत्र

Rawalpindi
13th December, 1877[1]

Dear Pandit ji,

In continuation of my Yesterday's letter, I again inform you about something more which I remembered afterwards,

I want to have a sample of the paper which to be used and selected for the Veda-Bhashya and also you should bear in mind that the said Bhasya must be published in three different types according to my Ms. i. e, M large, round and small bands.

Please write to Baroda subscribers to pay up their subscriptions without further delay.

Yours well wisher
Pt. Swami Dayanand Sarusswatti
दयानन्द सरस्वती

To
R. B. Gopal Rao H. Desh Mookh, Sarma,

---

१ [मार्गशीर्ष शुक्ल ८, बृहस्पतिवार, संवत् १९३४।] मूल पत्र प्रो० धीरेन्द्र जी वर्मा के संग्रह में सुरक्षित है।

[भाषानुवाद]

रावलपिण्डी
१३ दिसम्बर १८७७[1]

प्रिय पण्डित जी

अपने कल वाले पत्र के सिलसिले में कुछ अन्य बातों के विषय में आप को पुनः सूचित करना चाहता हूं। जिसका मुझे बाद में स्मरण आया।

वेदभाष्य के लिये जिस कागज का प्रयोग निश्चित हुआ है मैं उसका नमूना देखना चाहता हूं। आपको यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि उक्त भाष्य मेरे हस्तलेखों के अनुसार अर्थात् 'एम लार्ज' 'राउण्ड' और 'स्माल' इन विभिन्न टाइपों में अवश्य प्रकाशित हो।

कृपया बड़ोदा के ग्राहकों को लिख दें कि वे और देर किये बिना अपना चन्दा भेज दें।

आपका शुभचिन्तक
ह० दयानन्द सरस्वती

सेवा में—आर० बी० गोपाल राव हरि देशमुख शर्मा

—:०:—

[पूर्ण संख्या १२२] पत्र

Jehlum
27 Decr. 1877[2]

Dear Pandit Jee,

I recd/ your delightful letter of the 22nd inst, this morning and am extremely glad to read all the particulars stated therein.

I have arrived at Jehlum to-day the 27th[3] current and intend to stop here about a fortnight at least, you can remit

---

१. द्र०—पूर्वपृष्ठ की टि० १।

२. [पौषकृष्ण ८, बृहस्पतिवार, सं० १९३४।] प० रामाधार वाजपेयी को लिखा गया। मूल पत्र आर्य समाज लखनऊ के संग्रह में सुरक्षित है।

३. प० लेखराम कृत उर्दू जीवनचरित पृ० ३४९, हिन्दी सं०, पृ० ३८८ पर लिखा है कि स्वामी जी ३० दिसम्बर को जेहलम पहुंचे। इसी का अनुकरण करते हुए प० घासीराम जी ने (देवेन्द्रनाथ संकलित) महर्षि

the money to me freely according to my above shown address, remarking to the care of Post Master only but please don't send me tickets as you did before, because I find some difficulty in changing or getting money for them Better send currency Notes or moneyorder, which are both safest ways indeed. Hoping you are well and rejoicing--

Yours well wisher
Pandit Swami Dayanand Sarusswatti
Sd/दयानन्द सरस्वती

[भाषानुवाद]

जेहलम
२७ दिसम्बर १८७७[1]

प्रिय पण्डित जी !

आप का २२ तारीख का आनन्ददायक पत्र आज प्रातः काल मिला और उसकी सब बातों को पढ़कर मुझे अत्यन्त आनन्द हुआ।

मैं आज २७ तारीख को जेहलम पहुंचा हूं और कम से कम यहां पन्द्रह दिन तक रहने का विचार रखता हूं। आप मुझे उपरिलिखित पते पर केवल पोस्ट मास्टर द्वारा लिख कर खुले तौर पर रुपया भेज सकते हैं, परन्तु पूर्ववत् मुझे टिकट न भेजें, क्योंकि उनके बदलवाने या उनके स्थान में रुपया लेने में मुझे कष्ट होता है। अच्छा है कि करंन्सी नोट या मनी-आर्डर भेजें जो निश्चय ही दोनों अत्यन्त सुरक्षित प्रकार हैं। आशा है, आप अच्छे और प्रसन्न होंगे।

आपका शुभचिन्तक
ह० दयानन्द सरस्वती

:o:—

दयानन्द के जीवन चरित्र पृ० ४५० पर लिखा है कि "३० दिसम्बर १८७७ को महाराज रावलपिण्डी से गुजरात जाने के विचार से शिकरम पर सवार होकर ३१ दिसम्बर को जेहलम रेलवे स्टेशन पर पहुंचे।" पं० लेखराम जी तो सामग्री के अभाव से ठीक तिथि नहीं जान सके, परन्तु इस पत्र के मुद्रित हो जाने पर भी पं० घासीराम जी ने इस का प्रयोग करके तिथि को ठीक नहीं किया।

१. द्र० पूर्व पृष्ठ की टि० २।

[पूर्ण संख्या १२३] पत्र

Jehlum
28/12 77[1]

Dear Pandit Jee.

Please tell me how many copies of Sandhio-Pasan you wish to have for sale in Lucknow ? These are the best copies with good translation in Deva-Nagri Bhashya paragraph by pargraph one after the other orderly in improved and enlarged edition. The average price per copy has not been fixed as yet, because the said book is still under Press, but on its coming out, every thing will be settled and decided with good-will

However I can suggest you so much that the price would be under half rupee per copy. And this would be an excellent work for the Arya-people indeed.

It is raining here since yesterday evening, so heavily that in the Kothi where I am sitting now and writing this letter to you, is all leaking over, except a few hand of floor inside.

Hoping you are well and rejoicing.

Yours well wisher
Pandit Swami Dayanand Sarusswatti
Sd. दयानन्द सरस्वती

[भाषानुवाद]

जेहलम
२८—१२—७७[1]

प्रिय पण्डित जी !

कृपया मुझे बतायें कि लखनऊ में बिक्री के लिये आप सन्ध्योपासन की कितनी प्रतियां चाहते हैं ? यह सर्वोत्तम प्रतियां हैं। अनुवाद अच्छा है। और एक के पीछे प्रत्येक दूसरे वाक्य का क्रमशः देवनागरी में भाष्य है। यह संस्करण संशोधित और परिवर्धित है।

प्रति पुस्तक का अनुमान से मूल्य अभी नहीं रखा गया, क्योंकि पूर्वोक्त पुस्तक अभी यन्त्रालय में है, पर इस के निकलने पर प्रत्येक बात शुभ भाव से स्थिर और निश्चित की जायगी।

---

१. [पौष कृष्ण ६, शुक्रवार, सं० १९३४।] मूल पत्र आर्यसमाज लखनऊ के संग्रह में सुरक्षित है।

फिर भी मैं आपको इतना बता सकता हूं कि प्रति पुस्तक आठ आने से न्यून होगा, और यह निस्सन्देह आर्यों के लिये अत्युत्तम पुस्तक होगा। कल सायंकाल से यहां इतने वेग से वर्षा हो रही है कि जिस कोठी में अब बैठा हूं और आप को यह पत्र लिख रहा हूं; अन्दर दो चार हाथ छोड़ कर सब स्थानों से चू रही है।

आशा है आप अच्छे और प्रसन्न होंगे।

आपका शुभचिन्तक
ह० दयानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या १२४] पत्र

Jehlum
4th January 1878[1]

Dear Pandit Jee

The Sandhio Pasan Panch Maha Juggya Bidhi with easy translation in Bhasha, is now ready in its completion for use and you will soon get 100, one hundred copies of it from Benares Press within a short time.

The price per copy has been published on their covers and if you wish to have more of them, you can be furnished with, in required number on your further request. I believe you would have recd/my other letters also in due time. Hoping you are well with your children and family.

Yours well wisher
Pandit Swami Dayanand Sarusswatti
Sd. दयानन्द सरस्वती

Address me Jhelum city to the care of post Master only

[भाषानुवाद]

जेहलम
४ जनवरी, १८७८[2]

१. [पौष शुक्ल १, शुक्रवार, सं० १९३४] पं० रामाधार वाजपेयी को लिखा गया मूल पत्र आर्यसमाज लखनऊ के संग्रह में सुरक्षित है।

२. पौष शुक्ल १, शुक्रवार, १९३४।

प्रिय पण्डित जी !

सन्ध्योपासन पञ्चमहायज्ञविधि भाषा में सरलार्थ युक्त अब काम आने के लिये तय्यार हो गई है, और आप को इस की १०० एक सौ प्रति शीघ्र ही बनारस प्रेस से पहुंचेगी।

मूल्य प्रति पुस्तक का उस के मुखपृष्ठ पर छाप दिया गया है, और यदि आप को अधिक की आवश्यकता हो, तो आगे पत्र आने पर अभीष्ट संख्या में भेजी जा सकती है। मैं विश्वास करता हू कि मेरे दूसरे सभी पत्र[1] भी आप को उचित समय पर मिल गये होंगे। आशा है आप सपरिवार कुशल सहित होंगे।

आप का शुभचिन्तक
ह० दयानन्द सरस्वती

मुझे केवल इस पते से लिखें—द्वारा पोस्टमास्टर जेहलम नगर।

—:o:—

[पूर्ण संख्या १२५]　　　　पत्र

Jehlum
6 January 1878[2]

Dear Pandit Jee.

Received your letter of the 3rd. inst enclosing a currency Note for Rs. 10 ten only, which I accepted with thanks. Nothing is new here worthy to be stated, but I hope sincerely that an Arya-Samaj will also be made here within a short time. Hoping you are well with your children. Please Accept my best Asheerbad.

Yours well wisher
Pandit Swami Dd. Saruswatti
Sd. दयानन्द सरस्वती

[भावानुवाद]

जेहलम
६ जनवरी, १८७७

---

१. स्वामी जी के लिखे २ पत्र पूर्ण संख्या १२२, १२३ पर छपे हैं, जो झेलम से लिखे गये। सम्भवतः इन पत्रों की ओर स्वामी जी का संकेत हो।

२ [पौष शुक्ल ३, रविवार सं० १९३४।] पं० रामाधार वाजपेयी को लिखा गया। मूल पत्र आर्यसमाज लखनऊ के संग्रह में सुरक्षित है।

प्रिय पण्डित जी !

आपका ३ तारीख का पत्र, जिस में १० रुपये का करंन्सी नोट था, मिला। उस का धन्यवादपूर्वक स्वीकार किया। यहां लिखने योग्य कोई नया समाचार नहीं हैं। परन्तु मैं शुद्ध हृदय से आशा करता हूं कि थोड़े ही काल में यहां भी एक आर्यसमाज बनाया जायगा। आशा है आप स्वसन्तान सहित कुशलपूर्वक होंगे। कृपया मेरा हार्दिक आशीर्वाद स्वीकार करें।

आपका शुभचिन्तक
ह० दयानन्द सरस्वती

—॰—

[पूर्ण संख्या १२६] पत्र

सुखस्वरूप पंडित कालूराम जी प्रसन्न रहो।

कुशल पत्र आपका मि० पौ० कृ० ७[1] का हमारे पास पहुंचा। पढ़ कर मन आनन्द हुआ। अगले वर्ष अर्थात् सवत् १९३५ से दो २ अङ्क ऋक् और यजु प्रतिमास मे आपके और समर्थदान के नाम भेजे जावेंगे। हम धन्यवाद देते हैं कि आप लोग ऐसी प्रीति से वेदभाष्य का सहाय करना चाहते हैं। परमात्मा आपका कल्याण करेगा। पुस्तक सन्ध्योपासना भाषाटीका सहित बहुत उत्तम छपवाया है। २५ पच्चीस जिल्दें आपके पास बनारस यन्त्रालय से शीघ्र पहुंचेगी। रसीद भेज देना। आगे जो पुस्तक नवीन होगी, भेजी जायगी। सत्य[ार्थ] प्रकाश का दूसरा भाग नहीं छापा गया है, विचार था परन्तु छपा नहीं। रावलपिण्डी में आर्यसमाज हो गया। इस स्थान (जेहलम) में भी होने की आशा है। पञ्जाब में बहुत ठिकाने समाज बन गये हैं। वेदधर्म की बड़ी उन्नति है। शीत और पाला बहुत पड़ता है। वर्षा भी खूब हो चुकी है। अग्रे किं बहुना। समर्थदान आदि को आशीर्वाद पहुंचे। इति। मि०पौ० शु० ४[2]। ता० ७ जनवरी सन् ७८ ई०।

ह० दयानन्द सरस्वती

पता जेहलम वा गुजरात के डाकखाने की मार्फत स्वामी जी

---

१. अर्थात् सं० १९३४ पौष कृष्णा ७, तदनुसार १६ दिसम्बर बुधवार सन् १८७७ का।

२. संवत् १९३४ जेहलम से।

के पास पहुंचे। इतना ही लिखना काफी होगा[1]

—:o:—

[पूर्ण संख्या १२७] निवास-सूचना-विज्ञापन

विदित हो कि सं० १९३४ पौष मास के अन्त पर्यन्त पञ्जाब देश के वजीराबाद नगर में पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती जी निवास करेंगे।[2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या १२८] पत्र

Gujrat
14 January 1878[3]

Dear Pandit Jee

Your welcome note of the 9th inst. duly came to hand and I understood all what you stated therein.

Your good wishes for learning the veda Bhashya's subscription for the current year will soon be fulfilled. The only delay is that with the consent of the Bombay people, I am now making some better arrangements for the Bhasya's publication both in paper and type. All this will soon be finished with united efforts of us and a notice will be given in the 11th or 12th part of the Veda Bhashya for the public information on the matter The subscription for this year is surely to be fixed with some reduction and the people would be able to buy one or both numbers of the Rig and Yaju easily.

I dare say that all the supscribers for this year would

---

१. यह पत्र हमारी प्रार्थना पर प० रामसहाय जी महोपदेशक आ० प्र० सभा अजमेर ने ता० २२-५-३३ को दो और पत्रों सहित हमारे पास भेजा था। मूलपत्र अब हमारे सग्रह में सुरक्षित है।

२. ऋ० भाष्यभूमिका, अक (१०) सवत् १९३४। [ऋ० भाष्यभूमिका तथा वेदभाष्य के अक नियत समय पर नहीं निकलते थे, अत. आगे से उन पर दी गई सूचना देना अनावश्यक समझा गया]।

३. [पौष शुक्ल १०, सोमवार, स० १९३४।] प० रामाधार बाजपेयी को लिखा गया। मूल पत्र आर्यसमाज लखनऊ के सग्रह में सुरक्षित है।

be fully satisfied to find good paper and fine order of interpretation, which are very necessarily required to discover the real sense of the Mantras. On my returning from the Punjab, I will tell you whether and what time I will be able to visit Luchnow, but it would be done so sooner or later once again certainly Hoping you are well and rejoicing Accept my best Asheerbad and believe me your ever well wisher.

Pt. Swami Dayanand Saruswatti
Sd/दयानन्द सरस्वती

[भाषानुवाद]

गुजरात
१४ जनवरी १८७८[1]

प्रिय पण्डित जी !

आपका ६ तारीख का शुभ समाचार उचित समय पर मिला और आपका लिखा सब विषय समझा।

प्रचलित वर्ष के लिये वेदभाष्य का चन्दा जानने की आपकी शुद्ध भावना शीघ्र पूर्ण की जायगी। देरी केवल इस बात की है कि मुम्बई के लोगों की सम्मति से मैं अब भाष्य के छपने का, कागज और टाइप दोनों की दृष्टि से, अच्छा प्रबन्ध कर रहा हूं। हम सब के इकट्ठे परिश्रम से यह सब शीघ्र समाप्त होगा, और इस विषय पर जनता के ज्ञान के लिये वेदभाष्य के ११ वें १२ वें अंक में एक विज्ञापन[2] दिया जायगा। इस वर्ष का चन्दा निस्सन्देह कुछ घटा कर रखा जायगा, और लोग सरलता से ऋग् या यजुः के एक या दो अंक खरीद सकेंगे।

मैं निश्चय से कहता हूं कि इस वर्ष के सब ग्राहक अच्छा कागज और भाष्य का सुन्दर क्रम देखकर, जो मन्त्रों के यथार्थ अर्थ जानने के लिये बड़ा आवश्यक है, पूर्ण सन्तुष्ट होंगे। पञ्जाब से लौट कर मैं आप को लिखूंगा कि क्या मैं लखनऊ देख सकूंगा, और कब देख सकूंगा। पर यह आगे या पीछे एक बार फिर निश्चय ही होगा। आशा है आप अच्छे और आनन्द में होंगे। मेरा हार्दिक आशीर्वाद स्वीकार करें, और मुझे सदा अपना

१. द्र०—पूर्व पृष्ठ टिप्पणी ३।
२. यह विज्ञापन आगे पृष्ठ संख्या १३२ पर छपा है।

शुभचिन्तक जानें—

द० दयानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या १२६] पत्र

Gujrat,
16th January, 1878[1]

Dear Baboo,

With the consent and united opinion of Moonshi Inder Mani (a famous learned of Arabic and Persian) and other experienced persons of N. W. provinces, I feel necessity to inform you that the Veda-Bhasya must not be translated into English or Vernacular before reaching its completion, because if translated into English or Urdu then it will weaken the hearts of the people to study Sanskrit, thinking that they would be able to gain their object either by English or Urdu without caring for Sanskrit and Bhasha. Under such circumstances, we need not try to translate the work into English or Urdu, which instead of producing any good result, will bring forth something bad in the end.

Let the Bhashya first be reached its completion in pure Sanskrit and Bhasha only. afterwards, if it would be thought proper to translate into other languages, you all would get liberty to work according to you wishes with the view of public benefit in the world

Now better bookshop to send me semple of paper selected and suggested by Mr. Sham Ji Krishana Verma some time ago to be procurable at Rs 16 per ream In Bombay Settle the matter soon get agreement of the printers for working according to their words and mutual fixed terms,

---

१ [पौष शुक्ल १२ बुधवार, सं० १९३४।] मूल पत्र प्रो० धीरेन्द्र जी वर्मा के संग्रह में सुरक्षित है।

which all should be entered on the stamped paper without longer delay.

If Sham Ji Krishna Verma can work for me, I am very glad the engage him in my work even on extra pay and without caring for Rs. 10 or Rs. 15 more or less in the monthly account. Ask him if he likes to do so and hold a commitee of your friends for proposing some better scheme about the Veda Bhashya's publication if possible.

The first year ended and the 2nd is to be commenced from February, so I wish to fix subscription on receipt of your settlement with the printers etc. and tell me what subscription should be kept for both the Vedas according to their printing expenses. The buyers will be unwilling to pay high subscription if the translation be added and enlarged along with the Sanskrit one.

Gujrat, Futtehgurh and Wazeerabad have been blessed with Arya samajees in December last and January 1878, Address me Gujrat city to the care of post Master only and accept my Asheerbad,

Your well wisher
Pt Swami Dayananda Saraswatti
Sd. दयानन्द सरस्वती

To

B .H. Chinta Mani,
Bombay.

[भाषानुवाद]

गुजरात
१६ जनवरी १८७८[1]

प्रिय बाबू !

मुन्शी इन्द्रमणि (अरबी तथा फारसी के प्रसिद्ध विद्वान्) और उत्तर पश्चिम प्रान्त के अनुभवी व्यक्तियों की संयुक्त सम्मति और स्वीकृति से मैं आपको सूचना देने की आवश्यकता अनुभव करता हूं कि सम्पूर्ण होने से पूर्व वेदभाष्य का अनुवाद अंग्रेजी या वर्नाक्यूलर में नहीं करना चाहिए।

---

१. पौष शुक्ल १२, बुधवार, १९३४।

क्योंकि यदि अंग्रेजी या उर्दू में अनुवाद किया गया, तो इस से लोग संस्कृत और भाषा के अध्ययन में निरुत्साह हो जावेंगे, क्योंकि वे सोचेंगे संस्कृत और भाषा के बिना ही अंग्रेजी या उर्दू के द्वारा ही हम अपना उद्देश्य प्राप्त कर लेंगे। ऐसी स्थिति में हमें ग्रन्थ के अंग्रेजी या उर्दू में अनुवाद करने के प्रयत्न की आवश्यकता नहीं। जिस से सुपरिणाम के स्थान पर अन्त में दुष्परिणाम प्राप्त हो। पहले केवल शुद्ध संस्कृत और भाषा में पूर्ण हो जाने दीजिए, पश्चात् अन्य भाषाओं में अनुवाद करना आवश्यक समझा गया, तो आप सब अपनी इच्छानुसार संसार में जनहित की दृष्टि से कार्य करने में स्वतन्त्र होंगे।

कुछ समय पूर्व श्याम जी कृष्ण वर्मा ने मुझे कागज का नमूना भेजने के लिए एक नई अच्छी दुकान बम्बई में चुनी तथा बताई है। जहां से १६ रुपया प्रति रिम के हिसाब से मिलेगा।

इस मामले को आप शीघ्र तय कर लीजिए। और छापनेवालों के साथ उनके तथा पारस्परिक निश्चय के अनुसार जो शीघ्र ही स्टाम्पकागज पर लिखे होने चाहिएं, समझौता कर लीजिए।

यदि श्याम जी कृष्ण वर्मा मेरे कार्य में लग गए, तो मैं मासिक व्यय में १०, १५ रुपयों का न्यूनाधिक पर न विचार कर अतिरिक्त वेतन पर भी अपने काम पर प्रसन्नतापूर्वक लगा लूंगा। उन्हें पूछ लीजिएगा कि क्या वे ऐसा करना चाहते हैं? और यदि सम्भव हो सके तो अपने मित्रों की एक सभा बुलाइये, जो वेदभाष्य के प्रकाशन के विषय में कोई और अच्छी योजना प्रस्तुत करे।

प्रथम वर्ष समाप्त हुआ और अब द्वितीय वर्ष फरवरी से आरम्भ होने वाला है। अतः मैं छापनेवालों के साथ समझौते की प्राप्ति के पश्चात् चन्दा निश्चित करना चाहता हूं, और बतलाइये कि छपाई व्यय के अनुसार दोनों वेदों के अंकों के लिए क्या चन्दा रक्खा जावे?

यदि अनुवाद संस्कृत भाग के साथ जोड़ कर बढ़ा दिया जाय, तो सम्भव है ग्राहक लोग अधिक चन्दा न देना चाहेंगे।

गुजरात फतेहगढ़ और वजीराबाद में गत दिसम्बर और जनवरी सन् १८७८ में कुछ लोग आर्यसमाजी हो गए हैं। मेरा पता द्वारा "पोस्ट-मास्टर गुजरात सिटी" केवल इतना ही है, और [मेरा] आशीर्वाद स्वीकार करें।

आप का शुभचिन्तक
दयानन्द सरस्वती

सेवा में—
श्री-एम-चिन्तामणि
बम्बई

—:०:—

[पूर्ण संख्या १३०] पत्र-सारांश

[माधोलाल][1]

पञ्जाब के हाता में बहुत से शहरों मे समाज कायम हो चुका है। और बराबर तादाद बढ़ती हुई चली जायेगी। मेरा आशीर्वाद ग्रहण करो, और अपनी हालत से हमेशा वाकिफ रक्खो।

गुजरात
२० जनवरी १८७८[2]

—.०.—

[पूर्ण संख्या १३१] पत्रांश

[माधोलाल][3]

"पञ्जाब से लौट कर जब मैं बंगाल हाता में आऊंगा, तुम्हारी मुलाकात से जरूर खुशी उठाऊंगा। तुम्हारी कोशिश और इच्छा अपने देशी भाईयों की उन्नति में देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। सकल सृष्टि का कर्ता आप को स्वस्थ और हराभरा रक्खे। तुम्हारी यह इच्छा देखकर कि तुम अपने देश की अवस्था उत्तम करने का यत्न करते हो, मुझे ऐसा आनन्द हुआ कि वर्णन नहीं कर सकता।

---

१. प० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित्र पृष्ठ ३५७, ३५८ हिन्दी स० पृष्ठ ३६७ पर इतना अंश उद्धृत है।

२. माघ कृष्ण २, रविवार, सं० १९३४।

३. प० लेखराम कृत उर्दू जीवनचरित्र पृ० ३५८, हिन्दी स० पृष्ठ ३६७ पर इतना अंश छपा है। उसमें लिखा है कि पत्र के पूर्व भाग में "पुस्तकें भेजने का उल्लेख है।"

४. पूर्णसंख्या १३०, १३१ के पत्रों का माधोलाल जी के द्वारा दिया गया उत्तर तीसरे भाग में देखें।

इस में कुछ सन्देह नहीं कि तुम इस जीवन में इस के फल को चखोगे। तुम सब को मेरा आशीर्वाद।

दयानन्द सरस्वती

गुजरात
२८ जनवरी १८७८[1]

—:o—

[पूर्ण संख्या १३२]   विज्ञापन[2]

सब सज्जनों को विदित हो कि आगे भूमिका के अङ्क नम्बर १२, १३ और १४ छपने को बाकी रहे हैं। सो फाल्गुण चैत्र और वैशाख मे छप चुकेंगे। इसके आगे ज्येष्ठ महीने से लेकर अङ्क १ ऋक् और अङ्क १ यजुर्वेद के मन्त्रभाष्य के छपा करेंगे। इसमें एक २ अङ्क का एक वर्ष मे रुपये डाक महसूल सहित ४) चार चार रहेंगे। जो एक ऋग्वेद का अङ्क लिया चाहें, सो ४) लाजरस कम्पनी काशी वा स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के पास भेज देवें। और जो कोई यजुर्वेद का ही १ अङ्क लिया चाहे, सो ४) रु० गत वर्ष के और ४) रु० अगले वर्ष के भेज देवें। उनको आरम्भ से आज पर्यन्त और विक्रम के संवत् १९३५ के माघ पर्यन्त प्रतिमास एक २ अङ्क मिलता जायेगा। और जो दोनों वेद को लिया चाहे वे ८ रु० भेज देवें। परन्तु जो ऋग्वेद का अङ्क लेते हैं और दूसरे यजुर्वेद का भी भूमिका सहित लिया चाहें, वे १२) रु० आगे के वर्ष के भेज देवें। ऐसे ही जो २ एक वेद के नवीन ग्राहक हों, वे भी ८) रु० दोनों वर्ष के भेज। और जो भूमिका एक तथा मन्त्रभाष्य दोनों लेवें, वे ११)[3] रु० भेज देवें। और जो दो भूमिका सहित दोनों अङ्क लिया चाहें, वे दोनों वर्ष के १६) रु० भेजें। और जो केवल

---

१. पौष बदी १० सोम, संवत् १९३४। यही पत्र स्वामी सत्यानन्द जी कृत जीवनचरित पर भी कुछ आगे-पीछे करके छापा गया है। वहां पौष सु० १५ सं० १९३४ तिथि दी है। यह तिथि अशुद्ध दी गई है। हमने विक्रम संवत् की ठीक तिथि दी है।

२. ऋ० भाष्यभूमिका अंक ११ के अन्त मे छपा।

३. यहां १२) रु० होने चाहियें।

भूमिका मात्र लिया चाहें, वे ४।।।—) रु० देकर लेवें।[1]

ऋग्वेद के १० सूक्त पर्यन्त और यजुर्वेद के १ अध्याय पर्यन्त का भाष्य संवत् १९३४ मि० माघ वदि १३ गुरुवार तक बन चुका है।[2]

और भूमिका भी बन कर तैयार हो गई। आगे प्रतिदिन मन्त्र-भाष्य बनाया जाता है।[3]

—:०:—

[पूर्ण संख्या १३३] दूसरा विज्ञापन[4]

जिन ग्राहकों ने पुस्तक लेके अब तक दाम नहीं भेजे हैं, उन को उचित है कि शीघ्र भेज देवें। नहीं तो उन के पास दाम लेने के लिये पत्र वा मनुष्य भेज के लिया जायगा, और उसका मार्ग-खर्च भी उन से लिया जायगा। इससे उचित है कि वे शीघ्र भेज देवें। आगे जैसा कागज़ भाष्य में अब लगाया जाता है, इस से भी उत्तम मन्त्रभाष्य में लगाया जायगा।

—:०:—

[पूर्ण संख्या १३४] पत्र

लाला जीवनदास[5]

आज की तारीख मुलतान से भी एक चिट्ठी डाक्टर जसवन्त राय साहब की आ गई है। उस ओर जरूर जाना पड़ेगा।

गुजरांवाला

९ फरवरी १८७८[6]

—:०:—

१. इस और अगले पूर्ण संख्या १३३ विज्ञापन का संकेत पूर्ण संख्या १२९ के पत्र में है।

२. ३१ जनवरी १८७८। तुलना करो पृ० ६४ पूर्ण संख्या ७४।

३. यह अन्तिम भाग छपने को पीछे भेजा गया होगा।

४. यह विज्ञापन पिछले विज्ञापन के साथ ही ऋ० भा० भू० अंक ११ के अन्त में छपा है।

५. पं० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित पृष्ठ ३६५, हिन्दी सं० पृष्ठ ४०४।

६. माघ शु० ७ शनिवार सं० १९३४।

[पूर्ण संख्या १३५] तार

[1]कुछ दिन और लाहौर मे ठहरकर हम आपको सूचना देंगे।

[लाहौर ?, ९ फरवरी[2] १८७८ के पश्चात्]

—:o—

[पूर्ण संख्या १३६] पत्रांश

लाला जीवनदास[3]…… …

इस स्थान में प्रतिदिन व्याख्यान होता है। अभी तक कोई विशेष बात लिखने योग्य नजर नहीं आती है, फिर थोड़े काल में लिखा जावेगा। आज ६ बजे से पादरी लोगों से बहस होगी।

१६ फरवरी १८७८[4] दयानन्द सरस्वती

गुजरांवाला

—:o:—

[पूर्ण संख्या १३७] विज्ञापन[5]

एक विज्ञापन जो गतमास के अङ्क ११ में मन्त्रभाष्य के नियम विषय में दिया गया था, उस में कुछ भाष्यभूमिका के नियम बदल दिए गए थे, परन्तु उससे बहुधा सज्जनों को भ्रम होकर वे लोग इस भाष्यकार के आशय से विरुद्ध कुछ का कुछ ही समझ गये थे। अर्थात् यह जाना कि यजुर्वेद की भूमिका पृथक् दूसरी होगी। इस शङ्का के निवारण करने के अर्थ यह विज्ञापन फिर दिया जाता

---

१ यह तार मुलतान के भद्र पुरुषों द्वारा मुलतान बुलाने के लिये दिये गये तार के उत्तर में भेजा था। द्र०—प० लेखरामजीकृत जीवनचरित, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ४०५।

२ इस तारीख का ऋ० द० का एक पत्र छपा है। जिसमें ऋ० द० ने मुलतान मे पत्र आने की सूचना दी है। उस समय वे गुजरांवाला में थे। तत्पश्चात् लाहौर गये, वहा ३ मार्च से १२ मार्च तक रहे। यह तार सम्भवत: गुजरांवाला या लाहौर से दिया होगा।

३. प० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित्र पृ० ३६२, हिन्दी सं० पृष्ठ ४०१ पर उद्धृत।

४. फाल्गुन कृ० २ सं० १९३४।

५. यह विज्ञापन ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के १२ वें अङ्क के अन्त में है। सम्भवत: यह फाल्गुन सं० १९३४ में लिखा गया था।

है कि भूमिका चारों वेदों की एक ही है, जो कि छपकर १२ अङ्को मे ग्राहकों के पास पहुंच चुकी, और बाकी रही हुई आगे वैशाख तक छपकर सम्पूर्ण हो जावेगी। इसी एक भूमिका को कदाचित् कोई नवीन वा पुराना ग्राहक फिर लिया चाहें, अपने किसी दूसरे विचार से, अथवा दोनो वेदो में अलग २ लगाने को, तो उनके लिए मोल का नियम आगे को बदल दिया गया है। दूसरी भूमिका नवीन कोई नहीं बनती है। बाकी नियम जैसे अङ्क ११ के विज्ञापन मे छपे हैं, वैसे ही ठीक २ समझ लेना।

—:०:—

[पूर्ण संख्या १३८] नोटिस[1]

सब सज्जन लोगों को विदित हो कि इसके आगे, अर्थात् सं० १९३५ ज्येष्ठ महीने से लेके वेदभाष्य उत्तम कागज और अक्षरों से युक्त मुम्बई में छपा करेगा। हमारी ओर से इस काम के प्रबन्ध करने वाले प्रधान आर्य्यसमाज के रा० रा० बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि जी स्थापित किये गये हैं। उनका ठिकाना मुम्बई बाहर कोटघर नम्बर ६ मेडोस्ट्रीट फोर्ट का है। वहां से सब ग्राहकों के पास पूर्वलिखित ठिकानों में यथोचित काल में प्रति मास अङ्क पहुंचते रहेंगे। और जो अङ्क ११ वें में नोटिस[2] दिया गया था कि भूमिका के अङ्क नम्बर १२-१३ और चौदह १४ वां छपने को बाकी रहे हैं, सो अनुमान अधिक होने से अङ्क १५वें में भूमिका पूरी होगी। सो अगले महीने में अङ्क १ ऋग्वेद के मन्त्रभाष्य और अङ्क १५ वां भूमिका का दोनों साथ छपेंगे। आषाढ़ से लेके १ ऋक् और १ यजुर्वेद का मन्त्रभाष्य साथ २ प्रतिमास बराबर छपा करेंगे। जो कोई केवल भूमिकामात्र लेंगे, वे रु० ५) देके ले सकते हैं। और जो मन्त्रभाष्य दो लेंगे और भूमिका १, वे दोनों वर्ष के लिये ११)देंगे। जिन्होंने सं० १९३४ का वार्षिक मूल्य दिया है, और दो मन्त्रभाष्य लेंगे, वे सम्वत् १९३५ का रु० ७), और जो एक लेंगे वे ४) देंगे। और जो नवीन ग्राहक होंगे वे इन दोनों

---

१. यह विज्ञापन ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के अङ्क १३ के अन्त में छपा है। सम्भवतः यह विज्ञापन चैत्र १९३४ में लिखा गया था।

२ यह नोटिस = विज्ञापन पूर्ण सख्या १३२ पर छपा है।

वर्षों का एक पुस्तक का मूल्य आठ ८) रु० और दोनों का रु० ११) देंगे। और यह भी जानना चाहिये कि चारों वेद की भूमिका एक ही है। आगे मुम्बई उक्त बाबू जी और स्वामी जी के पास पत्र भेजने से नवीन गाहकों को वेदभाष्य मिला करेगा। और इन दोनों में से एक के पास दाम भी भेजना होगा।

—०

[पूर्ण संख्या १३९] पत्र-सारांश

[·····················मुलतान]

अभी कुछ दिन लाहौर ठहरेंगे, तत्पश्चात् आवेंगे।[1]

—:०:—

[पूर्ण संख्या १४०] पत्र-सारांश[2]

पं० राम नारायण जी आनन्द
रहो

५० संस्कारविधि लाला वल्लभ दास जी के पास लाहौर भेज-दीजिये।......

१५ मार्च १८७८ ह० दयानन्द सरस्वती
मुलतान

—:०:—

[पूर्ण संख्या १४१] पत्रांश

लाला पोहलोराम जी[3]———

——————————

मुलतान में समाज होने वाला है। सो जानोगे। व्याख्यान प्रतिदिन हुआ करता है। नवीन समाचार कुछ नहीं। सब

---

१. यह निर्देश प० देवेन्द्रनाथ स० जी० च० पृष्ठ ४६७ पर है।

२. इस पत्र की सूचना ऋ० द० के १३ अप्रैल १८७८ के पूर्ण संख्या १५० पत्र में मिलता ही है।

३ प० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित पृ० ३६६, हिन्दी स० पृष्ठ ४०८ पर उद्धृत। यह पत्र गुजरावाला के मन्त्री लाला पोहलो-राम के नाम है।

सभासदों को नमस्ते।

२६ मार्च १८७८[1] दयानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या १४२] विज्ञापन-सूचना

पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिये आह्वानार्थ।[2]

—:०:—

[पूर्ण संख्या १४३] पत्र

श्रीयुत मूलराज, जीवनदास, साईं दास बलदास जी आनन्द रहो।[3]

आगे रामरक्षा से पत्र मिल सकेंगे, तो भेज दिये जायेंगे, वा नवीन लिखवा कर भेज देंगे। परन्तु जैसे आज पर्य्यन्त नहीं छपे, वैसे हों तो परिश्रम व्यर्थ है। जैसा अन्तरंग सभा के नियमों का झमेला आज तक पूरा नहीं हुआ है ऐसा न हो। इस लिखने का प्रयोजन यह है कि जो काम जिस समय करना चाहिये, वह उस समय में होने से सफल हो जाता है। इसलिये समय पर काम करना बुद्धिमानों का लक्षण है। यहां बहुत आनन्द में हम लोग हैं। आशा है कि आप लोग भी आनन्द में होंगे।

एक काम यह आवश्यक है कि इस मुन्शी से यह काम ठीक २ नहीं हो सकता। इस लिए एक मुन्शी अंग्रेजी फारसी और नागरी भाषा का पढ़ा हुआ, हिसाब, नकशा निकालना भी जानता हो, जो ऐसा न मिल सके, तो अंग्रेजी फारसी, और उर्दू तो ठीक जानता हो कि चिट्ठी पत्र ठीक २ पढ़ और लिख सके। वह आलसी न हो, और जिसका स्वभाव किसी प्रकार बुरा न हो। उसका मासिक २५) रु० से अधिक न होना चाहिये। उस को आप चारों जने ध्यान से २५)रु० और बीस दोनों के बीच में निश्चित करके मुझ को लिखिये। यहां व्याख्यान नित्य होते हैं। समाज होने का भी

---

१. चैत्र कृष्ण ११ शुक्रवार सं० १९३४। यह पत्र मुलतान से भेजा गया।

२. इसकी सूचना प० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ४६७ में है।

३. प० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित पृ० ३७० हिन्दी सं० पृष्ठ ४१० पर उद्धृत।

कुछ २ सम्भव है। मिति चैत्र [वदी] ११ सवत् १९३४, शनिवार[1], ता० २४ मार्च १८७८।

दयानन्द सरस्वती[2]

[पूर्ण संख्या १४४]　　विज्ञापनपत्र

आगे यह विचार किया जाता है कि संस्कृत विद्या की उन्नति करनी चाहिये ; सो विना व्याकरण के नहीं हो सकती। जो आज कल कौमुदी, चन्द्रिका, सारस्वत, मुग्धबोध और आशुबोध आदि ग्रन्थ प्रचलित हैं, इनसे न तो ठीक ठीक बोध और न वैदिक विषय का ज्ञान यथावत् होता है। वेद और प्राचीन आर्ष ग्रन्थों से ज्ञान के विना किसी को संस्कृत विद्या का यथार्थ फल नहीं हो सकता। और इसके विना मनुष्य जन्म का साफल्य होना दुर्घट है। इसलिए जो सनातन प्रतिष्ठित पाणिनीय अष्टाध्यायी महाभाष्यनामक व्याकरण है, उसमें अष्टाध्यायी सुगम संस्कृत और आर्य भाषा में वृत्ति बनाने की इच्छा है। जैसे वेदभाष्य प्रति-मास २४ पृष्ठों में १ अङ्क छपता है, उसी प्रकार ४९ पृष्ठों[3] का अङ्क मुम्बई में छपवाया जाय, तो बहुत सुगमता से सब लोगों को महालाभ हो सकता है। इसमें हजारों रुपयों का खर्च और बड़ा भारी परिश्रम है। इसका मासिक मूल्य जो प्रथम दें, उनसे ॥=) आने के हिसाब से ७॥) रुपये लिए जायें। उधार लेने वालों से ॥।≡) के हिसाब से ११।) लिये जायें। विद्योत्साही सब सज्जनों की सम्मति प्रथम मैं जानना चाहता हूं। सो सब लोग अपना-अपना अभिप्राय जनावें[4] इति।　　—:०:—

---

१. चैत्र कृ० ११ शनिवार को द्वादशी भी थी। यहां २४ मार्च के स्थान में ३० मार्च होना चाहिये। २४ मार्च को चैत्र कृ० ६ रविवार था। पत्र मुलतान से भेजा गया था।

२. यह पत्र मुलतान से भेजा गया।

३. यहां '४८ पृष्ठ' होना चाहिये।

४ यह विज्ञापन ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका अङ्क १५, १६ के अन्तिम पृष्ठों पर छपा है, और सम्भवत: चैत्र सवत् १९३५ के अन्त में लिखा गया था। तब स्वामी दयानन्द सरस्वती लाहौर में थे। पञ्जाब छोड़ने के अनन्तर उन्होंने वृत्ति बनानी आरम्भ कर दी थी। वृत्ति की समाप्ति अनुमानत. सं० १९३६ तक हो गई। परन्तु ग्राहकों के अभाव से यह अब

[पूर्ण संख्या १४५] विज्ञापनपत्र[1]

सब को विदित हो कि चार वेदों की भूमिका पूरी हो गई है। इस अंक १५ और १६ में समाप्ति हुई। इसकी जिल्द जिसको इच्छा हो बंधवाले। जो एक वेद लेते हैं उनके पास आषाढ़ में ऋग्वेद का अङ्क नहीं आवेगा, क्योंकि ये दो अङ्क आये हैं। इसके आगे श्रावण से लेकर एक लेने वाले के पास एक एक और दो लेने वालों के पास दो-दो ऋग्वेद के और यजुर्वेद के अङ्क आया करगे। धीरज करो कि मुम्बई में बहुत अच्छा काम चलेगा। यह पहिला महिना था, इस लिये थोडी देर हो गई है। आगे बराबर मितिवार पहुंचा करेंगे इति।

— ० —

[पूर्ण संख्या १४६] पारसल-सूचना

[बाबू माधोलाल जी, दानापुर
२ पैकेट छपे आर्यसमाज १० नियम के भेजे।
३१ मार्च १८७८ (चैत्र सं० १९३४, कृष्ण १३)][2]

—:०:—

[पूर्ण संख्या १४७] पत्र

बाबू माधोलाल जी आनन्द रहो![3]

तक अप्रकाशित पड़ी है। हमने इसका अधिकांश भाग पढ़ा है, और कह सकते हैं कि ग्रन्थ अपूर्व है। इसी के आधार पर पीछे वेदांग-प्रकाश बना। इस वृत्ति का सम्पादन हमने प्रारम्भ किया था। तदुपरान्त डा० रघुवीर एम ए. ने इस के दो अध्याय सम्पादित किये। तीसरे और चौथे अध्याय का सम्पादन प० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जी ने (सन् १९३७-१९३९) किया। चतुर्थ अध्याय अभी [सन् १९८०] तक प्रकाशित नहीं हुआ। प्रतीत होता है कि श्री स्वामी ने वृत्ति के चार अध्याय ही शोधे थे।

१. यह विज्ञापन भी पूर्व विज्ञापन पूर्णसंख्या १२७ के साथ ही ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका अङ्क १५,१६ के अन्त में छपा था।

२ इस पैकट को भेजने की सूचना पूर्ण संख्या ५३ के पत्र में है।

३. यह पत्र प० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित पृ० ३६६ (हिन्दी सं० पृष्ठ ४०८, ४०९) पर पूरा छपा है। हमने इसे मूल पत्र से छापा है। यह मूल पत्र दानापुर समाज में सुरक्षित है। इससे प्रतीत होता है कि प०

आपका कुशल पत्र तारीख २४ वीं गतमास का उचित समय पर हमारे पास पहुंचा। विषय लिखा सो प्रकट हुआ। आपके इच्छा अनुसार कल्ल की तारीख ३१ मार्च को दो छपे हुए आर्य-समाज के मुख्य दश उद्देश्य अर्थात् नियमों के भेज चुके हैं। और आज एक कापी उक्त समाज के उपनियमों की भी भेजते हैं। सो निश्चय होता है कि दोनों कापिया नियम और उपनियमों की आप के पास अवश्य पहुंचेगी। रशीद शीघ्र भेज दीजिये। और इन नियमों को ठीक-ठीक समझ कर वेद की आज्ञानुसार सब के हित में प्रवर्त्त होना चाहिये, विशेष करके अपने आर्य्यावर्त्त देश के सुधारने में अत्यन्त श्रद्धा और प्रेम भक्ति सब के परस्पर सुख के अर्थ तथा उनके क्लेशों के मेटने में सत्य व्यवहार और उत्कण्ठा के साथ अपने ही शरीर के सुख दुखों के समान जान कर सर्वदा यत्न और उपाय करना चाहिये। सब के साथ हित करने का ही नाम परमधर्म्म है। इसी प्रकार वेद में बराबर आज्ञा पाई जाती है, जिसका हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि आदि यथावत् पालन करते, और अपनी सन्तानों को विद्या और धर्म के अनुकूल सत्य उपदेश से अनेक प्रकार के सुखों की वृद्धि अर्थात् उन्नति करते चले आये हैं। केवल इसी देश से विद्या और सुख सारे भूगोल में फैला है, **क्योंकि वेद ईश्वर की सब सत्य विद्याओं का कोश[1] और अनादि है**। बाकी सब व्यवहार तथा ईश्वर की उपासना आदि के विषय हमारी पुस्तकों और उपनियम आदि के देखने से समझ लेना उचित है। आपको हिन्दूमतसभा के स्थान में आर्य्य समाज नाम रखना चाहिये, क्योंकि आर्य्य नाम हमारा और आर्य्यावर्त्त नाम हमारे देश का सनातन वेदोक्त है।

आर्य्य के अर्थ श्रेष्ठ और विद्वान् धर्मात्मा के। हिन्दू शब्द यवन

लेखराम जी ने अनेक मूलपत्रों की प्रतिलिपियां ही ली थीं। मूलपत्र अपने लिए वे अपने साथ नहीं ला सके होंगे। हमारा पाठ मूल के सर्वथा अनुकूल है।

१ कई लोग आर्यसमाज के तृतीय नियम **"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है"** इसमें **'सब'** पद को प्रक्षिप्त मानते हैं, वे वस्तुतः भ्रान्त हैं। यह इस वाक्य से, तथा पूर्ण संख्या १७३ (प्रारम्भिक सदर्भ) के **'सर्वसत्यविद्या-कोशेषु वेदेषु'** वाक्य से स्पष्ट है। अतः तृतीय नियम में उल्लिखित 'सब' पद ऋषि दयानन्द का ही रखा हुआ है, यह निश्चित है।

आदि ईशंक लोगों का बिगाड़ा बदला हुआ है, जिसका अर्थ गुलाम काफर और काला आदमी आदि विचार कर नाम अपनी सभा का आर्य्य समाज दानापुर रख कर वेदोक्त धर्मों पर और सब सभासदों में परस्पर नमस्ते कहना चाहिये, सलाम व बन्दगी नहीं। इति। ता० १ अप्रैल सन् १८७८ ई०।[1]

ह० दयानन्द सरस्वती
मुलतान

:o:

[पूर्ण संख्या १४८] पारसल-सूचना

[बाबू माधोलाल जी दानापुर

आर्यसमाज के उपनियम की एक प्रति।

१ अप्रैल १८७८ [सं० १९३४, चैत्र कृष्णा १४]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या १४९] पत्र

बाबू माधोलाल जी आनन्द रहो!

पत्र आप का ता० ७ अप्रैल का पास हमारे पहुंचा। विषय मालूम हुआ। नीचे लिखी हुई पुस्तकें आपके पास भेजी जाती हैं। इनको क्रमपूर्वक समझ कर रसीद हमारे पास शीघ्र भेजिये लाहौर के पते से—

१—सत्यार्थप्रकाश	२॥)	१ आर्योद्देश्यरत्नमाला	)॥
१—संस्कारविधि	१॥=)	१—मेले चांदापुर की उर्दू में	—)।
१—आर्य्याभिविनय	॥)	१—प्रश्नोत्तर हलधर[2]	—)
१—सन्ध्योपासन	।=)		
कुल्ल दाम ७ पुस्तक	५≡)॥।		
डाकमहसूल	।—)॥।		

महसूल डाक सहित

कुल्ल दाम ५॥—)॥।

---

१ चैत्र कृष्ण १४ सोमवार सं० १९३४। यह पत्र मुलतान से भेजा गया।

२ यह पुस्तक न हमें उपलब्ध हुई, और नाही कहीं देखने को मिली। इस विषय में हमारे 'ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' नामक ग्रन्थ में पृष्ठ १७५, १७६ देखें।

पांच रुपये नौ आने और नौ पाई हुए। बड़ी प्रसन्नता[1] की बात हुई कि आपने अपनी सभा का नाम आर्य्यसमाज रक्खा है। अब आप की दृष्टि देश के सुधार पर होनी चाहिये[1]। अग्रे किमधिकम् इति। ता० १२ अप्रैल सन् १८७८ ई०[2]।

ह० दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या १५०] पत्र

पं० रामनारायण जी[3] आनन्द रहो।

[ता०] १५ मार्च को हमने एक चिट्ठी आप [के पा]स मुलतान से भेजी थी[4]। उसमें यह [लिखा] था कि ५० पचास संस्कारविधि [लाला] वल्लभदास जी के पास लाहौर [भे]ज दीजिये। परंतु आज की मिति [तक] न तो पुस्तकें पहुंची और न उत्तर [हमा]री चिट्ठी का आया। मालूम नहीं कि उक्त पत्र आपके पास पहुंचा वा नहीं जो न पहुंचा हो तो इस पत्र के देखते ही (५०) पचास पुस्तकें संस्कारविधि की और (५०) पुस्तकें आर्य्याभिविनय के पास लाला वल्लभदास खजानची आर्य्यसमाज लाहौर के नाम शीघ्र भेज दीजिये। विलम्ब न हो। क्योंकि यहां उक्त पुस्तकें नहीं रहीं और लोग बहुत मांगते हैं। हमारे पास एक पत्र [बम्बई के कोशाध्यक्ष का][5]—मिति फाल्गुण कृष्णा ५ सम्वत् १८३४ वि० का लिखा हुआ आया था।[6] उसके देखने से मालूम हुआ कि आपके

---

१. 'प्रसन्नता'—से लेकर 'चाहिये' तक भाग पं० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित के पृ० ३७०, हिन्दी सं० पृष्ठ ४०१ पर छपा है। पं० लेखराम जी ने इस की प्रतिलिपि ही की होगी। मूल पत्र दानापुर समाज के संग्रह में अब भी सुरक्षित है। वहीं से लेकर हमने इसे छापा था।

२. चैत्र शु० १० शुक्रवार सं० १९३५। यह पत्र मुलतान से भेजा गया।

३. यह पण्डित रामनारायण को भेजे पत्र की प्रतिलिपि है, जो परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान है।

४. यह पत्र हमें प्राप्त नहीं हुआ।

५. यह कोष्ठक मूल पत्र में ही है।

६. यह पत्र हमें नहीं मिला।

चचा पडित सुन्दरलाल जी [कि] नाम एक पार्सल पुस्तकों का कि [जिस] में १०० सौ पुस्तक आर्य्याभिविनय कुछ और २ पुस्तकें भी थी भेजा [गया था] सो जो उक्त पारसल पाथा हो तो लिखिये कि उसमें कौन २ पुस्तकें और कितनी २ थीं। उसी पार्सल में से हमारे लिये आर्य्याभिविनय लाला वल्लभ दासजी के पास भेज दीजिये। अर्थात् कुल्ल पुस्तक संस्कारविधि ५० पचास कुल्ल पुस्तक आर्याभिविनय ५० पचास ···· ·· सब एक सौ पुस्तकें १०० भेजिये, आगे मुलतान में भी आर्य्यसमाज हो गया। और ता० ११ वीं अप्रेल को हम लाहौर में आ गये कुछ दिन यहां ठहरकर पूर्व को लौटेंगे। पंडित सुन्दरलाल जी आदि से हमारा आशीर्वाद कहना।

ता० १३ अप्रेल सन् १८७८ ई०

ह० दयानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या १५१] पत्र

स्वस्ति श्रीयुतानन्तघगुणालङ्कृतेभ्य सनातनसत्यधर्म्मप्रियेभ्यः पाखण्डमतनिवृत्तचित्तेभ्योऽद्वैतेश्वरोपासनमिच्छुभ्यो बन्धुवर्गेभ्यो महाशयेभ्य श्री युतहेनरी एस् ओलकाटाख्यप्रधानादिभ्यः श्री मन्मेडम एच् पी बिलावस्टवयाख्यमन्त्रिसहितेभ्य. थीयोसोफीकल-सोसाईटयाख्यसभासद्भ्यो दयानन्दसरस्वतिस्वामिन[1] आशिषो

---

१. दयानन्दसरस्वतीस्वामिनः में ह्रस्वत्व ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम् (अष्टा० ६।३।६३) के पाणिनीय नियम से बहुल ग्रहण से जानना चाहिये। अन्यत्र भी इस प्रकार के ह्रस्वत्व के अनेक प्रयोग उपलब्ध होते हैं। यथा लक्ष्मिवर्धनः (रामा० ११८।२७)। इस पर टीकाकार गोविन्दराज लिखता है ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलमिति ह्रस्वः। तिलक टीका मे लिखा है—ह्रस्व आर्षः। हमारे मित्र पण्डितप्रवर पद्मनाभ राव जी (आत्मकूर कर्नूल-आन्ध्र) ने २६ ९ ६७ के पत्र में कतिपय एतत् सदृश प्रयोगों का निर्देश किया है। यथ—कथयत द्राग् लक्ष्मिभर्तुर्गुणान् (प्रचण्डहृदय नाटक अङ्क १। अलं प्रकोपेन······ ··· स लक्ष्मिनाथोऽनुनयन्नुवाच (मल्लिनाथकृत-शृङ्गारदीपिका)। 'अपि लक्ष्मिकान्तिरिति किं नितरां ·· ·· ' 'अतएव भी लक्ष्मिनाथ ! व्रजेति' (डिण्डिम-प्रयोग)।

भवन्तुतमाम् ॥

शमत्रास्ति तत्र भवदीयं च नित्यमाशासे ॥

यच्छ्रीमद्भिः श्रीमन्महाशयमूलजीठाकरशीहरिश्चन्द्रचिन्तामणितुलसीरामयादवज्याभिधानानां द्वारा पत्रं[1] मन्निकटे सम्प्रेषितं तद्दृष्ट्वाऽत्यन्त आनन्दो जातः ॥

अहो अनन्तधन्यवादार्हैकस्य सर्वत्रैकरसव्यापकस्य सच्चिदानन्दानन्ताखण्डाजनिर्विकाराविनाशन्यायदयाविज्ञानादिगुणाकरस्य सृष्टिस्थितिप्रलयमुख्यनिमित्तस्य सत्यगुणकर्मस्वभावस्य निर्म्मिताखिलविश्वस्य जगदीश्वरस्य कृपया पञ्चसहस्रावधिसंवत्सरप्रमितव्यतीतात् कालान्महाभाग्योदयेनासमक्षव्यवहाराणामस्मत्प्रियाणां पातालदेशे निवसतां युष्माकमार्य्यावर्त्तनिवासिनामस्माकं च पुनः परस्परं प्रीत्युद्बोधोपकारपत्रव्यवहारप्रश्नोत्तरकरणसमय आगतः । मया श्रीमद्भिः सहातिप्रेम्णा पत्रव्यवहारं कर्तुं स्वीक्रियते । अतः परं भवद्भिर्यथेष्टं पत्रप्रेषणं श्रीयुतमूलजी ठाकरश्याख्यहरिश्चन्द्रचिन्तामण्यादिद्वारा मन्निकटे कार्य्यम् । अहमपि तद्द्वारा श्रीमतां समीपे प्रत्युत्तरपत्रं प्रेषयिष्यामि । यावन्मम सामर्थ्यमस्ति तावदहं साहाय्यमपि दास्यामि । भवतां यादृशं कृश्चीनाख्यादिसम्प्रदायेषु मतं वर्त्तते तत्र ममापि तादृशमेवास्ति । यथेश्वर एकोऽस्ति तथा सर्वैर्मनुष्यैरेकेनैव मतेन भवितव्यम् । तच्चैकेश्वरोपासनाकरणाज्ञापालनसर्वोपकारं सनातनवेदविद्याप्रतिपादितम् आप्तविद्वत्सेवितं प्रत्यक्षादिप्रमाणसिद्धं सृष्टिक्रमाविरुद्धं न्यायपक्षपातरहितधर्म्मयुक्तमात्मप्रीतिकरं सर्वमताविरुद्धं सत्यभाषणादिलक्षणोज्ज्वलं सर्वेषां सुखदं सर्वमनुष्यैः सेवनीयं विज्ञेयम् ॥ अतो भिन्नानि यानि क्षुद्राशयच्छलाविद्यास्वार्थसाधनाधर्म्मयुक्तं मनुष्यैरीश्वरजन्ममृतकजीवनकुष्ठादिरोगनिवारणपर्वतोत्थापनचन्द्रखण्डकरणादिचरित्रसहितानि प्रचारितानि सन्ति, तानि सर्वाण्यधर्म्ममयानि परस्परं विरोधोपयोगेन सर्वसुखनाशकत्वात् सकलदुःखोत्पादकानि सन्तीति निश्चयो मे । कदैवं परमेश्वरस्य कृपया मनुष्याणां प्रयत्नेनैषां

---

१ हैनरी एम० अल्काट का १८ फरवरी सन् १८७८ का पत्र । मूल पत्र अंग्रेजी में था । इसका हिन्दी अनुवाद तृतीय भाग में देखें ।

नाशो भूत्वाऽऽर्य्य परम्परया सेवितमेकं सत्यधर्म्ममतं सर्वेषां मनुष्याणां मध्ये निश्चितं भविष्यतीति परमात्मानं प्रार्थयामि। यदा श्रीमतां पत्रमागतं तदाहं पञ्चालदेशमध्यवर्त्तिलवपुरे न्यवात्सम्। अत्राप्यार्य्यसमाजस्था बहवो विद्वांस श्रीमतां पत्रमवलोक्यातीवाऽऽनन्दिता जाता.। नाहं सततमेकस्मिन् स्थाने निवसामि, तस्मात् पूर्वोक्तद्वारैव पत्रप्रेषणेन भद्रं भविष्यति॥ यद्यपि बहुकार्य्यवशान्ममावकाशो न विद्यते, तथापि भवादृशानां सत्यधर्म्मवर्धने प्रवर्त्तितशरीरात्ममनसां सर्वप्रियकरणे कृतैकनिष्ठानां सत्यधर्म्मोन्नत्या सर्वमनुष्यप्रियस्य कर्तृणां दृढोत्साहयुक्तानां श्रीमतामभीष्टकरणाय मयावश्य समयो रक्षणीय:, इति निश्चित्य परोपकाराय भवन्तो मया सहाहं च श्रीमद्भि: सह सुखेन पत्रव्यवहार कुर्य्यामित्यलमतिविस्तरलेखेन बुद्धिमद्वरेषु॥

श्री मन्महाराजविक्रमस्य पञ्चत्रिंशदुत्तरे एकोनविंशतितमे १९३५ संवत्सरे वैशाख-कृष्णपक्ष ५ पञ्चम्यामादित्यवासरे[1] पत्रमिदं लिखितमिति वेदितव्यम्॥

(दयानन्द सरस्वती)

भाषानुवाद

[2]श्रेष्ठ गुणों से युक्त, सत्य सनातनधर्म के प्रेमी, मिथ्या मत को छोड़ने पर उद्यत, एकेश्वर की उपासना के इच्छुक, बन्धुवर्ग, महाशय हेनरी एस० अलकाट प्रधान, और मैडम एच० पी ब्लवेट्सकी और थियोसोफिकल सोसाइटी के अन्य समस्त सम्मानित सदस्यों को दयानन्द सरस्वती की कल्याणदायक आशीष हो।

यहां आनन्द है, और आपके आनन्द के इच्छुक हैं। आपने महाशय मूल जी ठकर और हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के द्वारा हमारे पास जो पत्र भेजा है, उसे देखकर हमें बहुत आनन्द हुआ। सर्वशक्तिमान्, सर्वत्र एकरस व्यापक, सच्चिदानन्द, अनन्त, अखंड, अजन्मा, निर्विकार, अविनाशी, न्यायकारी, दयालु, विज्ञानी, सृष्टि स्थिति प्रलय के मुख्य निमित्त कारण, और सत्य गुण कर्म स्वभाववाले, निर्भ्रम, अखिलविद्यायुक्त जगदीश्वर को असंख्य धन्यवाद

---

१. २१ अप्रेल सन् १८७८। यह पत्र लाहौर से भेजा गया।

२. यह भाषानुवाद प० लेखराम रचित जीवनचरित हिन्दी स० पृष्ठ ८९६-८९८ से लिया है। यह भावप्रधान अनुवाद है। हमने कहीं-कहीं शोधा है।

है कि उसकी कृपा से लगभग पांच हजार वर्ष के पश्चात्, महाभाग्य के उदय होने से, हमारे प्रिय पातालदेश निवासी आपका (जिनका आपसी व्यवहार छूटा हुआ था), और हम आर्य्यावर्त निवासियों के फिर से आपसी प्रीति, उपकार, पत्रव्यवहार और प्रश्नोत्तर करने का समय आ गया। मैं आप से बड़े प्रेम से पत्र व्यवहार करना स्वीकार करता हूं। इसके पश्चात् आपकी जैसी इच्छा हो, पत्र लिखकर मूलजी और हरिश्चन्द्र जी के द्वारा भेज दें। मैं भी उन्हीं के द्वारा आप सज्जनों के पास पत्र भेजता रहूंगा। जहां तक मेरी सामर्थ्य होगी, वहां तक मैं सहायता भी दूंगा। आपकी जैसी ईसाइयत आदि मतों के विषय में सम्मति है वैसी ही मेरी भी सम्मति है। जैसे ईश्वर एक है, वैसे ही सब मनुष्यों का एक ही मत होना चाहिये। और वह यह है कि एक ईश्वर की उपासना करना, उस की आज्ञा का पालन, सब का उपकार करना, सनातन वेदविद्या से प्रतिपादित और आप्त विद्वानों द्वारा आचरित, प्रत्यक्ष आदि प्रमाण के अनुकूल सृष्टिक्रम के अनुकूल, न्याययुक्त तथा पक्षपात से रहित, धर्म से युक्त, आत्मा के लिये प्रीतिकर, और सब मतों द्वारा मान्य सत्य बोलना आदि लक्षणवाला, सबको सुख देने वाला है, और उसका पालन करना सब मनुष्यों के लिये आवश्यक है। इससे भिन्न अशुद्धहृदयता, छल, अविद्या, स्वार्थसाधन, तथा अधर्म से युक्त मनुष्यों द्वारा ईश्वर का जन्म लेना (अवतार होना)। मृतकों को जिलाना, कोढ़ियों को चंगा करना, पर्वत उठाना, चन्द्रमा के टुकड़े करने का खेल आदि बातें प्रचलित कर रखी हैं - ये सब अधर्म हैं। उनसे परस्पर शत्रुता होती है विरोध उत्पन्न होता है। सब प्रकार के सुख का नाश होता है, और सब प्रकार के दुःख उत्पन्न होते हैं यह हमने अच्छी प्रकार निश्चय कर लिया है। कब परमेश्वर की कृपा और मनुष्यों के प्रयत्न से इन बातों का नाश होकर सनातन आर्य्यों से सेवने योग्य, एक सत्यधर्म सब मनुष्यमात्र में प्रचलित होगा हम ऐसी परमात्मा से प्रार्थना करते हैं। जब आप सज्जनों का पत्र आया था, तब मैं पञ्जाब देश के लाहौर नगर में था। उस स्थान पर भी आर्यसमाज के बहुत विद्वानों को आप सज्जनों के पत्र का अध्ययन करके अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। मैं सदा एक स्थान पर नहीं रहता हूं इसलिये उसी पते से पत्र भेजना अच्छा होगा। यद्यपि काम की अधिकता के कारण मुझे अवकाश नहीं मिलता है, तो भी आप जैसे सत्यधर्म के बढ़ाने में प्रवृत्त तन मन धन से सबकी भलाई में कमर बांधे हुए, सत्यधर्म की उन्नति, और सब मनुष्यों को प्रेम करने में दृढ़ उत्साह से युक्त सज्जनों की इच्छा को

पूर्ण करने के लिये हमने अवश्य समय निकाल लिया है। ऐसा निश्चय जानकर परोपकार के लिये हम आपको सहायता और श्रीमानों के साथ पत्रव्यवहार सुख से करेंगे। बुद्धिमानों के लिये यही पर्याप्त है।

श्री महाराजा विक्रम के सं० १९३५, वैशाख कृष्ण ५, रविवार[1]

—:o:—

[पूर्ण संख्या १५२] पत्र

[2]स्वस्ति श्रीमदनवद्यगुणालङ्कृतमहाशयविद्वद्भ्य श्रीयुतकविवर्य्यदधिवाडियोपनाम[3]भूषित-श्यामलदासेभ्यो दयानन्दसरस्वतीस्वामिन आशिषः समुल्लसन्तुतमाम। शमत्र वरीवृत्यते, तत्रेश्वरानुग्रहेण भवदीयं च नित्यमाशासे। अत्र देशभाषया वृत्तान्तो विज्ञाप्यते।

कुशलपत्र आपका मि० चैत्र शु० ३ ता० ५ अप्रेल का उचित समय पर हमारे पास पहुंचा। लिखा सो क्रमपूर्वक प्रकट हुआ। पुस्तकें रेल द्वारा आपके पास २५ मार्च को भेज दी गई है, और पत्र भी पृथक्-पृथक् श्री पंड्याजी तथा लाला कालूरामजी खजानची नसीराबाद के पास भेज दिये गये थे, परन्तु आज की तारीख तक आपकी वा उक्त खजानचीजी की ओर से रसीद पुस्तकों की नहीं आई, कारण विलम्ब होने का मालूम नहीं। ऐसा जान पड़ता है कि श्री मोहनलाल विष्णुलाल पंड्याजी को कुछ काम अवश्य लग गया होगा। अब जो पुस्तकें पहुंची हों, तो रसीद और पहुंच उनकी लिख भेजना उचित है।

हमको इस बात के श्रवण करने से अत्यन्त आनन्द हुआ कि हमारे आर्य्यावर्त्त देश के श्रीमान् महाशय श्री महाराणाजी बड़े बुद्धिमान् हैं। परमात्मा उनका ऐश्वर्य्य प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त

---

१. २१ अप्रेल सन् १८७८।

२. ऋषि दयानन्द का यह पत्र डा० ब्रजमोहन जावलिया (राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर, उदयपुर) ने डा० श्री भवानीलाल भारतीय, मंत्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर को भेजा था। उन्होंने इसे 'परोपकारी' पत्र के आषाढ २०३५, जुलाई १९७८ के अङ्क में छापा था। मूलपत्र 'राजस्थानविद्यापीठ' उदयपुर के संग्रह में सुरक्षित है।

३. कविराज श्यामलदास का अवटक (उपगोत्र) दधिवाडिया था।

करे। अब हमारा कुछ काल लाहौर में वास करके एक पक्ष में पूर्व देश की ओर फिरने का विचार है। अग्रे किमधिकम्। पुरोहित पद्मनाथजी[1] तथा ठाकुर मनोहरसिंहजी[2] आदि सरदार लोगों से हमारा आशीर्वाद कह दीजिये। इति।

ता० २८ अप्रेल सन् १८७८ ई०

द: दयानन्द सरस्वती[3]

[4]हम लोग यहां अत्यानन्द में हैं। सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर आप लोगों को सर्वथा आनन्द में रक्खें।

—:०:—

[पूर्ण संख्या १५३] विज्ञापन-सारांश

[5]नगर के पण्डित यदि कोई (मेरी) बात वेदविरुद्ध समझते हों तो आकर निर्णय कर लेवें अन्यथा यह धर्म का विषय है। प्रत्येक को इसमें सहायता देनी चाहिये।

[अमृतसर, १५ मई १८७८ के पश्चात्]

— ० —

[पूर्ण संख्या १५४] पत्र

नं० ७०

पंडित सुन्दरलाल[6] रामनारायण जी आनंद रहो विदित हो कि हम तीन हुंडी ५१७॥) को आपके पास भेजते है, जिनमें ४००) की एक १००) की दूसरी १७॥) की तीसरी है, जल्दी रसीद हमारे पास भेज दो, और चार पांच दिन में लाजरस के

---

१. ये उदयपुर के निवासी थे।

२. ठा० मनोहरसिंह लावा सरदारगढ़ के थे।

३. पत्र में सब मिला कर ३१ पंक्तियां है। पत्र काली स्याही में लिखा है। स्वामी जी के हस्ताक्षर लाल स्याही में हैं।

४. ये दो पंक्तियां ऊपर हाशिये पर लिखी गई हैं।

५. यह मैंने (रामगोपाल सरिश्तेदार ने) सुना कि स्वामी जी ने एक विज्ञापन दिया है। पं० लेखराम जी कृत जीवन चरित हिन्दी अनुवाद पृष्ठ ३६६।

६. यह पण्डित सुन्दरलाल का भेजे पत्र की प्रतिलिपि है, जो परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान है।

हिसाब के कागज भी तुम्हारे पास भेजते हैं जब चिट्ठी लिखेंगे तो वहां जाकर हिसाब किताब कर लेना, हम बहुत प्रसन्न हैं ॥

संभवतु ॥ शुभमस्तु ॥

ज्ये० शु० १३ सं० १९३५ { दयानन्द सरस्वती अमृतसर }

तारीख १३ जून १८७८ ई०

—o—

[पूर्ण संख्या १५५] पत्र

नं० ७८ १

पंडित सुंदरलाल[1] रामनारायणजी प्रसन्न रहो कल 'एक चिट्ठी तुम्हारे पास लिखी गई कल हुंडी की रजिस्टरी कराकर भेजते हैं हुंडी का ब्योरा इस प्रकार है कि ३००) की १००) की १००) और १३॥ की ॥ कुल ४ हुंडी हैं जिसमें हुंडी ३००) और १००) की का पता है कि, सीताराम काशीराम के ऊपर गोपीनाथ गोकुलचंद्र की ओर से रक्खें स्वामी दयानंद सरस्वती मि० से० शु० १४ स० १९३५ दिन २१ पीछे धनी रुपये लेने बहूरे साईकल दास सो तुम्हारे पहुंचेगी ॥'
हम बहुत आनंद से हैं ॥

{दयानन्दसरस्वती}

ज्ये० शु० १४-३५ अमृतसर

ता० १४ जून १८७८ ॥

—:o:—

[पूर्ण संख्या १५६] शास्त्रार्थ की घोषणा

[2]'मंगलवार १८ जून सन् १८७८ को ६॥ बजे शाम के समय

---

१. यह पण्डित सुन्दरलाल को भेजे पत्र की प्रतिलिपि है, जो परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान है।

२ यह घोषणा स्वामी जी की आज्ञा से की गई। दिनांक १७ जून १८७८। प० लेखराम जी कृत जीवन चरित, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ३६८।

स्वामी जी पुस्तकों और वेदों सहित शास्त्रार्थ करने के लिये आवेंगे और वहां २॥ घण्टा ठहरेंगे और पुलिस का प्रबन्ध होगा। जिस पण्डित ने शास्त्रार्थ करना हो, पधारे और जब तक शास्त्रार्थ न होगा तब तक प्रतिदिन आना होगा अन्यथा उसके पश्चात् जो कुछ उचित होगा किया जायेगा। रईस लोग भी पधारें।

अमृतसर, १७ जून १८७८ बाबा नारायण सिंह
मन्त्री आर्यसमाज

o

[पूर्ण संख्या १५७] पत्र

न० १०२ १

पण्डित सुन्दरलाल[1] रामनारायण जी आनन्द रहो

विदित हो कि हम चार सूचीपत्र[2] तुम्हारे पास भेजते हैं जिनका विवेचन यह है कि पहिली में यह लिखा है कि लाजरस के यहां कितनी संख्याभाष्य हमारी बाकी हैं, दूसरी पृथक्२ हिसाब प्रत्येक अङ्क की है, तीसरी में हिसाब लाजरस के रुपये का है॥ सो अब आप काशी जाकर उनसे हिसाब समझ लेना ये हिसाब के कागज तो अपने पास रखना उनके कागज भी देख लेना हम उन्हीं के लिये प्रमाण हिसाब भेजते हैं और उनसे कह देना कि इसमें २०॥।=) वे भी शामिल हैं जो मीमो भेजने के पीछे १२) ज्वालाप्रसाद ने ४।=) राजकृष्ण मुकुरजी ने, तथा ४॥) प० जयनारायण वाजपेई ने, भेजे हैं॥ और प्रत्येक अङ्क अच्छी प्रकार से गिन२ सिंभाल लेना, उनको हुंडी और रुपये दे देना, वा तो जितने वहां जाओगे रुपये बाकी तुम्हारे पास भेज देवेंगे वा दस पंद्रह दिन पीछे भेज देवेंगे॥ सो रुपया लाजरस का १३४६—)॥ पाई, देना है जिसमें ५४०=) बाबत पंचमहायज्ञविधि की और ८०५॥।≡) बाबत वेदभाष्य की है। और पुस्तकें मीमो के अनुसार भलीभांति सिंभाल लेना॥ और उनसे कह देना कि स्वामी

---

१. यह पण्डित सुन्दरलाल को भेजे पत्र की प्रतिलिपि है, जो परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान है।

२. यहां चार सूची पत्र भेजने का उल्लेख मिलता है, परन्तु पत्र के साथ दो सूची पत्र संख्या २ और ४ के ही प्राप्त हुए। उन्हें आगे दिया जाता है।

जी ने दोबारा लिखा कि विज्ञापन पत्र का भी मीमो भेज दो सो क्यों नहीं भेजा इसका क्या कारण है और लाजरस साहब से पूछ कर जो विज्ञापन पत्र हों सो भी ले लेना ॥

लाजरस से पूछ देखना कि शुक्ल सरजू प्रसाद ने १००) की हुंडी उनके पास भेज दी वा नहीं ॥ बाकी रुपया अपने पास से देना हम बहुत जल्दी भेज देवेंगे ।

और चौथा सूचीपत्र उन पुस्तकों का है कि जो काशी में व्रजभूषणदासजी के यहां नयी सडक पर चौक के पास रक्खी हैं जब काशी जाओ उनसे भी सूची के अनुसार सब पुस्तक लेते आना और उनके पास भी चिट्ठी भेजते हैं वे तुम को दे देवेंगे सब सिंभाल कर ले लेना और हम बहुत आनन्द से हैं ॥

{ दयानन्दसरस्वती }

आ० ७ सं० १९३५

ता० २२ जून १८७८ ई० अमृतसर

2

The memo of the Ved Bhashya Bhomika that how many copies are in hand of Lazuras.

	Mantra[1]	No1	No2	No3	No4	No5	No6	No7	No8	No9	No10	No11	No12	No13	No14
Printed	3500	3100	3100	3100	3100	3100	3100	3100	3100	3100	3100	3100	3100	3100	3100
Sent to Subscribers	972	988	992	1061	1118	1121	1206	1204	1101	1091	1091	1099	1114	981	986
Cash sold	13	10	7	7	10	7	7	6	6	7	6	6	1	1	
	985	998	999	1068	1128	1128	1213	1210	1107	1098	1097	1105	1115	982	986
	2575	2102	2101	2032	1972	1972	1887	1890	1993	2002	2003	995	985	2118	2114
returned & refused	1	1	1	1	1	1	7	6	4	3	2	3	1	8	13
	2516	2103	2102	2033	1973	1973	1894	1896	1997	2005	2005	1998	1986	2126	2127
Sent to Swamiji	196	131	145	50	2	2	2	2	2	2	2	2	2	2	2
In hand	2320	1972	1957	1983	1971	1981	1892	1894	1995	2003	2003	1996	1984	2124	2125

दयानन्द सरस्वती

१ यहां वेदभाष्य के नमूने का अङ्क छपा था, वह अभिप्रेत है।

सूची उन पुस्तकों की जो काशी में व्रजभूषणदासजी के यहां रक्खी हैं

संख्या पुस्तक	नाम पुस्तक	संख्या	नाम पुस्तक
	जिल्द महाभारत की जिसमें ४ भारत की ४ सूची की ॥	१	वेदोक्तधर्म्मप्रकाशक
		१	व्यामोहविद्रावण
		१	छान्दोग्योपनिषत्
१	वैशेषिकदर्शन	१०	मीमांसादर्शन
१	आश्वलायनगृह्यसूत्र	१	भूगोलहस्तामलक
१	विषयवाद	२	मनुस्मृतिः ॥
१	मुक्तावली	१	दिधिति. जागदीशी ॥
१	कारिकावली ॥		
१	महाभाष्य ३ जिल्द		
१	जागदीशी		
४	सूचीपुस्तक		
१	उपनिषत् गुजराती अक्षरों में		
१	सांख्यप्रवचनभाष्य		
१	पातंजलयोगशास्त्र		

दयानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या १५८] पत्र-सारांश

[पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा

विदेश जाने से पूर्व जो हमारे पास रहकर वेद और शास्त्र के मुख्य विषय देख लेते, तो अच्छा होता][1]।

—:०:—

[पूर्ण संख्या १५९] पत्र

मन्त्री और सभासद आनन्द रहो![2]

---

१. यह पत्र का सारांश पूर्ण संख्या १६८ पर मुद्रित पत्र में दिया है।

२. यह पत्र आर्यसमाज गुजरांवाला के मन्त्री और सभासदों के नाम लिखा गया था। हमने इसे श्रीमान् पं० लेखराम जी रचित उर्दू जीवन-

प्रकट हो कि अब हम ११ जुलाई[1] सन् १८७८ बृहस्पतिवार को यहां से पूर्व को ओर प्रस्थान करेंगे, और जालन्धर, लुध्याना आदि नगरों मे मिलते हुए आगे को चले जावेंगे। सम्भव है कि दो चार दिन के लिए अम्बाला ठहर जावें। अब हमारा और आप लोगों का मिलाप केवल पत्र द्वारा ही हो सकेगा। इसलिये आप सदा पत्र भेजते रहना, तथा हम भी भेजा करेंगे। अब आप को लिखते हैं कि प्रतिदिन समाज की उन्नति करते रहो, क्योंकि यह बड़ा काम आप लोगों ने उठा लिया है। इसके परिणाम पर्य्यन्त पहुंचाने ही में सुख और लाभ है। यहां का समाज प्रतिदिन उन्नति पर है, और कई प्रतिष्ठित पुरुष सभासद हो गये हैं। यहां के पण्डितों ने शास्त्रार्थ के लिये सलाह की थी, सो वे सभा में न तो कुछ बोले, न कुछ बात का उत्तर दिया। केवल मुख दिखला कर चले गये। और यहां के लोगों ने, जो कई पोपों की ओर थे, हाकिम से आर्य्यसमाज की चुगली खाई थी। जिसका परिणाम सत्य के प्रताप से यह हुआ कि अब कोई आर्य्यसमाज की ओर आंख उठा कर भी नहीं देखता। सब सभासदों को नमस्ते।

२६ जून सन् १८७८।[2]

दयानन्द सरस्वती, अमृतसर।

:o:

[पूर्ण संख्या १६०] पत्र

नं० १२३ १

पण्डित सुन्दरलाल[3] रामनारायणजी आनन्द रहो

विदित हो कि आपके पास तीन वा चार जगह से हुंडी पहुंचने वाली हैं जब कोई हुंडी पहुंचे तो हमको इत्तला दे देना, अब आप यह लिखें कि ठाकुर भूपालसिंह वासि ग्राम ऐल पर्गना मोर्थल जिले अलीगढ़ ने आपके पास ३४) हुंडी भेजी वा नहीं इसका

चरित्र पृष्ठ ३३४, हिन्दी सं० पृष्ठ ३७३ से लिया है।

१. पूर्ण सं० १६४ तथा १६८ से पता चलता है कि स्वामी जी महाराज १५ जुलाई तक अमृतसर में विद्यमान थे।

२. आषाढ़ कृष्ण ११ बुधवार सं० १९३५।

३ यह पण्डित सुन्दरलाल को भेजे पत्र की प्रतिलिपि है, जो परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान है।

शीघ्र जवाब भेज देना और जब आप बनारस को जावें तो हमें लिखना और हम सब प्रकार से आनन्द हैं ॥

{ दयानन्दसरस्वती
अमृतसर }

२७ जू० १८७८

— ०.—

[पूर्ण संख्या १६१] पत्र

न० १३० १

पंडित सुंदरलाल[1] रामनारायण जी आनंद रहो

विदित हो कि हमने ता० २५ मई को एक प्रूफशीट यहां से बंबई को भेजा था सो आज तक नहीं पहुंचा, यह गफलत पोस्ट आफिस की है और पहले भी कई अंक वेदभाष्य के ग्राहकों के पास नहीं पहुंचाए ऐसा मालूम होता है कि यह काम चिट्ठीरसां आदि छोटे २ आदमियों में से किसी २ ने जो हमारी बात से चिड़ते हैं पक्षपात करके गुम कर दिये हैं अब प्रूफ भी ऐसे ही मारा गया और अब हम पोस्ट आफिस पर नालिश करेंगे, सो आप से पूछते हैं कि तुम्हारी क्या सम्मति है और ऐसे प्रूफ वा बुकपोस्ट, और चिट्ठी आदि का पता पोस्ट-आफिस मे किस रजिस्टर में मिल सकता है और नालिश किस जगह करे बंबई में वा अमृतसर में, या दोनो जगह से कहीं कर देवें, और हमारा नुकसान बहुत हुआ है कितने हर्जे की नालिश करें और क्या पैरवी करें जल्दी पत्र के देखते ही जवाब भेज दीजिये ॥ और काशी के हिसाब किताब के लिए चिट्ठी भेजी थी उसका क्या प्रबंध किया है ॥

{ दयानन्दसरस्वती
अमृतसर }

३० जू० ७८

— :०: —

---

१. यह पण्डित सुन्दरलाल को भेजे गये पत्र की प्रतिलिपि है जो परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान है।

## [पूर्ण संख्या १६२]		पत्र

न० १३३		[1]

पंडित सुंदरलाल[1] रामनारायणजी आनंद रहो

विदित हो कि कल हमने एक चिट्ठी पोस्ट आफिस की बाबत भेजी है[2] सो आप जल्दी उसकी सलाह लिखें कि क्या करना उचित है ॥

और हमने कई बार लाजरस को लिखा कि १६ पृष्ठ और विज्ञापन का हिसाब भेज दो सो उन्होंने कुछ नहीं लिखा इसलिए तुम जब जाओ तो इनका भी हिसाब समझ लेना ॥ और जब तुम बनारस जाओ तो हमको लिखना और जब वहां से आओ तब वहां का भी हाल लिखना ॥

वेदभाष्य अब बहुत जल्दी सब के पास पहुंचेगा ॥ और आपके पास जो ३४) की हुंडी पहुंची सो हमने जान लिया ॥

१ जुलाई स० १८७८		{ दयानन्दसरस्वती }

—०—

## [पूर्ण संख्या १६३]		पत्र

[1]

पंडित सुंदर [लाल] रामनारायणजी[1] आनंद रहो ॥

विदित हो कि चिट्ठी आपकी आई हाल मालूम हुआ हमने आज हिसाब की नकल करके लाजरस साहब के पास भी भेज दी है, और उनको लिख दिया है कि, हमारी ओर से पंडित सुंदर-लाल रामनारायण जी आपसे हिसाब समझने के लिये और पोथी लेने तथा रुपये देने के लिये नियत किये गये हैं, सो अब आप उनसे जिस तरह चाहें हिसाब समझ लेवें, और आप के पास जो हिसाब पृथक् पृथक् वेद के अंकों का तथा सन्ध्याभाष्य का भेजा गया है, वह बिल्कुल ठीक और दुरुस्त है, परन्तु जो हिसाब रुपये का भेजा गया है उसमें कुल रुपया लाजरस को देने के लिये १३४६ -)॥ लिखा था जिसमें से १८)॥ और वसूल हो गये हैं

---

१ यह पण्डित सुन्दरलाल को भेजे गए पत्र की प्रतिलिपि है, जो परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान है।

२. द्र०—पूर्व पृष्ठ २०४ पर पूर्णसंख्या १६१ का पत्र।

सो अब १३०८) लाजरस साहब को देना और बाकी है ॥ और लाजरस साहब को यह भी लिख दिया है कि आपके पास चिट्ठी वा हिसाब भेज ॥ फिर आप घर ही पर निश्चित करके हिसाब जाकर तै कर देना, और हम बहुत आनद में है ॥

हमने लाजरस साहब को काशिका का मूल्य दे दिया है जो आठवां अध्याय उसका छप चुका हो तो लेते आना ॥

दयानन्दसरस्वती

अमृतसर ८ जुला० १८७८

—०:—

[पूर्ण संख्या १६४] पत्र

ला० मोहनलाल प्रधान वा ला० साईदास मन्त्री आनन्दित रहो ।[1]

विदित हो कि परसों कई चिट्ठियां अमरीका की आई है ।[2] जिन में ६ चिट्ठियां पढ़ी गईं एक दाखला, एक नमूना, डिप्लोमा है । इसलिये कि जितने समाजों में प्रधान मन्त्री आदि हैं, सब की संख्या लिखी जावे । संख्या ४ की चिट्ठी आर्य्य लोगों के नाम है । जिस का विषय यह है कि आर्य्यसमाज थियासोफिकल सोसायटी के साथ लगाया गया । और इस का यह नाम स्थिर हुआ है कि "थियासोफिकल सोसायटी आफ आर्यसमाज आफ दि इण्डिया" । और यहां यह नाम रक्खा जावे कि आर्यवर्तीय आर्य-समाज आफ थियासोफिकल सोसायटी, और मुहर भी समाज की खुदवानी चाहिये । अच्छे होशियार मन्त्री और प्रधान लिखकर डिप्लोमा में लिखना चाहिये । और सोसायटी के नियमादि भी आते हैं । और सब समाजों में पत्र लिख भेजो कि सब अच्छे अच्छे बुद्धिमान् प्रधान और मन्त्री की संख्या लिख भेजें । और यदि कोई अङ्गरेजी वाला बाबू कमलनयन साहब अब के शनि को आवे, तो सब को नकल कर ले जावे । अभी हम १५ ता० तक और ठहरेंगे । और ला० मूलराज जी पर यह भी प्रकट हो कि दिन परीक्षा के निकट

१. प० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित पृ० २८५ पर उद्धृत ।

२. ये सब मिलाकर सात पत्र हैं । इन्हें इस संग्रह के तृतीय भाग में देखें ।

हैं। वहुत इस ओर ध्यान न दें। परीक्षा में यत्न करें। और ४ हज़ार[1] वर्ष के पश्चात् अमरीका से आज सम्बन्ध हुआ है, इस को धन्य समझो। और धन्य है। और खूब यत्न करो। जिस से समाज में विघ्न हो, उस को रखने से कुछ लाभ नहीं है।

९ जुलाई ७८, अमृतसर। आषाढ़ सुदी १० संवत् १९३५।

दयानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या १६५] पत्र-सारांश

इस समय हमारा संकल्प अमुकस्थान की ओर जाने का है। सम्भवत: वहां इतना समय लगेगा, और यह कह नहीं सकते कि वहां से प्रस्थान के समय कहां जाना आवश्यक प्रतीत हो। इस लिये इस समय रुड़की आने का कोई वचन समय बांधकर नहीं दिया जा सकता। परन्तु जिस समय सम्भव प्रतीत होगा, आप को सूचना दी जायगी।[2]

दयानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या १६६] पत्र-सारांश

कुछ विशेष हेतुओं से पहला निश्चय स्थगित किया गया, और अब तीन दिन के भीतर रुड़की आ सकते हैं। यदि आप उचित समझें तो सूचित करें। सूचना न देने की अवस्था में समझा जावेगा कि आप को आने से विरोध नहीं।[3]

दयानन्द सरस्वती

:०

१. यहां '५ हजार' चाहिये। देखो—पूर्व मुद्रित पूर्ण संख्या १५१ का संस्कृत पत्र पृष्ठ १९३ पं० ९ में 'पञ्चसहस्रावधि' कहा है।

२. यह पत्र सारांश पं० लेखरामकृत जीवनचरित हिन्दी सं० पृष्ठ ४१६ पर निर्दिष्ट है। पत्र कहां से कब लिखा गया, यह अज्ञात है।

३. यह पत्रसारांश पं० लेखरामकृत जीवनचरित हिन्दी सं० पृष्ठ ४१६ पर उद्धृत है। यह पत्र कहां से लिखा गया, यह अज्ञात है। पत्रानुसार यह २५ जुलाई १८७८ को रुड़की पहुंचने से कुछ दिन पूर्व लिखा गया होगा।

[पूर्ण संख्या १६७] पत्र

न० १६०

१

पंडित सुंदरलाल[1] रामनारायण जी आनंद रहो

विदित हो कि इससे पहिले एक चिट्ठी नम्बरी १५३ लिखी हुई तारीख ८ जुलाई[2] की आपके पास भेजी गई है. पहुंची होगी, और लाजरस साहब के पास हमने हिसाब और चिट्ठी भेज दिये हैं, सो वे आपके नाम चिट्ठी लिखेंगे ॥ और पूर्वोक्त चिट्ठी में लाजरस को देने के लिये १३२८–) रुपये लिखे गये थे, सो आज एक चिट्ठी हमारे पास शुक्ल सरजूप्रसाद की बड़े मिर्जापुर से आई है, वे लिखते हैं कि हमने १००) लाजरस साहब के पास भेज दिये इस लिये आपको इत्तला दी जाती है कि १२२८–) लाजरस को देने रहे और इसकी बाबत लाजरस साहब को भी लिख दिया गया है ॥ यहां पर वृष्टि बहुत अच्छी हो गई है वहां के समाचार भी लिखिये ॥

१० जुलाई सं० १८७८ दयान्दसरस्वती

अमृतसर

—:०:—

[पूर्ण संख्या १६८] पत्र

१७२

१

पण्डित सुन्दरलाल[3] रामनारायणजी आनद रहो

विदित हो कि आज एक चिट्ठी लाजरस साहब की आई[4] उस से मालूम हुआ कि उन्होंने आप के पास हिसाब भेज दिया है सो पहुंचा होगा और उनको १२१८॥–) देना बाकी रहा है सो जान लेना जब हिसाब मिलाकर काशी जाओ तो हमको इत्तला दे

---

१ यह पण्डित सुन्दरलाल को भेजे गए पत्र की प्रतिलिपि है, जो परोपकारिणी सभा के सग्रह मे विद्यमान है।

२. द्र० –पूर्व पृष्ठ २०५ पर पूर्णसख्या १६२ का पत्र। उस पत्र पर १५३ न० नहीं है। क्या यह अन्य पत्र था ?

३ यह पण्डित सुन्दरलाल को भेजे गए पत्र की प्रतिलिपि है, जो परोपकारिणी सभा के सग्रह में विद्यमान है।

४. यह पत्र हमें नहीं मिला।

दीजिये और व्रजभूषणदास से हमारी पोथी लेते आना जो पोथी उनके पास रक्खी हैं उनका सूचीपत्र पहिले आपके पास भेजा गया है, और जब आप वहां से आवें तब भी लिख भेजें. हम ईश्वर की दया से बहुत आनंद हैं ॥

हस्ताक्षर
दयानन्दसरस्वती
अमृतसर

१४ जुला० १८७८ ॥

—:०:—

[पूर्ण संख्या १९९]　　　　पत्र

श्री श्यामजी कृष्ण वर्म्मा, आनन्द रहो[1]।

विदित हो कि हमने सुना है कि आपका इरादा संस्कृत पढ़ाने के लिये इंगलैण्ड जाने का है, सो यह विचार बहुत अच्छा है। परन्तु आपको पहिले भी लिखा था[2], और अब भी लिखते हैं कि जो हमारे पास रहकर वेद और शास्त्र के मुख्य-मुख्य विषय देख लेते तो अच्छा होता। अब आपको उचित है कि जब वहां जावें, तो जो आपने अध्ययन किया है, उसी में वार्तालाप करें। और कह देवें कि मैं कुल वेदशास्त्र नहीं पढ़ा, किन्तु मैं तो आर्य्यावर्त देश का एक छोटा विद्यार्थी हूं। और कोई बात का काम ऐसा न हो कि जिससे अपने देश का ह्रास होवे, क्योंकि वे लोग संस्कृत पढ़ानेवाले की अत्यन्त इच्छा रखते हैं। इसलिये आपके पास सब तरह के पुरुष मिलने और बातचीत करने के कारण आवेंगे, सो जो कुछ उन के मध्य में आप कहैं, समझ कर कहव। और इस चिट्ठी का उत्तर हमारे पास भेज देवें। और भी मोहन लाल विष्णु

---

१ मूल पत्र प्रो० धीरेन्द्र वर्मा जी के पास है इस पत्र की छायाचित्र (फोटो स्टेट) कापी हमारे संग्रह में भी है।

२. इस लेख का संकेत श्याम जी कृष्ण वर्मा को लिखे गये पत्र से है, अथवा पूर्णसंख्या ९४ पर मुद्रित गोपालराव हरि देशमुख को ६ जून १८७७ के पत्र से है, यह कहना अशक्य है। उस पत्र में भी श्याम जी कृष्ण वर्मा को वेदों के कुछ महत्त्वपूर्ण संकेत देने की चाहना प्रकट की है।

लाल पंडित जी को हमारा आशीर्वाद कह दीजिये। हम बहुत आनन्द में हैं।

	हस्ताक्षर
१५ जुलाई १८७८[१]	दयानन्द सरस्वती
	अमृतसर[१]

और पादरी लोगों से भी बचे रहें, और अमरीका की चिट्ठी का नागरी में तर्जमा करके भेजा करें। इससे काम जल्दी चलेगा, और उनके पास आर्य्यसमाज बम्बई और पंजाब के नियमोपनियम का अंग्रेजी में तर्जमा करके भेज दीजिये। जो कुछ आप बदलना मुनासिब समझें, बदल भी देवें, और हमको भी इत्तला दे दें।

—:०:—

[पूर्ण संख्या १७०] पत्र

नं० २०३ १

पंडित मुंदरलाल[२] रामनारायणजी आनंद रहो

विदित हो कि हम १८ ता० को अमृतसर से रवाना होकर रुड़की आ गये हैं, आप लिखये कि काशी के हिसाब का फैसला करके वहां हो आये या नहीं॥

और लाजरस के समीप ८॥) और पहुंच गये हैं सो अब लाजरस साहब को १२१०–) देने रहे॥ चिट्ठी का उत्तर शीघ्र भेजये॥

हस्ताक्षर
दयानन्दसरस्वती

२३ जुला० ७८ रुड़की जिले सहारनपुर

—:०—

१ श्रावण बदी १ सोम सं० १९३५। पं० लेखराम जी कृत (उर्दू पृ० ३२१, हिन्दी पृष्ठ ३६१), तथा उनका अनुसरण करनेवाले पं० घासीराम जी (पृ० ४८०) ने ११ जुलाई तक ही अमृतसर में ठहरना लिखा है। इस पत्र से निश्चित होता है कि श्री स्वामी जी १५ जुलाई तक तो अमृतसर में ही थे।

२ यह पण्डित सुन्दरलाल को भेजे गए पत्र की प्रतिलिपि है, जो परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान है।

[पूर्ण संख्या १७१] विज्ञापन[1]

सबको विदित हो कि जो-जो बातें वेदों की और उनके अनुकूल हैं, उन को मैं मानता हूं, विरुद्ध बातों को नहीं। इससे जो-जो मेरे बनाये सत्यार्थप्रकाश वा संस्कारविधि आदि ग्रन्थों में गृह्यसूत्र वा मनुस्मृति आदि पुस्तकों के वचन बहुत से लिखे हैं, वे उन-उन ग्रन्थों के मतों को जनाने के लिये लिखे हैं। उनमें से वेदार्थ के अनुकूल का साक्षिवत् प्रमाण, और विरुद्ध का अप्रमाण मानता हूं। जो-जो बात वेदार्थ से निकलती है, उन सब का प्रमाण करता हूं। क्योंकि वेद ईश्वरवाक्य होने से सर्वथा मुझको मान्य है। और जो-जो ब्रह्माजी से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त महात्माओं के बनाये वेदार्थानुकूल ग्रंथ हैं, उनको भी मैं साक्षी के समान मानता हूं। "और जो सत्यार्थप्रकाश के ४२ पृष्ठ और २५ पंक्ति में पित्रादिकों में से जो कोई जीता हो, उसका तर्पण न करें, और जितने मर गये हैं उनका तो अवश्य करे। तथा पृष्ठ ४७ पंक्ति २१ मरे भये पित्रादिकों का तर्पण और श्राद्ध करता है, इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषय में जो कुछ छापा गया है, सो लिखने और शोधनेवालों की भूल से छप गया है।" इस के स्थान में ऐसा समझना चाहिये कि - "जीवितों की श्रद्धा से सेवा करके नित्य तृप्त करते रहना, यह पुत्रादि का परम धर्म है। और जो-जो मर गये हों उनका नहीं करना। क्योंकि न तो कोई मनुष्य मरे हुए जीव के पास किसी पदार्थ को पहुंचा सकता, और न मरा हुआ जीव पुत्रादि के दिये पदार्थों का ग्रहण कर सकता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जीते पिता आदि की प्रीति से सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध है, अन्य नहीं। इस विषय में वेदमंत्रादि का प्रमाण भूमिका के ११ अंक के पृष्ठ २५१ से लेके १२ अंक के २६७ पृष्ठ तक छपा है, वहां देख लेना।"

—:०:—

---

१ यह विज्ञापन ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य के अङ्क १ और २ के टाइटल के पृष्ठ पर छपा है। इस से यही विदित होता है कि ऋषि ने इसे सं० १९३५ मास श्रावण के प्रारम्भ में लिखा होगा। [यद्यपि विज्ञापन के अन्त में स्वामी जी के हस्ताक्षर नहीं हैं, तथापि यह विज्ञापन उनकी ओर से ही है। यह इस विज्ञापन की प्रारम्भिक पंक्तियों से स्पष्ट है।]

[पूर्ण संख्या १७२] विज्ञापन[1]

सब सज्जन लोगों को विदित हो कि अब वेदभाष्य के दो-दो अंक मुंबई में छपा करेंगे, और सब ग्राहकों के पास बराबर प्रतिमास मे पहुंचा करेंगे। मुम्बई में हमारी ओर से रा०रा० बाबू हरिश्चन्द्र चिंतामणि जी इस काम में प्रधान ठहराये गये हैं। उनका ठिकाना कोट मुम्बई है। और निम्नलिखित नाम ठिकाने पर मूल्य भेजने से सब पुस्तक मिल सकते हैं—प्रयाग में पंडित सुन्दर लाल रामनारायण पोस्टमास्टर जनरेल्स आफिस। लाहौर में लाला बल्लभ दास बिहारीलाल, मन्त्री आर्य्यसमाज गली बच्छोवालियां। अमृतसर में बाबू ज्ञानसिंह की दुकान पर, हाल दरवाजे क्रिश्चिन स्टोर के पास के ठिकाने। और स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के पास पत्र और उसका मूल्य भेजने से वेदभाष्य और अन्य पुस्तकें भी स्वामी की बनाई मिलती हैं। जो ग्राहक वर्ष के आरम्भ वा पहिले वेदभाष्य का वार्षिक मूल्य दे देगा, उसको प्रत्येक वेद के वर्त्तमान के ४) और गतवर्ष के ४॥) देना होगा। और जो पुराना ग्राहक है, रुपये प्रथम नहीं भेजेगा, तो उसने गतवर्ष के ५) और वर्त्तमान वर्ष के ४) प्रत्येक वेदभाष्य पर देना होगा। और जो नवीन ग्राहक होंगे, और प्रथम मूल्य देके पीछे पुस्तक लेंगे, उनसे गतवर्ष के प्रत्येक वेद पर ४॥) साढ़े चार चार और वर्त्तमान वर्ष का ४) चार चार लिये जायेंगे। जो केवल भूमिका लेगा वह ५) देकर ले सकता है॥ अब इस महीने से लेकर ऋग्वेद और यजुर्वेद के मन्त्र भाष्य प्रतिमास में छपा करेंगे। जिन ग्राहक ने दाम नहीं भेजे हैं, उनको उचित है कि वेदभाष्य का चदा शीघ्र भेज देवें।

—:०.—

---

१. यह विज्ञापन भी ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य अङ्क १ और २ के टाइटल के पृष्ठ पर छपा है। इससे यही विदित होता है कि ऋषि ने इसे सं० १९३५ मास श्रावण के प्रारम्भ में लिखा होगा। यद्यपि इस विज्ञापन पर भी स्वामी जी महाराज के हस्ताक्षर नहीं हैं, तथापि इस विज्ञापन की तीसरी पंक्ति के 'हमारी ओर से' पदों से स्पष्ट है कि यह विज्ञापन स्वामी जी महाराज की ओर से ही दिया गया था।

[पूर्ण संख्या १७३]　　　पत्र

नं० २१६[1]

बाबू माधवलाल जी, आनन्द रहो !

विदित हो कि चिट्ठी आपकी आई, बहुत हर्ष हुआ। आप पाणिनीयाष्टाध्यायी भाष्य के ग्राहकों का सूचीपत्र बना कर भेज दीजिये। क्योंकि जो इस में खर्च होगा, वह तो आप को ज्ञात ही होगा। १७०० ग्राहक[2] जब हो जायेंगे, तब आरम्भ करेंगे। सब सभासदों को नमस्ते।

रुड़की, जिले सहारनपुर, २५ जुलाई ७८[3]

दयानन्द सरस्वती

—:o.—

[पूर्ण संख्या १७४, १७५]　　　पत्र- सूचना

दो पत्र इङ्गलैण्ड भेजे गये।[4]

—o:—

[पूर्ण संख्या १७६]　　　पत्र

स्वस्तिश्रीमद्वर्य्यगुणाढ्येभ्यः सर्वहितं चिकीर्षुभ्यो विद्वदाचारसहितेभ्य एकेश्वरोपासनातत्परेभ्यस्तेनोक्तवेदविद्याप्रीत्युत्पन्नेभ्यः प्रियवरेभ्यः पातालदेशनिवासिभ्योऽस्मद्बन्धुवर्गेभ्य आर्य्यसमाजैकसिद्धांतप्रकाशथियोसोफीकलाख्यसभापतिभ्य श्रीयुतहेनेरी एस औलकौटसञ्ज्ञकप्रधानादिभ्यस्तत्रत्यसर्वसभासद्भ्यो दयानन्दसरस्वतीस्वामिन आशिषो भवन्तुतमाम्। अत्रत्यं शमीश्वरानुग्रहतो वर्त्तते,

---

१. इस ग्रन्थ में छपे हुए सब पत्रों में से यह पहला पत्र है (पीछे भी कुछ पत्र आ गये हैं), जिस पर पत्रसंख्या लिखी हुई है। यह संख्या कब से लिखी जानी आरम्भ हुई, इस का जानना अभीष्ट है। मूलपत्र आर्य्यसमाज दानापुर के संग्रह में सुरक्षित है।

२. सम्भव है यहां १००० का लेखकप्रमाद से १७०० बन गया होगा।

३. श्रावण कृष्ण ११ बृहस्पतिवार सं० १९३५।

४. ये पत्र किस को भेजे गये, यह ज्ञात नहीं हो सका। इन दो पत्रों की सूचना इसी पूर्णसंख्या १७६ पत्र के छपे संस्कृतपत्र पृष्ठ २२५ वा भाषानुवाद पृ० २३४ के ९ संख्याक विषय-सन्दर्भ में मिलती है।

तत्र भवदीयं च नित्यमाशासे। मया श्रीमत्प्रेषितानि पत्राणि[1] सर्वाण्यार्य्यसमाजप्रधानश्रीयुतहरिश्चन्द्रचिन्तामणिद्वारा प्राप्तानि। तत्रत्यं वृत्तान्तं विदित्वा ममात्रत्यानामार्य्यसमाजप्रधानमन्त्रिसभासदां चात्यन्त आह्लादो जात इति। एतदुत्तमकार्यप्रवृत्तावीश्वराय सहस्रशो धन्यवादा देया:। येनाद्वितीयेन सर्वशक्तिमताऽखिलजगत्स्वामिना सर्वजगज्जनकधारकेण परमात्मना बहुकालात्पाखण्डमतदुष्टोपदेशभावितपरस्परविरोधान्धकारसहितमनसां भवदादीनामस्मदादीनां च भूगोलस्थानां सर्वेषां मनुष्याणामुपरि पूर्णकृपान्यायौ विधाय पुनस्तद्दु खनिमित्तकपटारूढमतविच्छेदनाय स्वोक्तेषु सर्वसत्यविद्याकोशेषु[2] वेदेषु प्रीतिरुत्पादिताऽतो वय सर्वे भाग्यशालिन: स्म, इति निश्चित विज्ञाय स कृपाकटाक्षेणास्माकमिदं सर्वहितसम्पादि कृत्यं प्रतिक्षणमुन्नतं करिष्यतीति प्रार्थयामहे।

१—यच्छ्रीमत्प्रेषितसभाप्रतिष्ठापत्रस्योपरि मया स्वहस्ताक्षराणि मुद्रित च कृत्वा श्रीमत प्रति पुन: प्रेषित, तद्भवन्त. सद्य: प्राप्स्यन्ति। यच्च श्रीमद्भिर्लिखितमार्य्यावर्त्तीयार्य्यसमाजशाखाथियोसोफीकलसुसायटीति नाम रक्षितं, तदस्माभिरपि स्वीकृतमिति विजानीत।

२—सर्वैर्मनुष्यैर्यथेश्वरोपासना चतुर्वेदभूमिकाया प्रतिपादिता तथैवानुष्ठेयेति। तत्रोक्तस्यायं सक्षेप —सर्वमनुष्यै: शुद्धदेशस्थिति कृत्वात्ममन प्राणेन्द्रियाणि समाधाय सगुणनिर्गुणविधानाभ्यामीश्वर उपासनीय:। एतस्या उपासनायास्त्रयोऽवयवा:—स्तुति: प्रार्थनोपासना चेति। एतेषामेकैकस्य द्वौ द्वौ भेदौ स्त:। तत्र यया तदीयगुणकीर्त्तनेन सहेश्वर स्तूयते सा सगुणा स्तुति:। तद्यथा—

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविर ँ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभू: स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्य: समाभ्य:॥ य० अ० ४०। मन्त्र ८॥

(स पर्य्यगात्) य परित सर्वतोऽगाद्व्याप्तवानस्ति (शुक्रम्) सद्य. सर्वजगत्कर्त्ताऽनन्तवीर्य्यवान् (शुद्धम्) न्यायसकलविद्यादिसत्यगुणसहितत्वात् पवित्र: (कवि:) सर्वज्ञ: (मनीषी) सर्वात्मनां साक्षी (परिभू) सर्वत: सामर्थ्ययोगेन सर्वोपरि विराजमान.

---

१. इन पत्रों को इस सग्रह के तृतीय भाग में देखें।

२. द्र० —पूर्व पृष्ठ १८६ की टिप्पणी स० १।

(स्वयम्भू) सदा स्वसामर्थ्ययोगैकरसत्वाभ्यां वर्त्तमान (शाश्वतीभ्य, समाभ्य) सर्वदैकरसवर्त्तमानाभ्यो जीवरूपाभ्य प्रजाभ्यः (याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात्) वेदोपदेशेन यथावदर्थानुपदिष्टवानस्ति। एवमादिना स सगुणरीत्या सर्व. स्तोतव्यः। यत्र यत्र क्रियया सह सामानाधिकरण्येनेश्वरगुणा स्तूयन्ते, सा सा सगुणा स्तुतिरिति मन्तव्यम्।

अथ निर्गुणा (अकायम्) अर्थाद्यो न कदाचिज्जन्मशरीरधारणेन साऽवयवो भवति (अव्रणम्) नाऽस्य कर्हिचिच्छेदो भवति (अपापविद्धम्) यो न कदाचित्पापकारित्वेनान्यायकारी भवति।

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ॥१॥
न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ॥२॥
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ॥३॥
तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ॥४॥

अथर्व० का० १३। अनु० ४। मं० १६।१७।१८।२०।

अत्र 'नवभिर्नकारैर्द्वितीयत्वसङ्ख्यावाच्यमारभ्य [1]नवत्वसङ्ख्यावाच्यपर्य्यन्तस्य भिन्नस्येश्वरस्य निषेध कृत्वैकमेवेश्वरं वेदोऽवधारयति। यथा सर्वे पदार्था स्वगुणै. सगुणा स्वविरुद्धगुणैर्निर्गुणा. सन्ति, तथेश्वरोऽपि स्वगुणै. सगुण. स्वविरुद्धगुणैर्निर्गुणश्चेति। एवमादिना यया नेति निषेधसामानाधिकरण्येन महेश्वर स्तूयते सा निर्गुणा स्तुतिर्विज्ञेया।

॥ अथ प्रार्थना ॥

य मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥

यजु० अ० ३२।१४॥

हे अग्ने सर्वप्रकाशकेश्वर! कृपया त्वं यां मेधां देवगणा विद्वत्समूहाः पितरो विज्ञानिनश्चोपासते स्वीकुर्वन्ति तया, मेधया स्वाहया[3] सत्यविद्यान्वितया भाषया चान्वित मामद्य कुरु सम्पादय।

---

१. 'द्वितीयसङ्ख्यातः आरभ्य दशम-सङ्ख्यापर्यन्त नवभिर्नकारै' इति भावः।

२. अत्र 'नवत्व'स्थाने 'दशम'शब्दस्य पाठो युक्तः, मन्त्रे 'दशमो नाप्युच्यते' इति वचनात्।

३. स्वाहा शब्द निपातों मे गिना जाता है। परन्तु यहं नाम और

येन मनुष्येण विद्याबुद्धिर्याचिता तेन सर्वशुभगुणसमूहो याचित इत्येवमादिसगुणरीत्या परं ब्रह्म प्रार्थनीयम् ।

अथ निर्गुणा—

मा नो वधीरिन्द्र मा परादा मा नः प्रिया भोजनानि प्रमोषीः ।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि ॥१॥
ऋ० १।१०४।८॥

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥२॥
ऋ० १।११४।७॥

मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥
ऋ० १।११४।८॥

हे रुद्र दुष्टरोगदोषपापिजननिवारकेश्वर ! स्वकरुणया त्वं नोऽस्मान् मा वधीः । स्वस्वरूपानन्दविज्ञानप्रेमाज्ञापालनशुद्धस्वभावात् कदाचिद् दूरे मा प्रक्षिप, त्वं च मा परादा दूरे मा तिष्ठ । नोऽस्माकं प्रियाणि भोजनान्यभीष्टान् भोगान् मा प्रमोषीः, पृथङ् मा कुरु । हे शक्र सर्वशक्तिमान् ! त्वं नोऽस्मानाण्डा गर्भान् मा निर्भेद्भययुक्तान् मा कुरु । हे भगवन् ! नोऽस्माकं सहजानुषाणि सहजेनानुषङ्गीणि पात्राणि सुखसाधनानि मा निर्भेन्मा विदीर्णानि कुरु ॥१॥ हे रुद्र सर्वदुष्टकर्मशीलानां जीवानां तत्तत्फलदानेन रोदयितरीश्वर ! त्वं नोऽस्माकं महान्तं विद्यावयोवृद्ध जनं मा वधीर्मा हिंसय । उतापि नोऽस्माकमर्भकं क्षुद्रं जनं मा वधीर्मा वियोजय । हे भगवन् ! नोऽस्माकमुक्षन्तं विद्यावीर्यसेचनसमर्थं मा वधीः । उतापि नोऽस्माकमुक्षितं विद्यावीर्यसिक्त जनं सद्गुणसम्पन्नं वस्त्वन्तरं वा मा वधीः । नोऽस्माकं पितरं पालयितारं जनकमध्यापकं वोत मातरं 'मान्यकर्त्रीं जनयित्रीं विद्यां वा मा रीरिषो मा विना-

निपात दोनों प्रकार का है । तुलना करो—**'स्वाहयेव हविर्भुजम्'** (रघु० १।५६) । इस प्रकार के अन्य भी अनेक उभयविध शब्द संस्कृतभाषा में देखने में आते हैं ।

१. **मान्यकर्त्री**—ऋषि दयानन्द सर्वत्र (यथा यजुर्वेदभाष्य २।१०, ११ के संस्कृतभावार्थ में, संस्कृत तथा भाषा में भी) मान शब्द के स्थान में

शय । नोऽस्माकं प्रियास्तन्वः सुखरूपलावण्यगुणसहितानि शरीराणि मा रीरिषो मा हिंसय ॥२॥ हे रुद्र सर्वरोगविदारकेश्वर ! त्वं कृपया नोऽस्माकं स्तोके ह्रस्वे तनये मा रीरिषः । नोऽस्माकमायौ मा रीरिषः । नोऽस्माकं गोषु पशुष्विन्द्रियेषु मा रीरिषः । नोऽस्माकम् [1]अश्वेष्वग्न्यादिवेगवत्पदार्थेषु मा रीरिषः । त्वं भामितः पापानुष्ठानेनाऽस्माभिः क्रोधितो नोऽस्माकं वीरान् मा वधीः । हे रुद्र ! हविष्मन्तो वयं सदं ज्ञानस्वरूपं त्वामिदेव हवामहे गृह्णीम इत्येवमादिना निर्गुणरीत्या प्रार्थनीय इति ॥

॥ अथ सगुणोपासना ॥

न्यायकृपाज्ञानसर्वप्रकाशकत्वादिगुणैः सह वर्त्तमानं सर्वत्र व्याप्तमन्तर्यामिणं यथास्तुतं यथाप्रार्थितं परमेश्वरं निश्चित्य तत्राऽऽत्ममनइन्द्रियाणि स्थिरीकृत्य दृढा स्थितिस्तदाज्ञायां च सदा वर्त्तमानमिति सगुणोपासनम् ॥

॥ अथ निर्गुणोपासना ॥

सर्वक्लेशदोषनाशनिरोधजन्ममरणशीतोष्णक्षुत्तृट्शोकमोहमदमात्सर्यरूपरसगन्धस्पर्शादिरहितं परमेश्वरं ज्ञात्वा, स सर्वज्ञतयाऽस्माकं सर्वाणि कर्माणि पश्यतीति भीत्वा सर्वथा पापाननुष्ठानमित्येवमादिना निर्गुणोपासना कार्या । एवं स्तुतिप्रार्थनोपासनाभेदं त्रिधारूपां सगुणनिर्गुणलक्षणान्वितां मानसीं क्रियां कृत्वेश्वरोपासन

'मान्य' शब्द का व्यवहार करते हैं । यह 'मन ज्ञाने' से भाव में ण्यत् प्रत्यय होकर बनता है । इसका गुजराती और राजस्थानी भाषा में प्रयोग इसी प्रकार होता है । 'मानमर्हति मान्यः' तद्धित प्रत्ययान्त 'मान्य' शब्द ण्यत्-प्रत्ययान्त मान्य से पृथक् है ।

१. यहां अश्व शब्द का अर्थ वेगवान् पदार्थ किया है । यह अर्थ **'अश्व शीघ्रगतौ'** धातु से **'अश्वति वेगेन गच्छति इत्यश्वः'** निष्पन्न होता है । अश्व वस्तुतः मूल धातु है । इस प्रकार की वृक्ष पुष्प आदि अनेक मूल धातुएं काशकृत्स्न और पाणिनीय धातुपाठ में उपलब्ध होती हैं । महाभाष्यकार ने भी अनेक नाम-धातुओं को पक्षान्तर में मूलधातु ही माना है । देखो—महाभाष्य अ० ३ पाद १ सूत्र ८,११। **'अश्व इवाचरति अश्वति'** बनाने में लक्षणारूपी महादोष उपस्थित होता है । अतः ऐसे प्रयोगों की सिद्धि के लिये इन्हें मूल धातु मानना ही युक्त है ।

कार्य्यमिति ॥

३ **अथार्य्यशब्दार्थः** यो विद्याशिक्षासर्वोपकारधर्म्माचरणसमन्वितत्वाज्जनैर्ज्ञातु मगन्तु प्राप्तुमर्हः स आर्य्यः । **आर्य्यो ब्राह्मणकुमारयोः** । अ० ६।२।५८॥ वेदेश्वरयोर्वेदितृत्वेन तदाज्ञानुष्ठातृत्व ब्राह्मणत्वम् । अष्टम वर्षमारभ्याष्टचत्वारिंशद्वर्षपर्य्यन्ते समग्रे सुनियमजितेन्द्रियत्वविद्वत्सङ्गसुविचारैर्वेदार्थश्रवणमनननिदिध्यासनपुरःसरं सकलविद्याग्रहणाय ब्रह्मचर्यसेवनं, पश्चादृतुकाले स्वस्त्र्यभिगमनं परस्त्रीत्यागश्च कुमारत्वमेतदर्थवाचिनोः परस्थितयोरेनयोः सामानाधिकरण्येन पूर्वस्थितस्यार्यशब्दस्य प्रकृतिस्वरत्वशासनादेतस्यैतदर्थवाचित्व सिद्धमिति विज्ञेयम् ।

विजानीह्यार्य्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्॥१॥
ऋ० १।५१।८॥

वेदविद्भिर्वेदेष्वार्य्यशब्दार्थं दृष्ट्वोत्तमपुरुषाणामार्येति संज्ञा रक्षिता । यदा सृष्टिवेदौ प्रादुर्भूतौ, तदा नामरक्षणचिकीर्षाभूत् । पुनर्ऋषिभिः श्रेष्ठदुष्टयोर्द्वयोर्मनुष्यविभागयोर्वेदोक्तानुसारेण द्वे नाम्नी रक्षिते - श्रेष्ठानामार्येति, दुष्टानां दस्य्विति । अस्मिन् मन्त्रे मनुष्यायेश्वरेणाज्ञा दत्ता — हे मनुष्य ! त्व बर्हिष्मते उत्तमगुणकर्म्मस्वभावविज्ञानप्राप्तये, श्रेष्ठगुणस्वभावकर्म्माचरणपरोपकारयुक्तान् विदुष आर्यान् विजानीहि । ये च तद्विरुद्धा दस्यवः सन्ति, तानपि दुष्टगुणस्वभावकर्म्माचरणान् परहानिकरणतत्परान् दस्यूंश्च विजानीहि । एतान् सव्रतान्सत्याचरणादियुक्तानार्यान् रन्धय संसाधय, विद्याशिक्षाभ्यां च शासत् शाधि । एवमव्रतान् सत्यानुष्ठानाद्विरुद्धाचरणान् रन्धय हिन्धि दण्डेन शासत् शाधि ताडय । अनेन स्पष्ट गम्यते — आर्यस्वभावविरुद्धा दस्यवो, दस्युस्वभावविरुद्धा आर्या इति ।

एवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा ।
अभि दस्युं बकुरेणाधमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ॥२॥
ऋ० १।११७।२१।

अश्विनावध्वर्यू दस्युं दुष्टं मनुष्यमभिधमन्तौ मनुषायार्यायोरु बहुविधं विद्याशिक्षासिद्धं ज्योतिश्चक्रथुः कुर्यातान् । अत्रापि मनुष्यनाम्नी आर्यदस्यू इति वेद्यम् । एते नाम्नी प्राङ्मनुष्यसृष्टिसमये किञ्चित्कालानन्तरं वेदाज्ञानुसारेण विद्वद्भी रक्षिते । हिमा-

लयप्रान्त आद्या सृष्टिरभूत् । यदा तत्र मनुष्याणां वृद्धया महान् समुदायो बभूव, तदा श्रेष्ठमनुष्याणामेकः पक्षोऽश्रेष्ठानां च द्वितीयो जातः । तत्र स्वभावभेदादेनयोर्विरोधो बभूव । पुनर्य आर्यास्त एतद्देशमाजग्मुः । पुनस्तत्सम्बन्धेनास्या भूमेरार्य्यावर्त्तेति संज्ञा जाता आर्याणामावर्तः समन्ताद्वर्त्तनं यस्मिन् स आर्य्यावर्त्तो देशः । तद्यथा–

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तं देवनिर्मितं देशमार्य्यावर्त्तं प्रचक्षते ॥१॥
आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ।
तयोरेवान्तरं गिर्य्योरार्य्यावर्त्तं विदुर्बुधाः ॥

मनु० अ० २ । श्लोक १७, २२ ॥

देवनद्योर्देवानां विदुषां सङ्गमहितयोः सरस्वतीदृषद्वत्योर्या पश्चिमप्रान्ते वर्त्तमानोत्तरदेशाद्दक्षिणदेशस्थं सागरमभिगच्छन्ती सिन्धुनद्यस्ति, तस्याः सरस्वतीति संज्ञा । या प्राक् प्रान्तवर्त्तमानोत्तरदेशाद्दक्षिणदेशस्थितं समुद्रमभिगच्छन्ती ब्रह्मपुत्रनाम्ना प्रसिद्धा नद्यस्ति, तस्या दृषद्वतीति संज्ञा । एतयोर्मध्ये वर्त्तमानं देवैर्विद्वद्भिरार्य्यैर्मर्य्यादीकृतं देशमार्य्यावर्त्तं विजानीत ॥१॥ तथा च यः पूर्वसमुद्रं मर्य्यादीकृत्य पश्चिमसमुद्रपर्य्यन्ते विद्यमानो हिमालयविन्ध्याचलयोरुत्तरदक्षिणप्रान्तस्थितयोर्मध्ये देशोऽस्ति, तमार्य्यावर्त्तं बुधा विदुः । आर्य्याणां समाजो या सभा स आर्य्यसमाजः । दस्युभावत्यागायार्य्यगुणग्रहणाय च या सभा साप्यार्य्यसमाजसंज्ञां लभते । अतः किमागतं--सर्वासां शिष्टसभानामार्य्यसमाजनामरक्षणं परमं भूषणमस्ति । नात्र काचित् क्षतिरिति विजानीमः ॥

॥४॥ स्वयं सत्यशिक्षाविद्यान्यायपुरुषार्थसौजन्यपरोपकाराद्याचरणे वर्तेत, तत्रैव प्रयत्नतो बन्धुजनानपि वर्त्तयेत् । इति संक्षेपत उत्तरम् । एतस्य विस्तरविज्ञानन्तु खलु वेदादिशास्त्राध्ययनश्रवणाभ्यामेव वेदितुं योग्यमस्ति । ये च मया **वेदभाष्यसन्ध्योपासनार्य्याभिविनयवेदविरुद्धमतखण्डनवेदान्तिध्वान्तनिवारणसत्यार्थप्रकाशसंस्कारविध्यार्य्योद्देश्यरत्नमालाद्याख्या ग्रन्था**[1] **निर्मितास्तद्दर्शनेनापि** वेदोद्देश्यविज्ञानं भवितुमर्हतीति विजानीत ॥

---

१. इन ग्रन्थों के विशेष परिचय के लिये हमारा 'ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास' ग्रन्थ, तथा रामलालकपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित 'सत्यार्थ-

॥५॥ यच्चेतनत्वं तज्जीवत्वम् । जीवस्तु खलु चेतनस्वभाव.। अस्येच्छादयो धर्म्मास्तु निराकारोऽविनाश्यनादिश्च वर्त्तते । नायं कदाचिदुत्पन्नो न विनश्यति । एतस्य विचारो वेदेष्वार्य्यकृतग्रन्थेषु च बहुभिर्हेतुभिः कृतोऽस्ति । अत्र खलु विस्तरलेखावकाशाभावात् स्वल्पं प्रकाश्यते ।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ॥

यजु० अ० ४० । मं० २ ॥

कुर्वन्नेवेह कर्म्माणीति जीवस्य शतवर्षपर्य्यन्तं प्रयत्नकरणं धर्म्मः । जिजीविषेत् जीवितुमिच्छेदितीच्छाधर्म्मः ॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु ।
दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥१॥

यजु० अ० ६ । मं० २२ ॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्त्विति सुखेच्छाकरणात् सुखं धर्म्मः । दुर्मित्रियास्तस्मै सन्त्विति दुःखत्यागेच्छाकरणाद् दुःखं धर्म्मः । योस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इति द्वेषो धर्म्मः । **वेदाहमेतं पुरुषम्** । यजु. अ० ३१ । मं० १८ इति ज्ञानं धर्म्मः । जीवश्चेतनस्वरूपत्वाद्यद्यदनुकूलं तत्तत्सुखमिति विदित्वा सदेच्छति । यद्यत् प्रतिकूलं तत्तद् दुःखमिति ज्ञात्वा सदा द्वेष्टि, सुखप्राप्तये दुःखहानये च सदा प्रयतते । एतदन्तर्गता. सूक्ष्मा बहवोऽन्येऽपि जीवस्य धर्म्मा सन्तीति वेद्यम् । **इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति** ॥ न्याय० अ० १ । सू० १० । जीवस्यैतानि लिङ्गानि धर्म्मलक्षणानि सन्तीति ज्ञातव्यम् । **प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि** वैशेषिक० अ० ३। आ० २। सू० ४। कोष्ठस्थस्य वायोर्निस्सारणं प्राणः । बाह्यस्य वायोराचमनमपान. । नेत्रस्यावरणं निमेषः । तदुद्घाटनमुन्मेष. । जीवनं प्राणधारणम् । मनो ज्ञानम् । गतिरुत्क्षेपणाद्यनुष्ठानम् । इन्द्रियान्तरविकाराः इन्द्रियसंयोजनं

प्रकाश' 'संस्कारविधि' तथा 'दयानन्दीय लघुग्रन्थसंग्रह' (सभी के आर्य्यसमाज शताब्दीसंस्करण) के प्रारम्भ में लिखित विवरण देखें । वेदविरुद्धमतखण्डन और वेदान्तिध्वान्तनिवारण के सम्बन्ध में कुछ लोगों को भ्रान्ति है कि ये ऋषि दयानन्द विरचित नहीं हैं। इस का भी समाधान इस पङ्क्ति से हो जाता है ।

कस्माच्चिद्विषयान्निवर्त्तनम् । अन्तर्हृदये व्यापारकरणम् । विकाराः क्षुत्तृड्ज्वरादिरोगादयः । धर्म्मानुष्ठानमधर्म्मानुष्ठानं च । संख्या-जात्यभिप्रायेणैकत्वं व्यक्त्यभिप्रायेण बहुत्वम् । पूर्वानुभूतस्य ज्ञान-मध्येऽङ्कुन संस्कारः । परिमाणं परमसूक्ष्मत्वम् । पृथक्त्वमस्यान्योऽन्यं भेदः । संयोगो मेलनम् । वियोगः संयुज्य पृथग्भवनम्, वियोगपत्वा-मिति च जीवधर्म्माः । मानसोऽग्निर्जीव इति महाभारतस्य मोक्ष-धर्म्मान्तर्गते भरद्वाजोक्तौ वर्त्तते । अस्यायमर्थः—यो मनस्यन्तःकरणे भव इच्छादिज्ञानान्तसमूहप्रकाशसमवेतः पदार्थोऽस्ति, तस्य जीव-संज्ञेति बोध्यम् । अयं खलु देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणाद्भिन्नश्चेतनो-ऽस्ति । कुतः अनेकार्थानां युगपत् संघातृत्वात् । तद्यथा—अहं यच्छ्रो-त्रेणाश्रौषं तच्चक्षुषा पश्यामि । यच्चक्षुषाऽद्राक्षं तद्धस्तेन स्पृशामि । यद्धस्तेनास्पार्क्षं तद्रसनया स्वदे । यद्रसनयाऽस्वदिषि तद् घ्राणेन जिघ्रामि । यद् घ्राणेनाघ्रासिषं तन्मनसा विजानामि । यन्मनसा-ऽज्ञासिषं तच्चित्तेन स्मरामि । यच्चित्तेनास्मार्षं तद्बुध्या निश्चि-नोमि । यद्बुध्या निरचैषं तदहङ्कारेणाभिमन्य इत्यादिप्रत्यभिज्ञया सह वर्त्तमानं यदस्ति तदात्मस्वरूपः सर्वेभ्यः पृथगस्तीति वेदि-तव्यम् । कुतः ? यः स्वस्वविषये वर्त्तमानैरन्यविषयाद्भिन्नवर्त्मभिः श्रोत्रादिभिः पृथक् पृथग्गृहीतानां शब्दार्थानां वर्त्तमानसमये सन्धा-तास्ति, स एव जीवोऽस्त्यतः । नह्यन्यदृष्टस्यान्यः स्मरति, नहि श्रोत्रस्य स्पर्शग्रहणे साधकत्वमस्ति । न च त्वचा शब्दग्रहणे, परन्तु श्रोत्रेण श्रुतो घटस्तमेवाहं हस्तेन स्पृशामीति । यस्य पूर्वकाल-दृष्टस्यानुसंधानेन पुनरेतस्यैवार्थस्य प्रत्यभिज्ञया वर्त्तमाने दर्शनम-स्ति, स उभयदर्शिनः सर्वसाधनाभिव्यापकस्य सर्वाधिष्ठातुर्ज्ञान-स्वरूपस्य जीवस्यैव धर्म्म उपपद्यत इति मन्तव्यम् । एवमादि-प्रकारेण बहूनामार्य्याणां वेदशास्त्रबोधसमाधियोगविचाराभ्यां जीवस्वरूपज्ञानं बभूव भवति भविष्यति चेति । यदायं शरीरं त्यजति, तदा मरणं जातमित्याचक्षते । नहि खलु तस्य देहाभि-मानिनो जीवस्य वियोगाद्विना मरणं सम्भवति । शरीरं त्यक्त्वायं खल्वाकाशस्थः सन्नीश्वरव्यवस्थया स्वकृतपापपुण्यानुसारेण शरीरान्तरं प्राप्नोति । यावत्पूर्वं शरीरं त्यक्त्वाऽऽकाशे गर्भवासे बालाज्ञावस्थायां वा तिष्ठति, न तावदस्य किञ्चिद्विशेषविज्ञान-मुपपद्यते । किन्तु यथा निद्रामूर्च्छाङ्गतो जीवो वर्त्तते, तथा तत्रास्य

गतिरिति ॥

॥६॥ यद्येतस्य वार्त्ताकरणे कपाटताडने परशरीरावेशे सामर्थ्यं वर्त्तते, तर्हि स कथं न पुनः प्रियं स्थानं धनं शरीरं वस्त्रभोजनादिकं प्रियान् स्त्रीपुत्रपितृबन्धुमित्रभृत्यपशुयानादीन् प्राप्नोति ? यद्यत्र कश्चिद् ब्रूयाद्यदा सम्यग्ध्यानं कृत्वा तमाह्वयेत्, तर्हि तत्समीपमागच्छेत्। अत्र ब्रूमः –यदा कस्यचित्कश्चित्प्रियो म्रियते, तदा स तस्य प्राप्त्यर्थमहर्निशं सम्यग्ध्यानं करोति, पुनः स कथं नागच्छति ? यदि कश्चिद् ब्रूयात्पूर्वसम्बन्धिनः प्रति नागच्छत्यन्यान् प्रत्यस्यागच्छतीति। नैतदुपपद्यते। कुतः पूर्वसम्बन्धिनः प्रति प्रीतेर्विद्यमानत्वेनासम्बन्धिषु प्रीतेरदर्शनात्। नेदमनधिष्ठातृक स्वतन्त्रं जगत्सम्भवति। सर्वस्यास्याधीशस्य न्यायकारिणः सर्वज्ञस्य सर्वेभ्यो जीवेभ्यो पापपुण्यानां फलप्रदातुरीश्वरस्य जागरूकत्वात्। अतः श्रीमद्भिर्यो मृतकस्य प्रतिबिम्बो मत्समीपे प्रेषितः, तत्र कापट्यधूर्त्तत्वव्यवहारो निश्चीयत इति। यथेन्द्रजाली चातुर्येणाश्चर्य्यान् विपरीतान् व्यवहारान् सत्यानिव दर्शयति, तथाऽयमस्तीति प्रतीयते। यथा कश्चित्सूर्य्यचन्द्रप्रकाशे स्वच्छायायां कण्ठशिरस उपरि निमेषोन्मेषवर्जितां स्थिरां दृष्टिं कृत्वा किञ्चित्कालानन्तरं शुद्धमाकाशं प्रत्यूर्ध्वं पुनरेवमेव निमेषोन्मेषवर्जितां दृष्टिं कुर्य्यात्, स स्वस्माद्भिन्नां, स्वच्छायाप्रतिबिम्बरूपां महतीं मूर्त्तिं पश्यति, तथैवाऽयं व्यवहारो भवितुमर्हति।

संस्कृतविद्यायां भूतशब्देन यः कश्चित्सशरीरः प्राणी वर्त्तित्वा न भवेत् तस्य ग्रहणमस्ति। यस्तु खलु निर्जीवो देहः समक्षे वर्त्तते, यावत्तस्य दाहादिकं न क्रियते तावत्तस्य प्रेत इति संज्ञा। ईश्वरेण सम कश्चिन्न भूतो न भविष्यतीत्याप्तवाक्यम्।

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन्।
प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुध्यति ॥

मनु॰ अ॰ ५। श्लोक ६५ ॥

अत्र भूतशब्देन भूतस्थस्य ग्रहणम्। "प्रेतस्य" 'प्रेतहारैः" एताभ्यां पदाभ्यां मृतकशरीरस्य प्रेत इति नाम। यथा पितृमेधं समाचरन्निति पदेन मृतकस्य पितृशरीरस्य दाहवद् गुरोर्मृतकशरीरस्य दाहकरणं पितृमेधसंज्ञां लभते, तथा मृतकानां शरीराणां विधिवद्दाहकरणं नृमेध इति विज्ञेयम्। इदं प्रसङ्गादुक्तम्। यथा

भूतप्रेतेष्विदानींतनानामभिप्रायोऽस्ति, तथेद नैव सम्भवति। कुतः? समूलतोऽस्य मिथ्यात्वेन भ्रान्तिरूपत्वात्। नात्र कश्चित् सन्देह इदमस्ति नास्ति वेति, किन्तु सर्वमिदं कपटजालमिति विजानीमः। अत्रालमतिविस्तरेणैतावतैवाधिकं भवद्भिर्विज्ञेयमिति॥

॥७॥ भवन्तो यां शिक्षां मत्तो ग्रहीतुमिच्छन्ति, सा परमार्थ-व्यवहारविषयभेदेनातिविस्तीर्णास्ति। पत्रद्वारा लिखितुमशक्या। सा संक्षेपतो मद्रचितेषु ग्रन्थेषु लिखितास्ति। विस्तरस्तु वेदादि-शास्त्रेषु। परन्त्वेतदुत्तरदानाय मया श्रीयुतहरिश्चन्द्रचिन्तामणीन् प्रति लिखितं मद्रचितस्य स्वल्पस्यार्य्योद्देश्यरत्नमालाग्रन्थस्ये-गलण्डभाषया विवरणं कृत्वा भवतां समीपे मद्य प्रेषयन्त्विति। ते तत्र शीघ्रं प्रेषयिष्यन्तीति बुध्यध्वम्। तद्दर्शनेन श्रीमतामुद्देशतो मदुपदेशशिक्षा भविष्यति॥

॥८॥ वेदोक्तानुसारेण वक्ष्यमाणरीत्या मृतकक्रिया कर्त्तव्या, तद्यथा[1] सेयं संस्कारविधिग्रन्थे विस्तरशः प्रतिपादिता, तथाप्यत्र संक्षेपतो लिख्यते। यदा कश्चिन्मनुष्यो म्रियते, तदा मृतकं शरीरं सम्यक् स्नपयित्वोत्तमसुरभिणाऽनुलेप्य सुगन्धियुक्तै[2]र्नवीनैः शुद्धैर्वस्त्रैराच्छाद्य मलिनानि वस्त्राणि पृथक् कृत्वा श्मशानभूमिं नीत्वा तत्र यावानूर्ध्वबाहुक पुरुषस्तावद्दीर्घां पार्श्वतो व्यायाम-मात्रविस्तीर्णामूरुदघ्नीं गम्भीरां वितस्तिमात्रीमधस्तादेतत्परि-माणां वेदिं रचयित्वा जलेनाभ्युक्ष्य, शरीरभारसमं घृतं वस्त्रपूतं कृत्वा, तत्र प्रतिप्रस्थमेकैकरक्तिकापरिमाणां कस्तूरी-

---

१ यह 'तद्यथा' पद अस्थान में पड़ा है। अगली पंक्ति के '**संक्षेपतो लिख्यते**' पद से परे पढ़ना चाहिये।

२ यद्यपि पाणिनीय व्याकरण ५।४।१३५ के अनुसार '**सुगन्धि**' पद सुगन्धयुक्त द्रव्य के लिये व्यवहृत होना चाहिये, तथापि सुपूर्वक चौरादिक णिजन्त गन्ध धातु से '**अच इः**' (उ० ४।१४८) से भाव में इ प्रत्यय होकर सुगन्धि शब्द सुगन्ध के अर्थ में उपपन्न होता है। यह आज भी हिन्दी भाषा मे इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। ऋषि दयानन्द ने अन्यत्र भी सुगन्ध अर्थ में 'सुगन्धि' शब्द का प्रयोग किया है। यथा **सुगन्धि-पुष्टि-मिष्ट-बुद्धि-वृद्धि-शौर्य-धैर्य-बल-रोगनाशकरैर्गुणैर्युक्तानां द्रव्याणाम्** (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृष्ठ २८७, रालाकट्रसंस्क०, पञ्चमहायज्ञविधि देवयज्ञ के अन्त में)।

मेकमाषपरिमाणं केशरं च संपेष्य यथावन्मेलयेत् । चन्दनपलाशा-आदिकाष्ठानि गृहीत्वा वेदिगर्त्तपरिमाणेनैतेषां खण्डान् कृत्वा-ऽधस्तादर्धवेदिं पूरयित्वा, तदुपरि मध्यतो मृतकं देहं संस्थाप्य कर्पूरगुग्गुलुचन्दनादिचूर्णान् मृतकदेहाभितो विकीर्य्य पुनस्तैरेव काष्ठैस्ततऊर्ध्वं वितस्तिमात्रीं वेदिं संचित्य तन्मध्येऽग्निस्थापनं कुर्य्यात् । तद्घृतं स्वल्पं गृहीत्वा यजुर्वेदस्यैकोनचत्वारिंशाध्यायस्थं[1] प्रतिमन्त्रमुच्चार्य्याभितो दाहयेत् । पुनर्य्यदा भस्मीभूतं शरीरं भवे-त्तदा ततो निवर्त्य जलाशयं स्वगृहं वा प्राप्य स्नानादिकं कृत्वा निःशोका सन्तो यथायोग्यं स्वानि-स्वानि कार्य्याणि कुर्युः । पुनर्यदा दाहदिवसात्तृतीये दिवसे सर्वं शीतलं भवेत्, तदा तत्र गत्वा सास्थि सर्वं भस्म गृहीत्वा स्थानान्तरे शुद्धदेशे गर्तं खनित्वा तत्र तत्सर्वं संस्थाप्य खनिगर्त्तं मृदाऽऽच्छादयेत् । एतावानेव वेदोक्तसनातनोत्त-मतमो मृतकसंस्कारोऽस्ति, नातोऽधिको न्यूनश्चेति । एवमेव यानि स्वमित्रशरीरास्थीनि भवतः समीपे स्थितानि सन्ति, तान्यपि

---

१ यजुर्वेद के ३९ वें अध्याय में १३ मन्त्र हैं । परन्तु संस्कारविधि में ५—९ तक ५ मन्त्रों को छोड़कर शेष ८ मन्त्रों के प्रतिवाक्य भेद करके ६३ आहुतियां देने का विधान किया है । इससे स्पष्ट है कि यजुर्वेद के मूलपाठ में जितने भाग पर एक संख्या दी जाती है, वह पूरा भाग भी एक मन्त्र माना जाता है, और यज्ञकर्म में उसके अवान्तर वाक्यों के लिये भी मन्त्र शब्द का व्यवहार होता है । इसी प्रकार यजुर्वेद अ० ३ म० ९-१० के अवान्तर ७ विभाग करके, उनके पृथक्-पृथक् अंश के लिये मन्त्र शब्द का व्यवहार संस्कारविधि आदि के अग्निहोत्र-प्रकरण में किया है ।

इन प्रकरणों से एक बात और भी स्पष्ट होती है कि जिन मन्त्रों वा मन्त्रांशों से आहुति देनी हो, उनमें यदि 'स्वाहा' पद पठित न हो, तो आहुति देते समय स्वाहा पद पढ़ा जाता है । परन्तु यदि मन्त्र या मन्त्रांश में स्वाहा पद पठित हो, तो पुनः स्वाहा पद का उच्चारण नहीं किया जाता । देखो—संस्कारविधि अग्निहोत्र-प्रकरण—**विश्वानि देव; अग्ने नय सुपथा** मन्त्रों के मूलपाठ में स्वाहा पद नहीं था, जोड़ा गया । **यां मेधां** मन्त्र तथा **सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा** आदि मन्त्रांशों में जहां मूलपाठ में स्वाहा पद विद्यमान था, वहां उसी से आहुतिप्रदान को गतार्थ मान लिया गया, पुनः स्वाहा पद नहीं जोड़ा । इसलिये ब्रह्मपारायण आदि यज्ञों के समय स्वाहान्त मन्त्रों में दुबारा स्वाहा लगाने की जो परिपाटी चल रही है, वह ऋषि दयानन्द और याज्ञिक-परम्परा के विरुद्ध है, यह स्पष्ट है ।

क्वचिच्छुद्धभूमौ गर्तं खनित्वा तत्र स्थापयित्वा मृदाच्छादनीयानीति ॥

॥९॥ पत्रद्वयमिङ्गलण्डाख्यदेशे यथालिखितस्थाने प्रेषितम् ।

॥१०॥ यदा युष्माकं निश्चयः स्यात्तदा सभानामविपर्य्यासः कार्य्यः । विदुषां सभाया अयं नियमोऽस्ति, यत् किञ्चिन्नूतनं कार्य्यं कर्त्तव्यं तत्सर्वमुत्तमान् विदुषः सभासदः प्रति निवेद्य तदनुमत्या कार्य्यमिति । यद्यत्सर्वोपकारविरुद्धं सभाकृत्यं तत्तन्नैव कदाचिदाचरणीयम् । यद्यत्तु खलु परिणामानन्दफलं तत्तदचिरादेव पुरुषार्थेन समयं प्राप्य कर्त्तव्यम् । तस्माद्यदावसर आगच्छेत्, तदा तत्रत्यसभाया आर्य्यसमाजेति नामरक्षणे न काचित्क्षतिरस्तीति मतं मे ॥

॥११॥ अत ऊर्ध्वं श्रीमन्तो यद्यत्पत्रं मत्समीपे प्रेषयेयुस्तत्तन्मन्नामांकितं प्रेषणीयम् । परन्तु पूर्वलिखितेन श्रीयुतहरिश्चन्द्रचिन्तामण्यादिद्वारैव प्रेषणीयम् । तत्रायं क्रमः । पत्रोपरि मन्नाम पत्रावरणपृष्ठोपरि श्रीयुतहरिश्चन्द्रचिन्तामणीनां नाम लिखित्वा प्रेषणीयम् । सच्चिदानन्दादिलक्षणाय सर्वशक्तिमते दयासागराय सर्वस्य न्यायाधीशाय परब्रह्मणेऽसङ्ख्याता धन्यवादा वाच्याः, यत्कृपया भवद्भिः सहाऽस्माकमस्मभिः सह भवता च सप्रीत्युपकारसमयः प्राप्तः । एतममूल्यं समयं प्राप्य यूयं वयं चैवं प्रयतामहे, यतो भूगोलमध्ये मनुष्याणां पाषण्डमतपापाचरणाविद्यादुराग्रहादिदोषनिवारणेनैकं सनातनं वेदप्रमाणसृष्टिक्रमानुकूलं सत्यं मतं प्रवर्त्तेतेति । पत्रद्वाराऽतीवस्वल्पं कार्य्यं सिध्यति । यावत्सम्मक्षे परस्परं वार्त्ता न भवन्ति, न तावत्समस्तो लाभो जायते, परन्तु यस्येश्वरस्यानुग्रहेण पत्रद्वारा वार्त्ताः प्रवृत्ताः सन्ति, तस्यैव कृपया भवतामस्माकं च कदाचित्समक्षेऽपि समागमो भविष्यतीत्याशासे । किं बहुना लेखेन बुद्धिमद्वर्य्येषु ॥

भूतकालाङ्कचन्द्रेऽब्दे नभोमासासिते दले ।
शुक्रे रुद्रतिथौ सम्यक् पत्रपूर्तिः कृता मया ॥१॥

संवत् १९३५ श्रावणवदी ११ शुक्रवासरे[1] पत्रमिदमलङ्कृतमिति विज्ञेयम् ॥

(दयानन्दसरस्वती)

---

१. २६ जुलाई १८७८ । [शुक्रवार २३ जुलाई को द्वादशी थी ।]

भाषानुवाद[1]

प्रशंसनीय गुणों, कल्याणकारी विचारों, और विद्वानों के आचार से युक्त; एक ईश्वर की उपासना में तत्पर; उसके ज्ञानरूप उपदेश वेद में प्रीति रखनेवाले, प्रिय पाताल-देशस्थो और हमारे बन्धुजनो! आर्यसमाज के ही सिद्धान्तों का प्रकाश करनेवालो, थियोसोफिकल सोसाइटी के सभापति श्रीयुत हेनरी एस० अलकाट आदि सज्जनों को दयानन्द सरस्वती स्वामी की आशीष कल्याणदायी हो।

ईश्वर के अनुग्रह से यहां कल्याण है, और ऐसे ही मैं वहां पर आपका कल्याण चाहता हूं। आपके भेजे हुए पत्र आर्यसमाज के प्रधान बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के द्वारा मुझे प्राप्त हुए। उनमें लिखा हुआ वृत्तान्त जानकर मुझे और अन्यों — समाज के प्रधानमंत्री और सभासदों को बहुत ही प्रसन्नता हुई। इस उत्तम कार्य के चालू होने पर, ईश्वर का हजार बार धन्यवाद करना चाहिये। कारण कि अद्वितीय, सर्वशक्तिमान्, समस्त जगत् के स्वामी और समस्त जगत् के उत्पादक तथा धारक परमात्मा ने बहुत समय पश्चात् पाखंड मत के बुरे उपदेशों द्वारा उत्पादित परस्पर विरोध-भावना से भावित मनोंवाले आप लोगों तथा हम सभी भूगोल-निवासी समस्त मनुष्यों पर पूर्ण कृपा और न्याय करके उन दुःखनिमित्तक, कपट से युक्त मतों को नष्ट करने के लिये स्वरचित सब सत्यविद्या के कोष, वेद में हम सब की प्रीति उत्पन्न की। इस कारण 'हम सब सौभाग्यशाली हैं'—ऐसा निश्चय जानकर वह परमात्मा अपनी कृपा से हमारे इस सर्वहितसम्पादक कार्य को प्रतिक्षण उन्नत करेगा, ऐसी हम प्रार्थना करते हैं।

१—आपके भेजे हुए सभा-प्रतिष्ठापत्र(डिप्लोमा)पर हमने अपने हस्ताक्षर करके, और उस पर मुहर लगा कर, फिर आपके पास भेज दिया है। वह शीघ्र आप को मिल जावेगा। जो आपने लिखा है कि 'आर्यावर्त के आर्यसमाज की शाखा थियोसोफिकल सोसाइटी' नाम रखा है—वह हमने भी स्वीकार कर लिया यह आपको विदित हो।

२ – सब मनुष्यों को जैसे ईश्वर की उपासना करनी चाहिये, वह हम ने चारों वेदों की भाष्यभूमिका में लिख दिया है। उसी का सार इस प्रकार है:—सब मनुष्यों को शुद्ध देश में स्थित होकर, आत्मा मन प्राण और

---

१. यह भाषानुवाद प० लेखरामरचित जीवनचरित हिन्दी सं० पृष्ठ ८९६-८९८ में लिखा है। यह भावप्रधान भाषानुवाद है। हमने कहीं-कहीं शोधा है।

इन्द्रियों को ठीक करके, सगुण निर्गुण की विधि से ईश्वर की उपासना करनी चाहिये। उपासना के तीन अंश हैं – १. स्तुति, २. प्रार्थना, और ३. उपासना। इन तीनों के प्रत्येक के फिर दो-दो भेद हैं ईश्वर के गुणों का कीर्तन करते हुए जो उसकी स्तुति की जाती है, वह 'सगुण-स्तुति' कहाती है। जैसे—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ यजुः० अ० ४०। मं० ८॥

अर्थ जो सर्वत्र व्यापक है, सदा सब जगत् का कर्ता और अनन्त वीर्यवाला, न्याय समस्त विद्या आदि सत्य गुणों से युक्त होने के कारण पवित्र है, सब कुछ जानता अर्थात् सर्वज्ञ है, सब के आत्माओं का साक्षी, सब स्थानों पर अपनी सामर्थ्य से सब के ऊपर विराजमान, सदा अपनी सामर्थ्य-योग से एकरस वर्तमान, अपनी जीवरूप प्रजा को वेद के उपदेश द्वारा सब पदार्थों का अच्छी प्रकार ठीक-ठीक ज्ञान देता है। इस विधि से उसकी सगुण स्तुति करना चाहिये। जहां-जहां रचना में उस रचयिता के गुणों की प्रशंसा की जाती है, वहां-वहां 'सगुण उपासना' जानना।

अब निर्गुण कहते हैं—वह अकाय है, अर्थात् कभी जन्म धारण करने से सावयव नहीं होता है। न उसमें कोई छिद्र होता है, और न वह कोई पाप करने से अन्यायकारी होता है। इसी प्रकार अथर्ववेद, कांड १३, अनुवाक ४, मन्त्र १६, १७, १८, २० में—

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ॥१॥ न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ॥२॥ नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ॥३॥ तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ॥४॥

यहां दो से नौ तक नौ बार नकारों से दुहराते हुए परमेश्वर के अनेक होने का निषेध करके वेदों में एक ही ईश्वर की उपासना का वर्णन है—ऐसा बतलाया है। जैसे सब पदार्थ अपने गुणों से सगुण, और विपरीत गुणों के न होने से निर्गुण हैं, इसी प्रकार जो गुण ईश्वर में नहीं हैं, उनके निषेध के साथ स्तुति करना 'निर्गुण स्तुति' जानना।

॥ अथ प्रार्थना ॥

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥
यजु० अ० ३२, मं० १४॥

हे सर्वप्रकाशक ईश्वर ! जिस बुद्धि की देवगण अर्थात् समस्त विद्वान् और ज्ञानी उपासना करते हैं, उसी बुद्धि को कृपया मुझे प्रदान कीजिये। विद्या बुद्धि की याचना करना, और समस्त गुणों की याचना करना यह 'सगुण रीति की प्रार्थना' है।

अब निर्गुण प्रार्थना देखिये—

मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा
न: प्रिया भोजनानि प्र मोषीः।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा
नः पात्रा भेत् सहजानुषाणि ॥१॥
ऋ० १।१०४।८॥

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा
न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा
नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥२॥
ऋ० १।११४।७॥

मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा
नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्ह-
विष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥३॥
ऋ० १।११४।८॥

हे रुद्र अर्थात् दुष्टरोग दोष तथा पापी जनों के निवारक ईश्वर ! आप अपनी करुणा से हमको बचाइये; मारिये नहीं। अपने स्वरूप के आनन्द, विज्ञान, प्रेम, अपने आज्ञापालन, और शुद्ध स्वभाव से हमको कभी दूर मत कीजिये, और न आपका विचार हमसे कभी दूर हो। और हमारे इष्ट भोग अर्थात् भोजन, अन्न आदि श्रेष्ठ वस्तुएं हमसे पृथक् न कीजिये। हे सर्वशक्तिमन् ! आप हमको गर्भ में अयुक्त कभी न करें, और सुख के साधन भी हमसे वियुक्त न हों ॥१॥ हे सब दुष्ट जीवों को उनके कर्मानुसार फल देनेवाले रुद्र ! आप हमको, हमसे विद्या तथा आयु में वृद्ध जनों की अच्छी संगति से पृथक् न कीजिये, और हमारे शिशुओं का हमसे वियोग न कीजिये। और हमें हमारे धर्मोपदेष्टाओं और वीरों से रहित न कीजिए, और विद्या और वीर्य्य से युक्त जनों से, और अच्छे गुणी पुरुषों से और पालनेवालों और आचार्य्यों और मान करनेवाली विद्या से हमें दूर मत

कीजिये। हमारे शारीरिक स्वास्थ्य को भी स्थिर रखिये, ताकि हम आप की आज्ञा का पालन करने में तत्पर रहें ॥२॥ हे सब रोग के दूर करनेवाले ईश्वर! श्रेष्ठ स्वस्थ शरीर, गायें, घोड़े, अच्छे शीघ्र चलनेवाले यान, और हमारे शुभचिन्तकों और भला चाहनेवालों को मत विभेद कर। हम सदा आप ज्ञानस्वरूप की, आपकी आज्ञापालन से पूजा करते रहें।

॥ अथ सगुणोपासना ॥

न्याय, कृपा, ज्ञान, सर्वप्रकाशकत्व आदि गुणोंसहित वर्तमान, सर्वत्र विद्यमान, अन्तर्यामी की उपासना करना, और उसकी आज्ञा पर चलना 'सगुण-उपासना' है।

॥ अथ निर्गुणोपासना ॥

सब क्लेश, दोष, नाश, निरोध, जन्म, मरण, शीत, उष्ण, क्षुधा, तृषा, शोक, मोह, मद, मात्सर्य, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि से रहित परमेश्वर को जानकर यह समझना कि वह सर्वज्ञता से हमारे सब कर्मों को देखता है, और उससे डर कर सदा पापानुष्ठान आदि से बचना, ऐसी निर्गुण उपासना करनी चाहिये। इस प्रकार स्तुति, प्रार्थना, उपासना के भेद से तीन प्रकार की सगुण-निर्गुण लक्षणवाली, मानसी क्रिया का नाम उपासना है।

३—आर्य्य शब्द का अर्थ--जो विद्या, शिक्षा, सर्वोपकार, धर्माचरण से युक्त हो, वह 'आर्य्य' है। आर्यो ब्राह्मणकुमारयोः (अष्टाध्यायी ६।२।५८)। वेद और ईश्वर को जानकर उनकी आज्ञा का अनुष्ठान करनेवाले का नाम 'ब्राह्मण' है। आठवें वर्ष से आरम्भ करके ४८ वें वर्ष तक नियमपूर्वक जितेन्द्रिय और विद्वानों के संग से वेदों के अर्थ का सुनना, मनन करना, और ध्यान करते हुए सब विद्याओं की प्राप्ति के लिये ब्रह्मचर्य-सेवन करना चाहिये। तत्पश्चात् ऋतुकाल में अपनी स्त्री से संगम करना पराई स्त्री का त्याग आदि उत्तम गुणों से 'आर्य्य' होता है।

विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्।

ऋग्वेद १।५१।८॥

जब प्रारम्भिक सृष्टि में वेदों का प्रकाश हुआ, तब ईश्वर ने सब चीजों के नाम रखे। फिर उसी के अनुसार ऋषियों ने श्रेष्ठ और दुष्ट इन दो प्रकार के मनुष्यों के नाम क्रमशः आर्य्य और दस्यु रखे। इस मन्त्र में ईश्वर ने मनुष्यों को आज्ञा दी है कि हे मनुष्य! संसार में श्रेष्ठ गुण कर्म स्वभाव से युक्त परोपकारी को 'आर्य्य' और उसके विरुद्ध दूसरों की हानि करने-

वाले को दस्यु जान। दुष्टों को विद्या और शिक्षा देकर ठीक करने की आज्ञा है।

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा।
अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय॥
ऋ० १।११७।२१॥

इस मन्त्र से भी यही सिद्ध है। हिमालय के प्रान्त में आदि सृष्टि हुई थी। जब वहां मनुष्यों की संख्या बहुत बढ़ गयी, तब श्रेष्ठ मनुष्यों का एक पक्ष और दुष्टों का दूसरा पक्ष हुआ। तब स्वभाव के भेद से कुछ विरोध हुआ। जो आर्य थे, वह इस देश में चले आये; इसी कारण इस देश का नाम 'आर्यावर्त' पड़ा।

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशमार्यावर्त्तं प्रचक्षते॥१॥
आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः॥२॥
मनु० अ० २। श्लोक १७,२२॥

अर्थात्—सरस्वती और दृषद्वती दो बड़ी नदियों (अटक, ब्रह्मपुत्र) के मध्य देश का नाम आर्य्यावर्त है। पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र तक, हिमालय और विन्ध्याचल से लेकर यह सब आर्यावर्त्त है। आर्य्यों की जो समाज है उसका नाम 'आर्य्यसमाज'; और दस्युगुणों को छोड़कर जो आर्यगुणों को ग्रहण करते हैं, उनको जो समाज है, उसका नाम 'आर्यसमाज' है। इसलिए समस्त अच्छी सभाओं का 'आर्यसमाज' नाम रखने में कोई हानि नहीं, प्रत्युत यह उनका परम भूषण है।

४-आप सत्यशिक्षा, विद्या, न्याय, पुरुषार्थ, सज्जनता से परोपकार का आचरण कीजिये, और यत्न करके अपने बन्धुजनों से ऐसा ही आचरण करवाइये। यह आपके प्रश्न का स्पष्ट उत्तर है। इसका विस्तृत वृत्तान्त वेद आदि शास्त्र के पढ़ने से विदित हो सकता है। और जो मैंने वेदभाष्य, सन्ध्योपासन, आर्याभिविनय, वेदविरुद्ध-मतखंडन, वेदान्तिध्वान्तनिवारण, सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, आर्य्योद्देश्यरत्नमाला आदि ग्रन्थ बनाये हैं, उनके अध्ययन से भी वेद का ज्ञान हो सकता है - ऐसा आप जानें।

५ - जो चेतन है, वह जीव है, और जीव का चेतन ही स्वभाव है। उसके इच्छा आदि धर्म हैं; तथा वह भी निराकार और नाश से रहित रहता है। जीव न कभी उत्पन्न हुआ और न नष्ट होता है। इसका विचार वेदों

और आर्यों के बनाये हुये ग्रन्थों में बहुत अच्छी प्रकार से किया हुआ है। यहां विस्तारभय से थोड़ा लिखा जाता है।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ॥
यजु. अ० ४० । मं० २ ॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु ।
दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥
यजुः अ० ६।२२॥

इन मन्त्रों से सिद्ध है कि जीव सुखेच्छा करता है; अतएव सुख उसका धर्म है। वह दुःखत्याग करने की इच्छा करता है; इसलिये दुःख उसका धर्म है। इसी प्रकार [वह द्वेष करता है, इससे द्वेष उसका] धर्म है। और [वेदाहमेतं पुरुषम्] यजुर्वेद अध्याय ३१, मन्त्र १८ से जीव का ज्ञान धर्म जाना जाता है। जीव सदा सुख की इच्छा करता है और दुःख के दूर करने का प्रयत्न करता है। इन दोनों के अवान्तरभेदरूप जीव के और भी बहुत से सूक्ष्म धर्म हैं। इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान जीव के लक्षण(न्यायशास्त्र अ० १,सूत्र १०)के अनुसार हैं। प्राण, अपान, निमेष, उन्मेष, जीवन, मन, गति, इन्द्रिय, अन्तर्विकार, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न आत्मा के लिंग (वैशेषिक ३।२।४) हैं। कोष्ठान्तर्गत वायु को भीतर से बाहर निकालना वह प्राण है। बाहर की वायु को भीतर ले जाना, यह अपान है। आंखों का बन्द करना निमेष, और खोलना उन्मेष है। प्राण का धारण करना जीवन है और ज्ञान मनन है। संकल्पसहित चेष्टा का नाम गति है। इन्द्रियों को जोड़ना, और भीतर ही व्यवहार करना; ज्वर आदिक रोगों से युक्त होना इसका नाम विकार है। अधर्म और धर्म का अनुष्ठान, और जाति के दृष्टिकोण से ये एक हैं, पर व्यक्ति के अभिप्राय से बहुत हैं। भूले हुए का ज्ञान और पढ़े का स्मरण आना संस्कार है। परमाणु परम सूक्ष्म और पृथक्-पृथक् होने से उनका भेद है। संयोग मेल का नाम है, और वियोग जुदाई का नाम है। महाभारत के मोक्षधर्म के अन्तर्गत भरद्वाज ने लिखा है कि जो मन और अन्तःकरण में होकर इच्छा आदि से लेकर ज्ञान तक सब प्रकाश को जाननेवाला पदार्थ है, वह जीव है। वह देह, इन्द्रिय, प्राण अन्तःकरण से पृथक् है। इसलिये बहुत अर्थों को एक समय धारण करने से जैसे कि मैंने जो कुछ कान से सुना वही आंख से देखा, और जो आंख से देखा उसी को हाथ से छूता हूं, जिसको हाथ से छुआ उसी को रसना से चखता हूं; जिसका रसना से स्वाद लिया उसी को नाक से सूंघता

हूं, जो नाक से सूंघता हूं, उसी को मन से जानता हूं, जिस को मन से जाना उसी को चित्त से चिन्तन करता हूं, जिस को चित्त से चिन्तन किया उसी को बुद्धि से निश्चय करता हूं। जिसको बुद्धि से निश्चय किया उसी को अहंकार से मानकर जो बर्ताव करता है, वह जीवात्मा सब से पृथक् है—ऐसा ही जानना चाहिये। किसलिये, कि जो अपने-अपने विषय में वर्तमान, और दूसरे के विषय से पृथक् मार्ग में बरतने वाले कान आदि से पृथक्-पृथक् लिये हुए शब्द आदिक विषयों को वर्तमान काल में एकत्रित करता है, वही जीव है। क्योंकि दूसरे का देखा हुआ दूसरे को स्मरण नहीं होता। न कान को स्पर्श ग्रहण होता है; न त्वचा से शब्द ग्रहण होता है। परन्तु कान से सुनकर घड़ी को मैं हाथ से स्पर्श करता हूं। जिसका पूर्वकाल में देखे हुए अनुसन्धान से फिर उनको ठीक वैसा ही जानकर वर्तमान काल में देखना है यह दोनों—समय से सर्वसाधनों से व्यापक सर्व का अधिष्ठाता, और ज्ञानस्वरूप जीव का ही धर्म पाया जाता है—ऐसा मानना चाहिये।

इसी प्रकार अनेक विधियों से आप्तों को वेदशास्त्र से जाने हुए साधन योग के विचार से जीव के स्वरूप का ज्ञान हुआ, होता है, और होगा।

जब जीव यह शरीर छोड़ देता है, तब मर गया ऐसा कहा जाता है। परन्तु देह के वियोग के अतिरिक्त उसका शेष कुछ भी मरना नहीं होता। शरीर के त्यागने पर सर्वव्यापक आकाश के द्वारा ईश्वर की व्यवस्था के अनुरूप, अपने किये हुए पाप और पुण्य के अनुसार दूसरे शरीर को प्राप्त होता है। दूसरे शरीर को प्राप्त करने तक शरीर को त्याग कर आकाश में, और गर्भवास में बालकपन की अवस्था में रहता है। उस समय तक उसको विशेष ज्ञान नहीं होता। परन्तु यह अवस्था निद्रा और मूर्छा के समान है। जैसे उन (=निद्रा व मूर्छा) में रहता है, वैसे ही वहां (आकाश आदि में रहता है।)

६ यदि जीव बातचीत कर सकता है, द्वार खटखटा सकता है, और दूसरे के शरीर में प्रविष्ट हो सकता, तो वह फिर से अपने प्यारे स्थान, धन शरीर, वस्त्र, भोजन आदि, और प्यारे स्त्री, पुत्र, पिता, भाई, मित्र, सेवक, पशु, यान आदि को क्यों नहीं प्राप्त हो जाता? यदि कोई इस प्रसंग में यह कहे कि अच्छी प्रकार से ध्यान करके उसको बुलाया जाय तो वह [उसके पास] आ सकता है। इस पर हम पूछते हैं—कि जब कोई

किसी का प्यारा मर जाता है, तो वह उसका रात दिन ध्यान करता रहता है तो फिर वह क्यों नहीं आ जाता ? यदि कोई यह कहे कि जो उसके पहले सम्बन्धी थे उनके पास नहीं आता, और अन्यों के पास आता है, तो यह उसका कहना ठीक नहीं। क्योंकि पहले सम्बन्धियों में तो प्रीति होती है (उसके पास आना चाहिये), और अन्य लोगों से प्रीति नहीं होती। अधिष्ठाता ईश्वर के बिना जगत् स्वयमेव नहीं हो सकता। सब का स्वामी, न्यायकारी, सर्वज्ञ, सब जीवों के पाप-पुण्य का फल देनेवाला ईश्वर सदा जागरूक रहता है।

इसलिये - आपने जो मृतक का फोटो मेरे पास भेजा, उसमें कपट और धूर्तता का व्यवहार है, यह निश्चय होता है। जैसे इन्द्र-जालवाला चालाकी से अद्भुत और विपरीत व्यवहार सत्य के समान दिखलाता है, यह भी ऐसा ही प्रतीत होता है। और जैसे कोई सूर्यचन्द्र के प्रकाश में, अपने कंठ तथा शिर से ऊपर अपनी छाया को निष्पलक दृष्टि से कुछ समय तक देखता रहे, और फिर कुछ काल के पश्चात् उसी प्रकार निष्पलक दृष्टि बांध कर शुद्ध आकाश को ऊपर देखे, तो वह अपने से पृथक् अपनी छाया को फोटोरूप बड़ी मूर्ति को देखता है; यह ऐसा ही व्यवहार होगा।

संस्कृतसाहित्य में भूत उस शरीरधारी को कहते हैं, जो होकर न रहे। और निर्जीव शरीर का जब तक दाह न हो, तब तक उसका 'प्रेत' नाम है।

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन्।
प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥ मनु० अ० ५।३५॥

इस श्लोक में भूत और प्रेत शब्द आये हैं। वहां भूत से हो चुके हुए का, और प्रेत से निर्जीव शरीर का ग्रहण है कि शिष्य गुरु के शरीर को पिता के 'नरमेधयज्ञ' अर्थात् 'मृतकसंस्कार' के समान फूंक दे। यह हमने प्रसंग में कह दिया। जिसको आप लोग भूत-प्रेत समझते हैं, उसका शास्त्र में कोई अर्थ नहीं। क्योंकि यह मूल से मिथ्या है, और भ्रान्तिरूप है, इसमें कुछ सन्देह नहीं। उनका होना या न होना, सब कुछ केवल कपट-जाल है ऐसा जानना मानना चाहिये। इस संक्षेप को आप अच्छी प्रकार विस्तार करके जान लें।

७ शिक्षा अपार है—जो आप हमसे शिक्षा लेने की इच्छा करते हैं; वह परमार्थ तथा व्यवहार विषय-भेद से बहुत विस्तृत है। वह मैं पत्र द्वारा लिखने में असमर्थ हूं, वह संक्षेपतया मेरी बनाई हुई पुस्तकों में लिखे

हैं, और विस्तारपूर्वक वेद आदिक शास्त्रों में हैं। परन्तु इसके लिये मैंने श्रीयुत हरिश्चन्द्र को लिख दिया है, वह "आर्योद्देश्यरत्नमाला" का अंग्रेजी में अनुवाद करके आप को भेज देवेगा, उससे आपको कई बातें प्राप्त हो जावेंगी।

८—वेदोक्त वक्ष्यमाण विधि से मृतकक्रिया करनी चाहिये, और [वह] "संस्कारविधि" ग्रन्थ में [विस्तार से] लिख दी है। यहां भी संक्षेप से लिखते हैं—जब कोई मनुष्य मरे, तब मृतशरीर को नहला कर, अच्छे सुगन्धित पदार्थ उस पर लेपकर, अच्छे नये वस्त्र में लपेट कर मैले कपड़े पृथक् करके, जलाने के स्थान पर ले जाकर, मनुष्य के हाथ खड़ा करने के बराबर लम्बी, मृतक की छाती के बराबर चौड़ी, जानु तक गहरी और नीचे से १२ अंगुलमात्र वेदी रचकर जल से पवित्र करके, मृतक के शरीर के भार के बराबर घृत छानकर उसमें एक रत्ती कस्तूरी, एक माशा केशर मिलाकर, चन्दन, पलाश, आम्र आदि की लकड़ियों को लेकर उनको काट-कर, आधी वेदी में चुनकर, उसके मध्य शव को रखकर, थोड़ा-थोड़ा कपूर, गुग्गुल, चन्दन आदि के चूर्ण को मृतकदेह के पास फैलाकर, उसके पश्चात् शेष लकड़ियां उसके ऊपर फैलाकर चुन दे, और फिर आग लगा दे। और धीरे-धीरे घृत की आहुति यजुर्वेद अध्याय ३९ के अनुसार एक-एक मन्त्र पढ़-कर देते हुए उसे जलावे। फिर वहां से चलकर किसी जलाशय अर्थात् तालाब या पम्प या कूप वा घर आकर नहाकर, शोक को दूर करके अपने काम को करें।

फिर जलने के तीसरे दिन आकर, अस्थियों सहित सब भस्म इकट्ठी करके किसी अच्छे स्थान पर गाड़ दें। यह वेदोक्त विधि से मृतकसंस्कार है। इससे न्यूनाधिक कुछ भी नहीं। और वह जो अपने मित्र की अस्थियां आपके पास हैं, वह भी किसी पवित्र स्थान पर जाकर खोदकर मिट्टी से ढक देनी चाहिये।

९—आपके वे दोनों पत्र हमने जैसा आपने लिखा, इंगलैंड में भेज दिये।

१०—जब आपका निश्चय होवे, तब सभा का नाम बदलना चाहिये। विद्वानों की सभा का यह नियम है, जब कोई नया काम करना योग्य हो, तब सब अच्छे विद्वानों, सभासदों को कहकर उनकी सम्मति से काम करना चाहिये। जो सब की भलाई के विरुद्ध हो, वह काम सभा को कभी न करना चाहिये। भविष्य में जो परिणाम में आनन्ददायक कार्य हो,

उसके लिये शीघ्र ही प्रयत्न करना चाहिये। और जब अवसर मिले, तब इस सभा का नाम 'आर्यसमाज' रखने में कोई हानि की बात नहीं है; यह मेरी सम्मति है।

११ इसके पश्चात् आप जो पत्र मेरे पास भेजें, वह मेरे नाम पर भेजें। परन्तु वह पूर्व लिखित ठिकाने से बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के द्वारा भेजना। इसका नियम इस प्रकार है कि पत्र के ऊपर मेरा नाम, और लिफाफे की पीठ पर हरिश्चन्द्र चिन्तामणि का नाम हो।

सच्चिदानन्द आदि लक्षणवाले सर्वशक्तिमान्, विद्यासागर, सब के न्यायकारी, परब्रह्म को असंख्य धन्यवाद हो, जिसकी कृपा से आपके साथ हमारी और हमारे साथ आपकी भली प्रकार मित्रता और उपकार का अवसर आया है। ऐसा अमूल्य अवसर पाकर हम और आप ऐसे प्रयत्न करें कि जिससे सारे संसार के मनुष्यों में मूर्तिपूजारूप पापाचरण, अविद्या, दुराग्रह आदि दोषों के निवारण से एक सनातन वेदप्रमाण सृष्टिक्रमानुकूल सच्चा धर्म प्रचलित हो। पत्र के द्वारा अत्यन्त थोड़ा अर्थ प्राप्त होता है। जबतक सामने परस्पर बातचीत न हो, तबतक पूरा लाभ नहीं हो सकता। परन्तु जिस ईश्वर के अनुग्रह से पत्र द्वारा वार्ता प्रवृत्त हुई है, उसी की कृपा से आपका हमारा किसी दिन परस्पर मेल हो जावेगा। बुद्धिमानों को संकेत पर्याप्त है।

श्रावण बदी ११ संवत् १९३५ शुक्रवार के दिन यह पत्र पूरा किया।

भूतकालाङ्कचन्द्रेऽब्दे नभोमासासिते दले।
शुक्रे रुद्रतिथौ सम्यक् पत्रपूर्तिः कृता मया॥

दयानन्द सरस्वती

—'०,—

[पूर्ण संख्या १७७] पत्र

न० २१९ १

पंडित सुन्दरलाल[1] रामनारायण जी आनंद रहो

विदित हो कि लाजरस के पास ४) बाबू रामनाथ ने और भेजे हैं सो अब उनके १२०६—) रहे हैं, और पुस्तकों का हिसाब जो आपके पास भेजा गया है उसमें से, मन्त्रभाष्य से ११ अंक पर्य्यंत १-१ और १२ अंक से १४ अंक पर्य्यंत २-२ और कमी कर

१. यह पण्डित सुन्दरलाल को भेजे गए पत्र की प्रतिलिपि है, जो परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान है।

देना क्योंकि लाजरस ने ग्राहकों के पास भेज दिये हैं ॥

और आप हिसाब का फैसला जल्दी कर लीजिये क्योंकि काशी और लाहौर वाले सर्राफ जल्दी कर रहे हैं कि हमसे अब तक हुंडी के रुपये क्यों नहीं लिये,सो यह विचारकर जल्दी निमट लीजिये ॥ हम बहुत आनंद हैं ॥

और आजकल किसी के पास फजूल रुपये का डालना अच्छा नहीं है ॥

हस्ताक्षर
२६ जुला० ७८ दयानन्दसरस्वती
रुड़की जिले सहारनपुर

—:०:—

[पूर्ण संख्या १७८] पत्र

बाबू दयाराम आनन्द रहो।[1]

अमरीकन चिट्ठी की नकल कराकर रवाना करेंगे। और यह भी आप को विदित होगा कि अमरीका थियोसोफिकल सोसायटी आर्यसमाज की शाखा बन गई। और अमरीकावाले बराबर वेद को मानते हैं, और उस की शिक्षा के इच्छुक [हैं], और हम बहुत राजी खुशी हैं।

२७ जुलाई [१८]७८ दयानन्द सरस्वती
श्रावण वदी १३ [शनि] संवत् १९३५ रुड़की

—:०:—

[पूर्ण संख्या १७९] पत्रांश

[ला० मूलराज जी एम० ए०]

अमरीकावाले बराबर वेद को मानते हैं, और उस की शिक्षा के इच्छुक हैं।[2]

२७ जुलाई १८७८ [श्रा० व० १३, सं० १९३५]

—:०:—

१. प० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित पृ० ८३२ (हिन्दी सं० पृष्ठ ८६५) पर उद्धृत।

२. यह पत्रांश और तारीख बा० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित पृष्ठ ७६६ पर उदधृत है।

[पूर्ण संख्या १८०] पारसल-सूचना

[ला० मूलराज जी एम० ए]

अमेरिका के चिट्ठियों का पारसल भेजा।

४ अगस्त १८७८ [श्रा० सु० ६, सं० १९३५]

—:o:—

[पूर्ण संख्या १८१] पत्र

ला० मूलराजजी एम. ए., आनन्द रहो।[1]

'विदित हो कल आप के पास एक पारसल अमरीका की चिट्ठियों का भी पहुंचा होगा। सो उन में से डिप्लोमा और छपी हुई चिट्ठी जो उनके साथ है, सो हमारे पास भेज दीजिये। और लाहौर में अथवा ट्रिब्यून मे शीघ्र छपवा दीजिये, क्योंकि इन की बहुत आवश्यकता है, और सब स्थानों से उनकी मांग आती है। इस लिए २०० कापी शीघ्र छपवा दीजिए। डिप्लोमा और छपी चिट्ठी जो असल है, वह हमारे पास भेजें। और जो नकल करके भेजी गई है, सो छपने के लिये प्रेस में दीजिये। यहा पर व्याख्यान नित्य होते हैं। और लोगों के विचार बहुत अच्छे है। हम बहुत आनन्द में है। सब सभासदों को नमस्ते।

५ अगस्त ७८, रुडकी[2] दयानन्द सरस्वती

:o:-

[पूर्ण संख्या १८२] पत्र-सारांश

ठाकुर मुकुन्द सिंह जी

---

१ प० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित पृ० ८३२ (हिन्दी सं० पृष्ठ ८६५) पर उद्धृत।

२ इस पत्र पर पत्रसंख्या २५५ छपनी चाहिए। द्रष्टव्य—"इससे पहले एक चिट्ठी संख्या २५५ लिखी ५ अगस्त की ······" (पृष्ठ २३९ प० ५)।

३. श्रावण सु० ७ सोमवार, सं० १९३५।

जो रुपया तुम्हारे पास है, उसे हमारे पास भेज दो।'

दयानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या १८३] पत्र

ठाकुर भूपालसिंहजी आनन्द रहो।[२]

विदित हो कि ठाकुर रणजीतसिंह ने रुपया हमारे पास भेज दिया है। परन्तु ठाकुर मुकुन्दसिंह[३] ने अब तक रुपया नहीं [भेजा]। और पहले यहां उनकी दो-तीन चिट्ठियां इस विषय की आईं कि रुपया हमारे पास मौजूद और तय्यार रक्खा है, कहां भेज देवें? सो उनको कई वार लिख चुके कि हमारे पास भेजो। अब वे फिर चुप हो बैठे। इसका कारण ही मालूम नहीं होता कि क्या भेद है? और रुपये की हमको बहुत जरूरत है। इस लिए एक बार लिखा जाता है कि उनसे फर्रुखाबाद शहर की हुंडी बनवा कर यहां हमारे पास भिजवादो। ताकीद जानो। और हम बहुत

---

१ यह आशय पूर्णसंख्या १८३ के अगले पत्र में उल्लिखित है। उस में 'कई वार लिख चुके' ऐसा निर्देश है। हमने उनमें से एक पत्र का सारांश यहां बना कर दिया है।

२. प्रसिद्ध कविवर प० नाथूरामशङ्कर शर्मा जी हरदुआगंज [अलीगढ़] निवासी को यह पत्र किसी रद्दी में से मिला था। पत्रों का अन्वेषण करते हुए ला० मामराज सितम्बर सन् १९२८ को प० जी के घर पहुंचे थे। वहीं कवि जी ने बहुत आग्रह पर यह पत्र उन को दिया था। मूल पत्र अब हमारे संग्रह में संख्या ७ पर सुरक्षित है।

ठाकुर भूपालसिंह ग्राम ऐंख (जिला अलीगढ़) के रहने वाले ऋषि के अनन्य भक्त थे। ऋषि के अन्तिम दिनों में इन्होंने ही बड़ी श्रद्धा भक्ति से उनकी सेवा की थी। उनके पोते चौ० मित्रसेन से ला० मामराज सितम्बर सन् १९२८ को मिले थे। उनके कागजों के खोजने पर रामानन्द ब्र० के कितने ही पत्र मिले थे, परन्तु ऋषि का कोई पत्र नहीं मिला।

३ ठाकुर मुकुन्दसिंह को एक 'पवित्र श्राद्ध में पशुबलि' विषयक पत्र का सारांश तृतीय भाग में, और उस का ऋषि दयानन्द का दिया हुआ उत्तर यथास्थान छाप रहे हैं।

आनन्द में हैं।

रुडकी, जि० सहारनपुर	हस्ताक्षर
६ अग० १८७८[1]	दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या १८४]　　　　पत्र

लाo मूलराज एम० ए० आनन्द रहो।[2]

विदित हो कि इससे पहले एक चिट्ठी सं० २५५ लिखी ५ अगस्त की आप के पास भेजी गई है। सो पहुंची होगी। और अब फिर लिखते हैं। आप के पास जो चिट्ठी भेजी गई है, सो उन में से दो असली छपी हुई चिट्ठियां और डिप्लोमा बहुत शीघ्र हमारे पास भेज दो। क्योंकि उनकी नकल बाबू कमलनयन जी कर ले गये थे। वह समाज में विद्यमान है। और आधा खर्च छपाई का आप के ऊपर रहेगा, और आधा रुड़की निवासी पण्डित उमरावसिंह वा शङ्करलाल आदि देवेंगे। परन्तु लाहौर प्रेस वा ट्रिब्यून प्रेस जहां छपवाने की इच्छा हो, शीघ्र छपवा दीजिये। क्योंकि २८ ता० को यहां पर टामसन कालेज की परीक्षा गवर्नमेण्ट लेवेगी। फिर दो मास को छुट्टी में सब अपने-अपने घर चले जावेंगे। कभी तीसरे मास में आवेंगे, जो पास या फेल हो जावेंगे। इस लिए आप को लिखा जाता है कि २८ ता० से पहले छपवा लीजिए।

९ अगस्त ७८[3]　　　　　　　　दयानन्द सरस्वती

रुड़की

—:o:—

[पूर्ण संख्या १८५]　　　　पत्र

बाबू माधोलालजी आनन्द रहो![4]

---

१. श्रावण शु० ८ मंगलवार सं० १९३५।

२. प० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित्र पृ० ८३२ (हिन्दी सं० पृष्ठ ८६५-८६६) पर उद्धृत।

३. श्रावण शु० १२ शुक्रवार सं० १९३५।

४. मूलपत्र आर्यसमाज दानापुर के पास सुरक्षित है।

विदित हो कि आप को इस बात का विज्ञापन दिया जाता है कि बहुत से मनुष्य हमारे नाम से आप को लूटते फिरते हैं, और कहते हैं कि हमको स्वामीजी ने भेजा है। सो हमने अब तक किसी को व्याख्यान के लिए नियुक्त नहीं किया। और जब नियत करेंगे, तो तो सब समाजों में अपनी मोहर करके चिट्ठी भेज देवेंगे। और एक नकल उसी चिट्ठी की मोहर करके उस मनुष्य को देदी जावेगी। कभी ऐसे मनुष्य के धोखे में न आना। और **ग्राहक अष्टाध्यायी के भेज दो, क्योंकि अब तैयार होने लगी है।**

९ अगस्त[1]

७८

हस्ताक्षर
दयानन्द सरस्वती
रुड़की, जि० सहारनपुर

—:o:—

[पूर्ण संख्या १८६] **पत्र**

पंडित सुन्दरलाल[2] रामनारायण जी आनंद रहो

विदित हो कि आपके पास एक मनीआर्डर बनारस के खजाने का जबलपुर से आया हुआ आपके पास भेजा जाता है आप इसका रुपया वसूल करके अपने पास जमा रक्खें॥

और काशी से शायद आपके पास भीखीमल से पुस्तकें आ गई होंगी और हिसाब वगैरे के कागज बनाकर हमारे पास भेज दीजिये और यह भी लिखये कि लाला भीखीमल ने ब्रजभूषणदास से ले लिये वा नहीं इस बात को इत्तला भी दीजये। रसीद भेज देवें॥

हस्ताक्षर
१० अग० १८७८ दयानन्दसरस्वती
रुड़की जि० सहारनपुर

और इस मनीआर्डर पर लाजरस के दस्तखत कराकर बनारस

---

१. श्रावण शु० १२ शुक्रवार, सं० १९३५।

२. यह पण्डित सुन्दरलाल को भेजे गए पत्र की प्रतिलिपि है, जो परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान है।

से रुपया वसूल कर लो क्योंकि यह उन्हीं के नाम है।

—:o:—

[पूर्ण संख्या १८७] पत्र

जनाब मौलवी मुहम्मद कासिम अली साहिब ![1]

आपकी खिदमत शरीफ में वजा (वाजिह) हो कि कल ववक्त शाम ६ बजे के रजिस्ट्री चिट्ठी आप की मेरे पास पहुंची।[2] उस चिट्ठी पर आपके दस्तखत न थे। इस वास्ते आप को तकलीफ दी जाती है कि मुन्शी चिट्ठी लेकर आपकी खिदमत में पहुंचता है। आप इस पर दस्तखत साबत कर देवें। क्योंकि इश्तिहार[3] और लिफाफे पर तो आप के दस्तखत मौजूद थे, मगर सिर्फ चिट्ठी पर न थे। लहाजा अर्ज है कि बराय इनायत दस्तखत चिट्ठी मजकूर पर कर देवें। ताकि हम भी अपने दस्तखत करके चिट्ठी बराय डाक रजिस्ट्री आप के पास रवाना कर देवें। ज्यादा खैरियत।

रुड़की, जिला सहारनपुर, १० अगस्त सन् १८७८।[4]

दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या १८८] विज्ञापन[5]

एशिया और यूरोप में जो मध्य सभाओं और शास्त्रार्थों के

---

१. पं० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित्र पृ० ७३६ हिन्दी संस्करण, पृष्ठ ७६१ से उद्धृत।

२. मौलवी मुहम्मद कासिम अली का पत्र तीसरे भाग में देखें। मौलवी साहब का पत्र ९ अगस्त १८७८ का है।

३. यह इश्तिहार पं लेखरामकृत जीवनचरित हिन्दी सं० पृष्ठ ७५८-७५९ पर छपा है। हम इसे तीसरे भाग में छाप रहे हैं।

४. श्रावण शु० १३ शनिवार, सं० १९३५।

५. यह विज्ञापन तथा ऋषि दयानन्द के अगले पत्र, जो मौलवी मुहम्मद कासिम अली को लिखे गये थे, श्री पं० भगवद्दत्त जी ने ये दो संस्करणों में क्यों नहीं छापे, यह हम नहीं जान सके। यह विज्ञापन पं० लेखरामकृत जीवनचरित हिन्दी सं० पृष्ठ ७६१-७६२ पर छपा है।

प्रारम्भिक पत्रव्यवहार का ढंग होता है, उसका उल्लंघन चाहे कोई अपने लेख में करे, परन्तु हम उसको अनौचित्य मानते हैं, और ऐसा करना कदापि उचित नहीं समझते। न अपना यह विश्वास है कि वास्तविक अभिप्राय से सम्बद्ध विषयों की बात-चीत में उच्चारण की अशुद्धि बतला देने पर विशेषतया जबकि उसकी शुद्धि का भी किसी को दावा न हो, पाठशाला के बालकों की भांति प्रयत्न करना उचित है। यदि ऐसा होता, तो इस स्थान पर क्या उन समस्त व्याकरण और मात्राओं की अशुद्धियों का वर्णन न आता, जो मौलवी साहब के विज्ञापन में पायी जाती हैं? अस्तु।

(१) कभी वह भी समय था जबकि मजहबी विषयों में बातचीत व शास्त्रार्थ होने पर लोगों के सिर कट जाते थे। और ऐसा भी समय था कि एक मत के अतिरिक्त दूसरे के मत के विषय में किसी प्रकार का प्रवचन करना या व्याख्यान देना मानो प्राणों को खो देना था। और ऐसे भी दिन थे कि जो राजा का मजहब होता था, उसके अनुयायी तो प्रत्येक प्रकार से स्वतन्त्र होते थे, परन्तु क्या मालूम कि दूसरे मतवाला अपने सिद्धान्तों को प्रकट कर सके। लाख अपने मन में कोई सत्य को सत्य क्यों न जाने, परन्तु झूठ को झूठ कहने का अधिकार न रखता था। सारांश यह है कि सत्य की खोज करनेवाले और झूठ को झूठ सिद्ध करनेवाले सुलेमान के कारागार में नहीं, तो उनके पीछे होनेवालों राजाओं के कारागार में तो अवश्य डाले जाते थे। हजार-हजार धन्यवाद ईश्वर का है कि अब अंग्रेजी सरकार ने अपनी न्यायप्रियता से प्रजा को स्वतन्त्रता प्रदान की। जिस बात को मनुष्य अपने बुद्धि-बल से प्रमाणित समझता था, उसको प्रकट करने का ढंग भी उत्पन्न हो गया। सत्य तो यही है कि न्यायकारियों और अन्वेषकों को तो मानो एक सम्पत्ति हाथ लगी। हां, ऐसों के लिये तो प्रलय का ही दिन आ गया, जिनका विचार यह था और है कि जिसको हम मानते हैं वह चाहे सिद्ध हो सके या न हो सके, हम ऐसा ही मानेंगे। और जिन सिद्धान्तों को हम मानते हैं, उनको बुद्धिमान् किसी भी प्रकार अयुक्ति-युक्त न कहें, अपितु हम ऐसा कहने का अवसर ही न उत्पन्न होने देंगे।

(२) मौलवी साहब कहते हैं कि हमने कुछ मित्रों द्वारा बहुत चाहा कि शास्त्रार्थसभा की तिथि नियत हो जावे। हम अत्यन्त दु:ख से कहते हैं कि उन मित्रों में से कोई सज्जन हमारे पास आकर वर्णन नहीं करते कि उन्होंने हमसे जिस विषय में बातचीत की थी, उसका क्या उत्तर पाया ? और उसके पश्चात् वह हम से उत्तर की आशा करते हैं, या हम उनसे ? एक-दो अन्य सज्जनों की उपस्थिति में हम में से एक अन्य मित्रों (जिनकी संख्या हमें विदित नहीं है और हम यह भी नहीं कह सकते कि मौलवी साहब की ओर से जिनकी ओर संकेत किया गया है, वे उक्त मित्रों के समूह में से हैं या नहीं) से एक सज्जन ने शास्त्रार्थ के विषय में बातचीत की थी, उस समय जो-जो नियम उन्होंने वर्णन किये, उनमें से एक के अतिरिक्त सब का निर्णय हो गया था। एक का निर्णय होना शेष था, उसके विषय में उनकी सम्मति मांगी गयी थी। उसका और कोई उत्तर तो हमें नहीं मिला; कदाचित् मौलवी साहब का विज्ञापन ही उसका उत्तर हो।

अब तनिक पाठक स्वयं विचार करें कि शास्त्रार्थ की तिथि निश्चित होने में इस ओर से आलस्य हुआ, या उस ओर से ? इसके अतिरिक्त मौलवी साहब का तो थी स्वामीजी से पहले ही परिचय हो चुका था। वह स्वयं ही इस विषय में लिखते। हां, उस अवस्था में इतना दोष अवश्य था कि मौलवी साहब या उनके शिष्यों को कदाचित् वह श्रेय प्राप्त न होता, जो विज्ञापन के प्रकाशित करने से हुआ।

३. फिर विज्ञापनदाता कहते हैं कि 'आक्षेप सब को सुनाया जाये, तो उत्तर भी सभी दे सकते हैं'। इस तर्क पर तो बस निछावर हो जाइये ! यदि यों कहा जाता कि आक्षेप सबको सुनाया जावे, तो उत्तर देने का भी सब को अधिकार है, तब तो जहां तक शब्दों की सीमा का सम्बन्ध है, यह वाक्य अशुद्धिरहित कहा जाता। इस तर्क की यथार्थता से कि उत्तर सभी दे सकते हैं—बुद्धिमान् भली-भांति परिचित हैं। हे महाशय ! मजहबी विषय तो कठिन है। हमें तो यह ऐसा काम नहीं दिखायी देता कि जिसको सभी कर सकें।

४(अ) "जिस प्रकार बन पड़े, पंडित जी को बातचीत पर

सहमत करें"—तनिक उपर्युक्त वाक्य को एक दो बार विचारपूर्वक पढ़ लीजिये, और फिर देखिये कि पण्डितजी बातचीत करने पर सहमत प्रत्युत उद्यत कब नहीं थे ? उनके यहां इतने काल तक ठहरने का कारण यही प्रतीत होता है कि जो सज्जन धार्मिक बातचीत की योग्यता रखते हों, आयें और बातचीत करें।

४(ब) स्वामी जी कहते हैं कि हम आज (और कदाचित् अवकाश न मिले तो कल) मौलवी साहब की सेवा में शास्त्रार्थ के नियम विस्तार पूर्वक रजिस्ट्री पत्र द्वारा भेजेंगे। यदि मौलवी साहब से ठीक उत्तर मिला तो ठीक, अन्यथा बुद्धिमान् स्वयं जान लेंगे। १० अगस्त सन् १८७८।[1]

विज्ञापनदाता स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिष्य[2]। १० अगस्त सन् १८७८।

—:o:—

[पूर्ण संख्या १८६] पत्र[3]

इस्लाम मत के नेता मौलवी मुहम्मद कासिम साहब,

परमेश्वर आपको हमें और सब को सत्यमार्ग पर स्थिर रक्खे। मुझे इस बात का दुःख है कि इस समय आपको शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त नहीं है, परन्तु ईश्वर से आशा है कि [वह] आपको आरोग्य प्रदान करेगा। मैं आपके इस स्थान पर पधारने का धन्यवाद प्रकट करता हूं, विशेषतया इस कारण कि आपने रुग्णावस्था में पधारने का कष्ट किया। अब इन कर्त्तव्यानुसार उचित बातों को कहने के पश्चात् आपके कृपापत्र के उत्तर में निम्नलिखित निवेदन करता हूं:—

"मैंने इस नगर में आकर अपने स्वभाव के अनुसार मजहबी विषयों पर बातचीत करनी आरम्भ की। परन्तु मैं दुःख से कहता

---

१. श्रावण सु० १३, शनिवार, सं० १९३५।

२ यद्यपि यह विज्ञापन साक्षात् ऋ० दयानन्द का नहीं है, तथापि अगले पत्र में विज्ञापन भेजने का उल्लेख होने से हमने इसे यहां छापा है।

३. यह पत्र प० लेखरामकृत जीवनचरित हिन्दी सं० पृ० ७६२-७६४ तक मुद्रित है। मूलपत्र पूर्व पूर्णसंख्या १८७ पर मुद्रित पत्र के समान उर्दू में रहा होगा। यह पत्र मौलवी मुहम्मद कासिम के ६ अगस्त सन् १८७८ के उत्तर में ऋ० द० ने भेजा था।

हूं कि मेरे प्रवचनों और व्याख्यानों का कुछ लोगों ने यह निष्कर्ष निकाला कि वह विचारविमर्श विशेषरूप से मुसलमानों के विरुद्ध था। यह तो मैं प्रत्येक अवस्था में स्वीकार करता हूं कि मैं अपनी समझ के अनुसार जहां उचित समझता हूं—इस्लाम के विरुद्ध भाषण देता हूं, **परन्तु इस विषय में मैंने इस्लाम को ही विशेषरूप से चुना**—यह कहना सर्वथा मिथ्या है। जैसा मैं इस्लाम मत का खण्डन करता हूं, ईसाईमत का खण्डन भी कदापि उस से कम नहीं करता। यहां तक कि मैं अपने हिन्दुओं की वर्तमान धार्मिक अवस्था पर भी सहमति प्रकट नहीं करता। आप यह तो जानते ही होंगे कि व्याख्यान के समय शास्त्रार्थ करना अभिप्राय की वास्तविकता और शिक्षा के महत्त्व को सर्वथा नष्ट करता है। वास्तविकता तो यह है कि कोई काम भी उचित व्यवस्था और प्रबन्ध के विना भली-भांति सम्पन्न नहीं हो सकता। इसलिये मैंने व्याख्यान के आरम्भ करने से पहले इस प्रकार प्रकट कर दिया था कि—जो सज्जन मेरे कथन में कोई ऐसा आक्षेप पायें कि जिसके विषय में उन्हें कुछ पूछने की इच्छा हो, या उत्तर लेने योग्य आक्षेप हों, या मेरे कथन के सम्बन्ध में कोई दूसरा आक्षेप हो, तो उन्हें उचित है कि ऐसे वाक्यों को उचित व्याख्या व स्मारक संकेतों सहित लिखते जायें। व्याख्यानक्रम की समाप्ति के पश्चात् जो समय इस काम के लिये नियत किया जाये, उस समय शास्त्रार्थ के रूप में इन बातों पर बातचीत करें। आप तो विद्वान् हैं, क्या आपकी यह सम्मति न होगी कि जब तक किसी रूप में एक बातचीत का क्रम समाप्त न हो जाये, और जब तक कोई अपनी समझ के अनुसार दावे का प्रमाण, सत्य की मांग, और विवादास्पद विषय की आवृत्ति का विस्तारपूर्वक वर्णन न करले, तब तक कथन में के अन्तर का रहस्य-भेदन अर्थात् आक्षेप का खण्डन कब कोई कर सकता है?

यही कारण है कि मैंने अपने व्याख्यानक्रम के समय से, शास्त्रार्थ को पृथक् रखा था। व्याख्यान की समाप्ति के पश्चात् मैंने दो दिन तक इस विषय का विज्ञापन किया कि जो सज्जन चाहें, व्याख्यानसम्बद्ध विषय में जो बात विचारणीय और पूछने योग्य प्रतीत हो उस पर बातचीत करें। विज्ञापन में केवल एक

दिन की चर्चा थी, परन्तु अन्त में सारे लेख का यह आशय था कि यदि कल और कोई विज्ञापन इस विज्ञापन के विपरीत प्रकाशित न हो, तो इस विज्ञापन का आशय कल के लिये भी स्वीकार किया हुआ जानना चाहिये। इस दो दिन की अवधि में कोई सज्जन शास्त्रार्थ के अभिप्राय से न पधारे। न किसी ने कोई लिखित आक्षेप ही भेजा। दूसरी यह बात भी बताने योग्य है कि मैं शास्त्रार्थ सभ्यतापूर्ण ढङ्ग से ऐसे लोगों से ही करना चाहता हूं, जो अपने मत के सिद्धान्तों और उसकी भीतरी बातों का श्रेष्ठ ज्ञान रखते हों, अर्थात् चाहे मेरे विषय में जनता का कुछ भी विश्वास हो, परन्तु मैं शास्त्रार्थ की दृष्टि से बातचीत करने का विचार केवल ऐसे सज्जनों से रखता हूं, जो शिष्टता और ज्ञान (ज्ञान से अभिप्राय मजहबी ज्ञान से है) दोनों में अद्वितीय हैं। आपकी इन दोनों योग्यताओं पर पूर्वपरिचय के कारण, मुझे पूर्ण सन्तोष था। और यही कारण हुआ कि कई बार आपकी चर्चा मजहबी मामलों के सम्बन्ध मे बातों-बातों में जिह्वा पर आयी। मौलवी अहमद अली साहब और हाफिज रहीमुल्ला साहब के विषय में, जो आप कहते हैं, इस सम्बन्ध में मेरा यह उत्तर है कि मौलवी अहमद अली साहब के विषय में यह तो मैंने निस्सन्देह सुना था कि उनकी मजहबी ज्ञान सम्बन्धी योग्यता साधारणतया इतनी पर्याप्त है कि वह अपने मतानुयायियों से सामान्यतया विश्वासपूर्वक दूसरे मजहब के विद्वानों से बातचीत कर सकते हैं। परन्तु खेद है कि मुझे मौलवी साहब के शास्त्रार्थ करने के ढङ्ग के विषय में, सन्तोषजनक सूचनायें न पहुंचीं। प्रत्युत ऐसी सूचनाएं पहुंचीं कि जिन को सुनकर शिष्ट साहब ने शास्त्रार्थ आरम्भ करने की प्रेरणा नहीं की। मुझे खेद है कि मैं मौलवी साहब के सम्बन्ध मे ऐसी शिकायत का कारण बना। परन्तु न्यायप्रिय लोगों की सेवा में वास्तविकता का प्रकट करना कुछ दोष नहीं है। अब हाफिज रहीमुल्ला के विषय में सुनिये। उनके बारे में मुझे अत्यन्त विश्वसनीय साधनों से विदित हुआ है कि उन्हें अपने मत का इतना ज्ञान नहीं कि जो शास्त्रार्थ के लिये पर्याप्त समझा जावे। इसका सब से बडा कारण यह प्रतीत होता है कि हाफिज साहब उस अरबी भाषा से अनभिज्ञ हैं, जिसमें कुरआन और हदीस के

अतिरिक्त, बड़े-बड़े विश्वसनीय भाष्य और दूसरी मजहबी पुस्तकें पायी जाती हैं। जो लोग इस बात को कहते हैं, वह अपने कथन को सिद्ध करने का उत्तरदायित्व अपने उपर लेते हैं। इतना ही नहीं प्रत्युत यहां तक कहते हैं कि यदि हम हाफिज साहब से हदीसों आदि के विषय में (न कि अन्य मत वालों की ओर से शास्त्रार्थ के रूप में) कुछ प्रश्न करें, और यदि वह आपकी ही सम्मति के अनुकूल उत्तर दें, तो हमारा दावा झूठा गिना जाये। यह निःसन्देह स्वीकार किया जा सकता है कि हाफिज साहब हाफिज[1] होंगे, परन्तु साहित्य के विद्वान् से गणित की समस्याओं का समाधान कराना असम्भव है। सारांश यह है कि इन दोनों सज्जनों से मेरा शास्त्रार्थ न करना सकारण था, अकारण न था। आप अपनी योग्यता के विषय में जो कहते हैं, उसको कोई बुद्धिमान् स्वीकार नहीं कर सकता। क्योंकि यह सब जानते हैं कि बुद्धिमान् लोग अपनी चर्चा नम्रतापूर्वक ही किया करते हैं। जैसे कि कहा है कि फलों से लदी हुई शाखा पृथिवी की ओर झुकती है। परन्तु हां, मैं आर्यधर्म के विद्वानों में गणना के योग्य नहीं। योग्यता तो इतनी नहीं कि शास्त्रार्थ का दावा या विचार करूं। परन्तु स्वभाव और इच्छा से विवश हूं। इसके अतिरिक्त, ऐसे छोटे-छोटे शास्त्रार्थों के लिये आवश्यकता भी नहीं कि लाला कन्हैयालाल अलखधारी, मुंशी इन्द्रमणि जी, बाबू हरिश्चन्द्र, गोपालराव हरि देशमुख और पण्डित हेवतराम जी आदि सज्जन कष्ट करें। मुझे इस बात पर बड़ा आश्चर्य्य है कि यद्यपि आप, विशेषतया मुझ से बातचीत करने आये तो फिर सार्वजनिक विज्ञापन द्वारा घोषणा करने की क्या आवश्यकता थी? यदि आप मुझ निर्धन के स्थान पर (साधु को जिस स्थान पर रात आ जाये, वही उसकी सराय है) पधारना अपनी शान के विरुद्ध समझते हैं, तो पत्रव्यवहार द्वारा अभिप्राय प्रकट किया जा सकता था। परन्तु न जाने कि विज्ञापन लगवाने का क्या उद्देश्य था? मेरा किसी अवस्था में भी यह कर्तव्य न था कि—विज्ञापन का उत्तर लिखता। परन्तु जिन लोगों ने अपनी समझ के अनुसार उचित

१ मुसलमान लोग कुरआन के कण्ठस्थ करनेवाले को "हाफिज" कहते हैं—अनुवादक—

समझ कर उत्तर लिखा, इस अभिप्राय से कि विज्ञापन के उत्तर की प्रतिलिपि मैं अपने पत्र के साथ आप की सेवा में भेजूं, इसलिए मैं उनके कथनानुसार कार्य करता हूं।

अब शेष रही शास्त्रार्थ विषयक बातचीत। सो दिन और समय तो निश्चित हो ही गया है। अब यह निवेदन है कि समस्त शास्त्रार्थ के नियम, जो आप अपने विचार में उचित समझें, लिखकर भेजने की कृपा करें। और इसी प्रकार मैं भी जो नियम उचित समझूंगा, उनसे आपको सूचित करूंगा। मुझे खेद है कि रजिस्ट्री द्वारा पत्र भेजने के कारण और भी अधिक समय नष्ट हुआ। यदि हाथ के पर्चों से काम चलता, तो एक दिन में दोनों के प्रश्नोत्तर का निर्णय हो जाता। परन्तु आपने न जाने इसमें क्या दूरदर्शिता समझी ?

फिर आप अपने कृपापत्र में चांदपुर की कुव्यवस्था की चर्चा करते हैं। इस से तो आप अवश्य परिचित होंगे कि उस कुव्यवस्था का कारण क्या था? इसका वृत्तान्त चांदपुर मेले के प्रबन्धक रईस मुक्ताप्रसाद और मुंशी प्यारे लाल साहब द्वारा प्रकाशित पत्रिका से भलीभांति विदित हो सकता है। अब क्या निवेदन करूं ? हां, इतना उचित है कि इस पत्र की समाप्ति भी आपके पत्र की समाप्ति के उत्तर में हो, तो अच्छा। आप कहते हैं कि हे महाशय ! शास्त्रार्थ आरम्भ होने के पश्चात् मेरी पहले शास्त्रार्थ की दृढ़ता को भुला न दीजियेगा। मुझे भी आप की दृढ़ता के प्रकटीकरण पर कुछ आश्चर्य नहीं है। परन्तु ईश्वर ऐसा करे कि कामरोग से आपको तनिक शान्ति मिले, और फिर नये बहाने का कोई अवसर न रहे। ११ अगस्त[1] सन् १८७८।

यह पत्र रजिस्ट्री[2] द्वारा नं० ६२७ पर मौलवी साहब के नाम भेजा गया। —दयानन्द सरस्वती

—:०:—

१. श्रावण शु० १४ शनिवार, सं० १६३५।

२. ११ अगस्त १८७८ को रविवार था। यह पत्र रजिस्ट्री से भेजा गया था। क्या उन दिनों रविवार को भी रजिस्ट्री होती थी ? अथवा पत्र ११ ता० रविवार को लिखा गया होगा, और सोमवार १२ अगस्त को रजिस्ट्री से भेजा होगा।

[पूर्ण संख्या १९०]   शास्त्रार्थ के नियम[1]

[2][११ अगस्त सन् १८७८। कर्नल मानसन साहब बहादुर और कप्तान स्टुअर्ट साहब बहादुर, आफिसर रुड़की छावनी के समक्ष।

मौलवी साहब और स्वामी जी की उपस्थिति में दोनों की इच्छानुसार निम्नलिखित नियम निश्चित हुए। दोनों शास्त्रार्थ करनेवालों और दो योरोपियन सज्जनों के अतिरिक्त लगभग तीस-चालीस मनुष्य उस समय और भी उपस्थित थे।]

१ – जिस कोठी में स्वामी जी उतरे हुए हैं वहीं शास्त्रार्थ होगा।[3]

२ दोनों पक्षों के मनुष्य चार सौ से अधिक न होंगे।

३ शास्त्रार्थ में प्रवेश के लिये चतुर और बुद्धिमान् मनुष्यों को टिकट बांट दिये जावेंगे।

४—शास्त्रार्थ लिखित होगा अर्थात् जो कुछ कोई बोलेगा वह लिखाता जावेगा ताकि अस्वीकार करने की सम्भावना न रहे और प्रकाशित कराने के काम आवे।

५ - ६ बजे सायं से ९ बजे रात तक शास्त्रार्थ रहेगा।

६ - दोनों ओर से शास्त्रार्थ में बुद्धिमानों के समान सभ्यतापूर्ण बातचीत करने का ध्यान रहे और कोई किसी के पूर्वजों या नेताओं के विषय में कठोर वचनों का प्रयोग न करे।

७—शास्त्रार्थ के समय मेरे और आप के अतिरिक्त और कोई

---

१. प० लेखरामकृत जीवन चरित हिन्दी सं० पृष्ठ ७६५-७६६ पर मुद्रित है।

२. यह [ ] कोष्ठक अन्तर्गत पाठ शास्त्रार्थ के नियमों के निर्णय की स्थिति का बोधक और भूमिका रूप होने से हमने यहां छापा है।

३ इस पर जी० च० में ( ) कोष्ठक के मध्य छपा है—प्रथम मौलवी साहब ने आपत्ति की तब कप्तान साहब ने यह कहा कि यदि इस मकान पर आपत्ति है तो हमारे निजी बंगले पर शास्त्रार्थ हो जाय, परन्तु शर्त यह है कि मनुष्यों की संख्या २४ से अधिक न हो, क्योंकि वहां अधिक स्थान नहीं है। मौलवी साहब ने उस को अस्वीकार करके कोठी (स्वामी जी का निवास स्थान) पर शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया।

सज्जन शास्त्रार्थ के विषय में किसी ओर से बातचीत न कर सकेंगे।

८ १८ अगस्त को नियत समय से शास्त्रार्थ उपर्युक्त नियमानुसार आरम्भ किया जावेगा।

[1][ये सारे नियम लेखबद्ध होकर दोनों पक्षों को सुनाये गये और दोनों ने स्वीकार किये और फिर मौलवी साहब और स्वामी जी दोनों साधारण प्रणामादि के पश्चात् एक दूसरे से विदा हुए।]

:o:—

[पूर्ण संख्या १९१] परिशिष्ट-सूचना

[नियमों के साथ परिशिष्ट भी लगा कर भेजा था][2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या १९२] पत्र[3]

इस्लाम मत के नेता मौलवी मुहम्मद कासिम साहब!

परमेश्वर हमारा और आपका और सब का पथप्रदर्शन करे। आप का कृपा पत्र[4], जिस को पढ़ने का मुझे कल सौभाग्य प्राप्त हुआ था, भाषा और विषय की दृष्टि से इस श्रेणी का था कि मुझे बहुत विचार करने से पहले कल ही उस का उत्तर दे देना बुद्धिमत्ता से रहित प्रतीत हुआ। परन्तु हां, आज उसका उत्तर जहां तक संक्षिप्त संभव है, भेजता हूं। वास्तविकता यह है कि आपके कृपापत्र के एक-एक शब्द पर मुझे आक्षेप है, और प्रत्येक के लिए बुद्धिपूर्ण उत्तर रखता हूं। परन्तु इस प्रकार का विस्तारपूर्वक लेख मैं अब अपने लिये केवल समय नष्ट करना समझता हूं। कारण यह है कि उचित बात का उचित उत्तर नहीं मिलता है,

---

१. यह अंश नियमों पर उभयपक्ष की स्वीकृति का बोधक होने से हमने यहां [ ] कोष्ठक में छापा है।

२. द्रष्टव्य—पृष्ठ २६१ पं० १३।

३ यह पत्र पं० लेखरामकृत जीवनचरित हिन्दी संस्करण पृष्ठ ७७०-७७१ पर छपा है।

४. यह १२ अगस्त १८७८ का मौलवी मुहम्मद कासिम का पत्र तीसरे भाग में देखें।

प्रत्युत ऐसे ढंग की मुझे आप से कदापि आशा नहीं हो सकती थी। परन्तु अपना कदापि यह विश्वास नहीं कि किसी के प्रति सभ्यता-विरुद्ध और अश्लीलभाषा का प्रयोग किया जाये, जैसा कि आप अपने लेख में प्रयुक्त करते हैं। अस्तु, इन बातों को पृथक् रखकर अवश्य प्रकट करने योग्य अभिप्राय को लिखता हूं। आप के और मेरे मध्य कप्तान स्टुअर्ट ह्यू व कर्नल मानसल साहब के सामने इन चार बातों का निर्णय[1] हो चुका था (१) शास्त्रार्थ में उपस्थित होनेवाले लोगों की संख्या, (२) शास्त्रार्थ का स्थान, (३) शास्त्रार्थ का समय, (४) शास्त्रार्थ में होनेवाली बातचीत को लिखा जाना।

अब मैं आप के लेख से इन विषयों में आप की सहमति नहीं पाता। मेरी सम्मति में बुद्धिमानों का यह व्यवहार है कि जिस विषय पर सहमत होकर प्रतिज्ञा करते हैं, फिर उस से नहीं फिरते। यदि कोई बात अथवा युक्ति उचित प्रतीत न हो, तो उस पर प्रारम्भ से ही कदापि सहमत नहीं होना चाहिये। परन्तु प्रतिज्ञा करके पश्चात् फिर जाना कदापि उचित प्रतीत नहीं होता। अस्तु,मैं इस बारे में अपनी यह सम्मति प्रकट करता हूं कि उक्त चार बातें,जो निश्चित हो चुकी हैं, मैं उनका कदापि उल्लङ्घन नहीं कर सकता। स्वीकार करने न करने का आपको अधिकार है। कुछ बलात् तो आपको शास्त्रार्थ पर उद्यत किया ही नहीं जा सकता। यदि आप प्रत्येक बार कुछ नियमों को स्वीकार करके फिर उन से फिर जायें, तो उस का कुछ उपाय दिखलायी नहीं देता। मैं अपनी ओर से निश्चित किये नियमों में कोई परिवर्तन करना उचित नहीं समझता, और न ऐसा करने का समर्थन करता हूं। यदि आप को नियमों के निश्चित होने में कुछ सन्देह है, तो कप्तान साहब आदि से कि जिनके सामने इन बातों का निर्णय हुआ था पूछ लीजिये।

चारों वेदों में से मेरे एक पर विश्वास होने के विषय में जो आपका कथन है,उस के उत्तर में निवेदन है कि न जाने आपने यह बात किस आधार पर लिखी? मेरे कौन से लेख और भाषण से

---

१. शास्त्रार्थविषयक नियमों के निर्णय के लिये प० लेखरामकृत जीवनचरित हि० स० ६५५-७६६ पर देखें।

आपने यह जाना कि मैं एक एक ही वेद को मानता हूं। हे महाशय ! इस विषय में मेरा यह विश्वास है कि चारों वेदों में एक वाक्य भी ऐसा नहीं, जिसको मैं नही मानता हूं। फिर वेद के भाष्यों के विषय में जो आप कहते हैं, सो स्पष्ट वर्णन नहीं कि किन भाष्यों से [आपका] अभिप्राय है। उर्दू फारसी और अरबी में तो निश्चय है कि अभी वेद का भाष्य नहीं हुआ, परन्तु अंग्रेजी में किन्हीं-किन्ही अंशों का अनुवाद हुआ है। मुझे इन अंग्रेजी अनुवादकों की योग्यता के विषय में बड़ी-बड़ी शङ्कायें हैं। हम उन की इतनी विद्यासम्बन्धी और धार्मिक-योग्यता को स्वीकार नहीं करते, और यही कारण है कि यह अंग्रेजी के कुछ संक्षिप्त से अनुवाद प्राचीन भाष्यों के कहीं अनुकूल नहीं होते। समाप्ति पर निवेदन है कि चार निश्चित किये हुए नियमों के अतिरिक्त और जो-जो नियम आप अपने मत मे उचित समझते हैं, लिखने की कृपा कीजिये। मैं अपनी सम्मति उन के विषय में बहुत शीघ्र भेजूंगा। अधिक प्रणाम।

१३ अगस्त सन् १८७८[१] [दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

[पूर्ण संख्या १९३] पत्र[२]

इस्लाम मत के नेता मौलवी मुहम्मद कासिम साहब !

परमेश्वर आप का और सब का पथप्रदर्शन करे। मेरे १३ अगस्त[३] तथा गत रविवार[४] के भेजे हुए पत्रों के उत्तर में आपका भेजा हुआ कृपापत्र कल प्राप्त हुआ[५]। आप के कृपापत्र के आरम्भ

---

१. भाद्र कृष्ण १, मंगलवार सं० १९३५।

२ यह पत्र पं० लेखरामकृत जीवनचरित हिन्दी स० पृष्ठ ७७५—७८२ तक छपा है।

३. १३ अगस्त को मंगलवार था। इस तारीख का ऋ० द० का पत्र पूर्णसंख्या १९२ पृष्ठ २५० पर छपा है।

४. रविवार को ११ अगस्त था। यह पत्र पूर्णसंख्या १८६, पृष्ठ २४४ पर छपा है। यहां इस पत्र के अन्त में पृष्ठ २४८ की टिप्पणी २ भी देखें।

५. कल अर्थात् १४ अगस्त को।

के विषय में मैं अपनी ओर से प्रबन्ध की आवश्यकता समझता हूं। विशेषतया इस कारण से कि आपने विज्ञापन की शिकायत[1] को भेंट की दृष्टि से कुछ और ही समझा। और यद्यपि विज्ञापन की भाषा से दो बातें भलीभांति प्रकट हैं, जिन पर शिकायत का आधार था। परन्तु इस अवस्था में आप बड़ी कृपा करके अपने कृपापत्र में अपना उद्देश्य कुछ और ही लिखते हैं, तो मेरी सम्मति में लिखित भाषा में शाब्दिक दोषों के होते हुए भी उन शिकायतों को स्मरण रखना कदापि उचित प्रतीत नहीं होता। और यद्यपि मैं जानता हूं कि विचार और शास्त्रार्थ की मांग प्रथम मेरी ओर से न थी, परन्तु किसी मत को विशेषता दिये बिना सत्य का प्रकाश करने के अतिरिक्त मेरा अभिप्राय कुछ और न था। परन्तु तो भी अब आप के इस प्रेमभरे लेख का खण्डन इस विचार से कि उस में अर्थसंगति नहीं, इस स्थान पर अच्छा नहीं समझता। आप फिर अपने कृपापत्र में अपनी योग्यता के कारण मेरा वैसा ही सम्मान करते हैं, जैसे आप अपनी सम्मति साहब के सामने पहले भी प्रकट कर चुके थे। परन्तु मैं चूंकि मुंशी कन्हैयालाल, मुंशी इन्द्रमणि और अन्य सज्जनों को, जिन से आप परिचित नहीं प्रतीत होते, अपनी अपेक्षा इस्लाम संबन्धी विषयों में कई गुना अधिक पाता हूं, इसलिये आप के इस शब्दरचनायुक्त स्तुति के ढंग से, जिस के कि मैं योग्य नहीं—केवल लज्जित होता हूं।

परन्तु अत्यन्त खेद है कि मुंशी इन्द्रमणि साहब के विषय में आप जो लिखते हैं, वह कदापि स्वीकरणीय नहीं हो सकता। जो दो कारण आप अपनी बात की सिद्धि के लिये उपस्थित करते हैं, उनके ठीक होने की साक्षी आप के लेख में कहीं भी नहीं पाई जाती। प्रथम तो यह कि मुंशी इन्द्रमणी साहब उस अवसर पर मुझ से कभी पृथक् नहीं हुए। परन्तु जिन विषयों में आप उनसे बातचीत होना वर्णन करते हैं, उनके सम्बन्ध में शास्त्रार्थ आरम्भ होने से पहले आप कुछ सज्जनों ने उन से यह प्रार्थना की कि

१. ऋ० द० के शिष्य ने एक विज्ञापन छपवाया था। वह हमने पूर्णसंख्या १८८, पृ० २४१ पर छापा है। उसके सम्बन्ध में मौलवी मुहम्मद कासिम ने जो शिकायत अपने १३ अगस्त के पत्र में की है, उस की ओर संकेत है। यह पत्र तृतीय भाग में छापा जायगा।

मुंशी साहब ! यदि आप थोड़ी देरके लिये जनता से पृथक् होकर इधर आवें, तो आप से एकान्त में एक बात निश्चित की जावे। मुंशी साहब ने इस बात को स्वीकार किया, और पादरी नबल साहब के डेरे के समीप आपके साथ चले गये। एकान्त में आप लोगों ने मुंशी साहब से कहा कि श्रीमान् जी ! हमारी आपकी पुस्तकीय[1] वार्त्ता तो चिरकाल से चली आती है, और इसी प्रकार चलती रहेगी। हमारा आपका कोई नया शास्त्रार्थ नहीं। इस अवसर पर हमारी सम्मति यही है कि आप मौन बैठे रहें, तो अच्छा है, औरों से बातचीत होती रहेगी। मुन्शी साहब ने उत्तर में कहा कि जैसा सभा में उचित होगा, आप की आज्ञा का पालन करूंगा, अन्यथा उचित समय पर आवश्यकतानुसार मौन कठिनता से धारण किया जा सकता है। हां, यदि आप की इस प्रार्थना और मुंशी इन्द्रमणि साहब के इस उत्तर से उनकी योग्यता के विषय में आपने ऐसी मति स्थिर की हो, तो वास्तव में प्रत्येक बुद्धिमान के लिये स्वीकार करने योग्य है।

दूसरे इस सत्यवादिता की उच्चता का तो अन्त ही नहीं पाया जाता कि 'आपने मुझ से शास्त्रार्थ के एक विषय में बातचीत करनी चाही, और मैंने भोजन का बहाना उपस्थित किया, यहां तक कि आपने मेरा हाथ तक भी पकड़ लिया, परन्तु मैं बलपूर्वक हाथ छुड़ाकर चल ही दिया।' हे महाशय ! मुन्शी प्यारे लाल और अन्य कुछ सज्जन जो सभा में सम्मिलित थे, वह बहुत दूर नहीं हैं। उन को लिखिये, और अपने कथन की सत्यता की साक्षी मंगा लीजिये। फिर यदि इन बातों की सत्यता में अनुचित इन्कार होगा तो उसके लिये भी कदापि स्थान न रहेगा। फिर आपका यह कहना कि यद्यपि मुंशी जी का नाम शास्त्रार्थकर्त्ताओं में था, परन्तु वह दोनों दिन आदि से अन्त तक कुछ न बोले। मुझे विश्वास नहीं होता कि इस स्थान पर आपके लेख से यह अभिप्राय है। चूंकि मुंशी साहब को दो दिन तक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं हुई, तो यह मुंशी साहब की अयोग्यता का प्रमाण हुआ। यदि आप का वास्तव में यही अभिप्राय है तो सैयद अब्दुलमन्सूर साहब की योग्यता को भी आप अवश्य अस्वीकार करेंगे क्योंकि सैय्यद साहब ने भी दो दिन तक आदि से अन्त तक कोई बातचीत

१. अर्थात् एक-दूसरे के विरुद्ध पुस्तक लिखना।

नहीं की। फिर आप का यह विचार कि मुंशी साहब को बुलाना व्यर्थ है। आप सन्तोष रखिये, मैं मुंशी साहब को नहीं बुलाता। मैं आपके इन शिक्षाप्रद वचनों का अभिप्राय भली-भांति समझता हूं। मुंशी साहब तो शास्त्रार्थ की चर्चा सुनकर इस ओर पधारने का विचार करेंगे या न करेंगे, मैं भली-भांति जानता हूं परन्तु उनके यहां पधारने से वास्तव में मुझे एक भय है वह यह कि मुंशी साहब की अनुपस्थिति में जिन्होंने यहां शास्त्रार्थ के लिये पधारने का विचार किया है, कहीं वे अपने विचार को झूठा विचार न समझ लें और फिर इस समझ का परिणाम भी कुछ और हो।

अस्तु, अब इस अभिप्राय को समाप्त करता हूं। और पुनः इस पत्र में निवेदन करता हूं कि मैंने कभी चारों वेदों को मानने से इन्कार नहीं किया अर्थात् ऐसा कभी नहीं हुआ कि मैंने केवल एक वेद को स्वीकार किया हो और शेष को नहीं। मुझे आपकी योग्यता पर कदापि यह सन्देह नहीं होता कि पवित्र वेद के विषय में मैंने जो अपना विश्वास प्रकट किया था- उसके अर्थ आपने वास्तविकता के विरुद्ध समझे हों। यह तो बड़े ही आश्चर्य्य की बात प्रतीत होती है कि कप्तान साहब जो इस देश के भाषाभाषी नहीं—वह तो मेरे संक्षिप्त से वर्णन से वास्तविक अभिप्राय समझ जायें और आप जो केवल यही नहीं कि पश्चिमी उत्तरी प्रदेश के रहने वाले हैं प्रत्युत इन जिलों के विशेष व्यक्तियों में से हैं—वास्तविक अभिप्राय को छोड़कर कुछ और ही अर्थ कल्पित कर लें। उस समय जो मैंने अपनी बातचीत में शब्द प्रयोग किये थे, वे लगभग इस प्रकार थे. - "मैं केवल एक कुरआन पर ही आक्षेप करूंगा और आप भी केवल एक वेद पर कीजिये।" इस वाक्य में जो "एक" शब्द दो स्थानों पर आया है उससे संख्या का प्रकट करना अभीष्ट नहीं है; प्रत्युत "एक" शब्द केवल के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। और यही कारण था कि इस वाक्य को प्रकट करते समय "एक" शब्द से उक्त अर्थ ग्रहण करने के लिये इस शब्द पर और विशेषतया उसके बीच के अक्षर पर अन्य शब्दों की अपेक्षा न्यून बल दिया गया था। परसों कप्तान साहब से जो मैंने इस सम्बन्ध में बातचीत की तो वह खेद प्रकट करने लगे कि मौलवी साहब ने इस साधारण वाक्य के अर्थ ऐसे प्रकरणविरुद्ध

समझ लिये।

फिर आप मुझ से इस बात की शिकायत करते हैं कि मैंने कर्नल साहब को अपना निर्णय का गवाह बताया, मैं अब भी कर्नल साहब को गवाह घोषित करता हूं। कप्तान साहब से जब मैंने इस शिकायत की चर्चा की तो वह कहने लगे कि निस्सन्देह कर्नल साहब निर्णय के साक्षी हैं। यदि आप को इस बारे में कुछ सन्देह हो तो तत्काल कप्तान साहब और कर्नल साहब से मेरे इस पत्र का उद्धरण देकर पूछ लीजिये। इससे आपको यह भी विदित होगा कि मैंने आपके कथनानुसार कप्तान साहब को झूठा सिद्ध कर दिया या आपने उन दोनों सज्जनों को झूठा सिद्ध किया। आप कहते हैं कि मुझे सभ्यता के अभाव की शिकायत करना शोभा नहीं देता और इसमें प्रमाण इस वचन का देते हैं: - **"जरा इन्साफ तो कीजे निकाला किसने वार पहले"** स्वीकार है। मैं इस प्रमाण को पर्याप्त समझता हूं। इस विषय के सम्बन्ध मे मेरा प्रथम लेख और अपना विज्ञापन भी पढ़िये और न्याय कीजिये। शेष रहा आपका यह वाक्य कि जिस वाक्य को आपने सभ्यता-विरुद्ध समझा, हे महाशय ! अर्थ इन शब्दों से वही लिये जायेंगे जो इन शब्दों के लिये नियत हैं। हां यदि आप कहना कुछ और चाहें और कहें कुछ और अर्थात् अभिप्राय कुछ हो और प्रकट उसके विरुद्ध किया जावे तो ऐसे लेख और कथन का अर्थ वही समझ सकता है जिसे आपने पहले समझा दिया हो कि—मैं कहूंगा तो यों परन्तु तुम उस कथन का यह दूसरा अर्थ समझना। परन्तु धन्यवाद है कि आपने अपने कल के लेख में अन्ततः एक सभा पर सभ्यता-विरुद्ध होने का सन्देह तो किया। परन्तु प्रत्येक सभ्य मनुष्य की दृष्टि में एक क्या कितने ही वाक्य इस गुण से प्रत्युत यों कहना चाहिये कि इस दोष से युक्त हैं।

फिर आपका यह कथन कि आज आपने और नई उन्नति की। कल के कृपापत्र में तो तीन ही नियम थे इत्यादि। श्रीमान् मौलवी साहब ! न्याय को हाथ से न जाने दीजिये, तनिक अभिप्राय की ओर भी तो आकृष्ट हूजिये। पूर्वपत्र में तीन निर्णीत नियमों की चर्चा की गयी और इस से पीछे के पत्र मे आवश्यकतानुसार ४ निश्चित की हुई बातों की चर्चा आई। न पहले पत्र में यों लिखा

था कि केवल तीन ही नियम निश्चित हुए हैं, न दूसरे में वर्णन है कि केवल चार नियमों का निर्णय है और यह निर्णय की समाप्ति है। पहले पत्र में निश्चित किये हुए नियमों में से केवल तीन की चर्चा की आवश्यकता हुई थी, उससे पीछे के पत्र में चौथा निश्चित किया हुआ नियम भी लेखबद्ध हुआ। कारण यह हुआ कि प्रथम पत्र के उत्तर में जो आपका पत्र आया, उसमें आपने चौथे नियम से इन्कार प्रकट किया। इन चार नियमों के अतिरिक्त और भी कई नियम हैं जो निश्चित हो चुके हैं। परन्तु बार-बार आपकी सेवा में उनके प्रकट करने की आवश्यकता उपस्थित न हुई। परन्तु यदि आप अब उनमें से किसी से फिरते हुए दिखायी देंगे या कोई और आवश्यकता का अवसर प्रदान करेंगे तो निस्सन्देह उन नियमों की चर्चा भी भावी पत्रों में की जावेगी।

उदाहरणार्थ आप स्मरण कीजिये कि सब से प्रथम यह बात निश्चित हुई थी कि शास्त्रार्थ में दोनों ओर से बुद्धिमानों के समान सभ्यतापूर्ण बातचीत करने का ध्यान रहे। और कोई किसी के पूर्वजों और नेताओं के सम्बन्ध में कठोर वचनों का प्रयोग न करे। दूसरी यह कि शास्त्रार्थ के समय मेरे और आप के अतिरिक्त और कोई सज्जन न मेरी ओर से और न आपकी ओर से शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में बातचीत कर सकेंगे। तीसरी यह कि मैं वेद का उत्तरदायी बनूंगा और केवल कुरआन पर आक्षेप करूंगा। और आप उसके विरुद्ध कुरआन के उत्तरदायी और वेद पर आक्षेप करनेवाले होंगे। अब आप ही कहिये कि चार पूर्वोक्त नियमों में यह तीन भी निश्चित हो गये हैं या नहीं? चर्चा तो उनकी अबतक मैंने किसी पत्र में नहीं की। प्रकट है कि चर्चा की आवश्यकता भी उपस्थित नहीं हुई। इसके अतिरिक्त यह आपका आक्षेप केवल उस अवस्था में उचित गिना जा सकता है कि जब यह कहते कि पूर्वपत्रोक्त तीन नियम तो निश्चित हो चुके हैं, इस चौथे का निर्णय अभी नहीं हुआ। न जाने आप इस चौथे का निश्चित होना स्वीकार करते हैं या नहीं? कप्तान साहब और कर्नल साहब के साक्षी होने की आप फिर चर्चा करते हैं और मैं फिर उसके उत्तर में आपको

सूचित करता हूं कि यह बात मैं ही केवल नहीं कहता कि वह निश्चित की हुई बातों के साक्षी हैं प्रत्युत वह स्वयं अपना साक्षी होना स्वीकार करते हैं। हे महाशय[1] यहां से यह दोनों सज्जन कुछ दूर नहीं आप तनिक उनके मकान तक पधारिये या पत्र द्वारा पूछिये और अपने चित्त का सन्तोष कीजिये।

फिर उस चिट्ठी की चर्चा करते हैं जो कप्तान साहब ने मुंशी अहसन उल्ला साहब को लिखी थी। मैंने आपका इस चिट्ठी के सम्बन्ध में लेख कप्तान साहब को पढ़कर सुनाया था। **कप्तान साहब कहते थे कि लोगों ने मेरे लेख के उलटे अर्थ लगाये और क्या समझे।** और कहा कि मैं दूंगा तो मुन्शी अहसन उल्ला साहब से कहूंगा कि मेरा यह अभिप्राय न था जो आप समझे, प्रत्युत यह था कप्तान साहब उस अपने लेख के विषय में यह कहते हैं कि उनके पास मुंशी अहसन उल्ला साहब का एक इस आशय का पर्चा आया कि मौलवी साहब आपसे शास्त्रार्थ सम्बन्धी बातों के विषय में स्वयं बातचीत किया चाहते हैं, रविवार का दिन था। उसके उत्तर में कप्तान साहब ने लिखा कि मुझे अब अवकाश नहीं। मौलवी साहब को चाहिये कि वह और पण्डित जी परस्पर जिस विषय में बातचीत की आवश्यकता समझें करें, पीछे से भी मैं देख लूंगा। जिस अवस्था में मैं स्वीकार करता हूं कि कप्तान साहब ने यह जो कुछ कहा सच है। तो मेरा यह कहना कि विदित नियम उनके सामने निश्चित हो गये थे और वह निर्णय के साक्षी हैं -कदापि कप्तान साहब के कथन के विरुद्ध नहीं है। प्रत्युत उनके कथन और मेरे कथन में समानता है। मैं यह कदापि नहीं कहता कि कोई नियम केवल मेरे कहने से स्वीकार करने योग्य माना जाये या कप्तान साहब कहें तो प्रमाणित गिना जावे या किसी और सज्जन की सम्मति पर केवल उसका निर्णय हो। प्रत्युत वास्तविकता यह है कि वह नियम जो मैंने पूर्ण प्रयत्न से निश्चित कराये और जिन पर आप बहुत सी बातचीत के पश्चात् सहमत हो गये, मेरी सम्मति में अत्यन्त उचित और आवश्यक थे। और कप्तान साहब और कर्नल साहब ने भी उन्हें ऐसा ही समझा और उनके निश्चित होने से सन्तुष्ट हुए। और अब तक निर्णय के साक्षी हैं। फिर आप यह क्यों लिखते हैं कि हमने माना निर्णय

भी हो गया था। हे महाशय ! यदि निर्णय नहीं हुआ था तो कदापि स्वीकार न कीजिये। मैं तो एक ओर कप्तान साहब और कर्नल साहब जो इस कैम्प में अत्यन्त सम्मानित हैं, उनका तो विश्वास कीजिये।

फिर आप कहते हैं कि "यदि इस प्रकार का खंडन निषिद्ध हो, तो यूं ही सही। आप न्याय से लिखिये कि यह बात कौनसे वेद के अनुसार निषिद्ध है" इत्यादि। निस्सन्देह हमारा यह धार्मिक विश्वास है कि जो बात प्रमाणसिद्ध और उचित न हो, कदापि स्वीकार करने योग्य नहीं हो सकती। और यही कारण है कि जो संख्या के नियत करने में इतना प्रयत्नशील होना पड़ा है। कारण नहीं कहता क्योंकि संख्या का नियत होना अत्यन्त उचित और आवश्यक देखता हूं। और इसके विपरीत होने में बहुत हानि दिखायी देती है। इस बात का विस्तृत ज्ञान इस पत्र के साथ लगे हुए परिशिष्ट[1] से भली-भांति हो जायेगा जो उन कारणों के खंडन में उपस्थित करता हूं। जो आपने संख्या को नियत न करने के विषय में प्रमाणरूप में पेश किये हैं।

आप मेरे यह लिखने की शिकायत करते हैं कि मुझे आपके शब्द-शब्द पर आक्षेप है। मुझे भय है कि आपने कदाचित् इस स्थान पर भी शब्द-शब्द के ऐसे ही अर्थ लिये होंगे जैसे मेरे वेदों के विश्वास के विषय में उलटे अर्थ समझ लिये थे और अभिप्राय समझने से हाथ ही धो बैठे थे। इस वाक्य के अर्थ लगाते समय यह भी ध्यान रखिये कि लेख में ऐसे भी स्थान हुआ करते हैं जहां अवास्तविक अर्थों के मानने की भी आवश्यकता हुआ करती है। यह तो उक्त वाक्य की भाषा से भली-भांति प्रकट है कि वास्तविक अर्थ और अवास्तविक अर्थ में सम्बन्ध कैसा दृढ़ है ? मैं निस्सन्देह वह समस्त आक्षेप जो मुझे उस सम्पूर्ण लेख पर थे, यहां पर प्रकट कर देता। परन्तु चूंकि इस विस्तार से वास्तविक अभिप्राय नष्ट होना प्रतीत हुआ इसलिये उपेक्षा की। अब आगे आपका यह लेख—"कहीं कुछ कह दिया कहीं कुछ" इत्यादि। मनुष्य को चाहिये कि बात को मुख से निकालने से पूर्व सोच लें और शब्दों और लेख को लेखनी से पीछे निकाले। कप्तान साहब

१. परिशिष्ट अप्राप्त। सम्भवतः पूर्व संख्या २२ का विज्ञापन।

के सामने निर्णय और अपने वेदों के विश्वास के विषय में तो मैं विस्तारपूर्वक वर्णन कर चुका। यदि वह वर्णनपत्र आपको यहां तक पढ़ते-पढ़ते चित्त से विस्मृत हो गया हो तो एक बार फिर अध्ययन कर लीजिये।

आप कहते हैं कि कानपुर के विज्ञापन[1] में इक्कीस शास्त्रों पर विश्वास लाये इत्यादि। वाह! समझे तो क्या समझे? तनिक पहले किसी से "शास्त्र" शब्द के अर्थ पूछ लीजिये और फिर आक्षेप करने पर कमर बांधिये। यदि मैं आपसे आपके इस कथन की सत्यता का प्रमाण मांगू तो बताइये आप क्या उत्तर देंगे? श्रीमान् जी! मैंने उस शास्त्रार्थ में पवित्र वेद के इक्कीस विभिन्न व्याख्यानों की सत्यता स्वीकार की है और अब भी उनके ठीक होने का स्वीकार करता हूं। आर्य्यों में शास्त्र केवल छः हैं। उन से और उन व्याख्यानों में कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। ब्राह्मण और मन्त्र भाग बताइये, मैंने उनसे कहां इन्कार किया? प्रमाण-रहित दावे को तो हम मानते नहीं, आप ही इसे कुछ विद्वत्ता का प्रदर्शन समझते होंगे।

"फिर आपका कथन कि पूर्वकाल में तो आप विश्वास-परिवर्तन में भी समर्थ थे, दास के निवेदन पर आपको सामर्थ्य क्यों नहीं? इत्यादि।" क्या तमाशा है कि पहले तो आप यों लिखते हैं कि बाहरी बातें वास्तव में किसी के अधिकार में नहीं। वास्तविक को कोई अवास्तविक नहीं बना सकता और अवास्तविक को वास्तविक नहीं कर सकता। और फिर आप ही हमारी ओर से वकील बन जाते हैं और कहते हैं कि आप बाहरी बातों के परिवर्तन में पूर्वोक्त रूप से समर्थ हैं। हे महाशय! यदि हमारे विश्वास के विषय में हमसे भी पूछ लेते तो क्या पाप होता? वास्तविकता यह है कि वह धार्मिक सिद्धान्त जो विश्वास का आधार हैं, अपने आप में स्थिर हैं, कदापि उनमें परिवर्तन नहीं हो सकता। परन्तु यों कहिये कि जब दो व्यक्ति एक ही धार्मिक विषय का अध्ययन करते हैं और दोनों की विद्यासम्बन्धी योग्यता में अन्तर है। इस कारण एक एक अर्थ समझता है और दूसरा दूसरा अर्थ। वास्तव में उनमें से प्रत्येक यह कभी नहीं जानता कि

---

१. यह विज्ञापन पूर्ण संख्या २२, पृष्ठ ६-१२ पर छपा है।

यह अर्थ वास्तविक अर्थों से विरोध उत्पन्न करते हैं। क्योंकि यह बात उसकी शक्ति से सर्वथा बाहर है। हां, दूसरे के विषय में वह बुद्धि का दोष मानता है। उदाहरणार्थ दृष्टिशक्ति के दोष से यदि किसी को वस्तुयें वास्तविक घर से छोटी दिखायी देने लगे तो वह उसको अपनी दृष्टि का दोष मानता है न कि वस्तु का वास्तव में छोटा होना। दूसरे यह कि मैं यह कभी नहीं कहता कि मैं दो-सौ मनुष्यों से आगे संख्या बढ़ाने की शक्ति नहीं रखता।

मैं केवल यह कहता हूं कि अबतक कोई उचित कारण न हो, मैं इस शक्ति का प्रयोग कदापि उचित नहीं समझता। कप्तान साहब के मकान पर इस विषय में जो कुछ आपने सम्मति प्रकट की थी मैं उसे भली प्रकार समझा। परन्तु खेद है कि उसके उत्तर में जो कुछ मैंने निवेदन किया वह या तो आप सर्वथा भूल गये या प्रथम समझे ही न थे। अब साथ लगे हुए परिशिष्ट से मेरे प्रश्न का व्याख्यासहित प्रदर्शन हो जावेगा। परन्तु मैं नहीं कह सकता कि आप उचित होने पर भी उसको स्वीकार करेंगे। क्योंकि उचित नियमों[1] को स्वीकार करने से बातचीत या शास्त्रार्थ करना ही पड़ेगा। और फिर आपके उस प्रयत्न का नाश हो जावेगा जो आप इस अभिप्राय से कर रहे हैं कि कहीं शास्त्रार्थ तक नौबत न पहुंचे, केवल ऊपरी बातों से ही निर्णय हो जाये। नियमों का स्वीकार न करना ही हमारे शास्त्रार्थ का परिणाम हो, फिर आप नियमों को क्यों मानेंगे ? यह तो भली-भांति विदित है कि यथासामर्थ्य आप बातचीत न करेंगे।

इसके पश्चात् आपका यह कहना "कि यदि मान लो मैं प्रतिज्ञा से फिरता हूं तो आप न्याय के अनुसार शास्त्रार्थ से इन्कार करते हैं।" 'मान लो' का शब्द आपने ठीक नहीं कहा, निश्चित रूप से आप प्रतिज्ञा से फिरते हैं। अब मेरे विषय में जो आप कहते हैं उसके उत्तर में प्रथम तो यह कि मैं शास्त्रार्थ से कब इन्कार करता हूं? हां, शास्त्रार्थ से पूर्व उचित नियमों का निश्चित हो जाना, कि जिनसे प्रबन्ध का ठीक रखना अभीष्ट है, निस्सन्देह चाहता हूं। आप यह जो कहते हैं कि समझौता उसको कहते हैं जिसमें दोनों

१ यह सङ्केत पूर्ण संख्या १९० (पृष्ठ २४९) पर दिए शास्त्रार्थ के नियम की ओर है।

पक्षों के लाभ और हानि की आशंका न हो। यहां किसका लाभ और किसकी हानि है? तो यह कहिये कि शास्त्रार्थ के नियमों से सम्बन्धित करार हो ही नहीं सकता। क्योंकि जो विदित करार की सत्ता का स्वीकार करूं, तो आप पूछेंगे कि इसकी अति आवश्यक स्थापना (पूर्वपक्ष) है? और इसके उत्तर में मुझसे प्रार्थना की जायेगी कि आपको अपनी स्थापना (पूर्वपक्ष) अवश्य रखनी है। पूर्वपक्ष के बिना करार सम्भव न हो सकेगा। आपको उस अवस्था में करार करना पड़ेगा। जब यह कहा जायेगा कि इस करार का पूर्व पक्ष सुप्रबन्ध है। जिसकी पूर्ति को लाभ और अपूर्ति को हानि कहेंगे। राजाओं की आपसी सन्धियां (करार) अथवा क्रय-विक्रय के समझौतों (करारों) में परस्पर किसी बात पर सहमत हो जाने के पश्चात् समझौतों की समाप्ति नहीं हो सकती। करार और प्रकार के भी होते हैं और उनसे फिरना भी अच्छा नहीं समझा जाता। परन्तु यदि आपकी दृष्टि में उक्त दो प्रकार के करारों के अतिरिक्त शेष दूसरे प्रकार के करारों से फिर जाना उचित ही है तब तो बात ही और है—**"चों कुफ्र अज काबा बर खेजद कुजा मानद मुसलमानी।"**[1] आप तनिक न्याय कीजिये, हठ को छोड़िये और उचित नियमों को उचित ही समझिये। और यदि शास्त्रार्थ नहीं करते तो परदे में रहने की अपेक्षा स्पष्ट कह दीजिये। फिर अधिक विषयों में विवाद न किया जावेगा। हमारा समय व्यर्थ नष्ट किया और आपके विश्वासियों की आत्मश्लाघायें पूरी न हो सकीं। आपके विदित नियम पर सहमत न होने के लिये ईश्वर की साक्षी की तो उस समय आवश्यकता हो सकती है जब कप्तान स्टुअर्ट और कर्नल मानमल भी आपकी भांति फिर जायें। अभी गवाह विद्यमान हैं, यों ही निर्णय हो जाना सम्भव है।

वेदों के भाष्यों के विषय में मेरी खोज नयी नहीं है। किसी के विनष्ट हो जाने का शब्द उस समय लागू होता है जब पहले उसके अस्तित्व की सिद्धि हो। उदाहरणार्थ—कुरआन का अनुवाद संस्कृत भाषा में नहीं हुआ है। इस दशा में आप यों नहीं कह सकते

---

१ अर्थात् यदि काबे (उपासनागृह) में ही कुफ्र (खुदा और इस्लाम का न मानना) उठ खड़ा हो तो फिर मुसलमानी कहां रहेगी? अनुवादक

कि किसने कुरआन के संस्कृत अनुवाद को संसार से नष्ट कर दिया ? अकबर और दाराशिकोह के समय में वेद का कहीं भाष्य नहीं हुआ। दाराशिकोह ने उपनिषदों का अनुवाद फारसी में किया और उसका नाम "सिर्रे अकबर" (महान् भेद) रखा। परन्तु इस कथन में आपका क्या अपराध ? आपको यह विदित ही नहीं कि वेद किसे कहते हैं और उपनिषद् किसका नाम है ? उपनिषद् और वेदान्त किसकी रचनायें हैं और वेद से क्या सम्बन्ध रखती हैं ? और वेद से किसका वचन अभिप्रेत है ? हे महाशय ! हम केवल वेद को ही ईश्वरीय वाक्य मानते हैं। अब समाप्ति पर निवेदन है कि न्याय करके निश्चित नियमों से न फिरिये। और अपनी सम्मति से आज ही सूचित कीजिये। और यदि आज अवकाश न मिले तो कल प्रातःकाल तक अवश्य सूचना भेज दीजिये। ताकि समस्त प्रबन्ध शास्त्रार्थ का किया जाये। आगे आपको अधिकार है। परन्तु इस विरोध की अवस्था में अपनी सम्मति से सूचित कीजिये।

१५ अगस्त सन् १८७८।[1]

—:०:—

[पूर्ण संख्या १६४]   पत्र

नं० ३७३

बाबू माधोलालजी आनन्द रहो ![2]

विदित हो कि चिट्ठी आप की आई एक नोट १०) के और २८) के टिकट पाये सो आप के लेखानुसार—

४ सत्यार्थप्रकाश	१०)
३ पं० महायज्ञविधि	१)॥
१ आर्याभिविनय	॥)
	११॥) ।
डाक महसूल	॥)

भेजते हैं। सो जब आप के पास पहुंच लेवें, रसीद भेज दीजिये और आर्यसमाज की उन्नति करते रहो॥

१. भाद्रकृष्ण २, बृहस्पतिवार, सं० १९३५।

२. मूलपत्र आर्यसमाज दानापुर के संग्रह में सुरक्षित है।

अष्टाध्यायी की वृत्ति वनने का आरम्भ हो गया है।

यहां पर सब प्रकार से कुशल है और हम आनन्द में हैं।

रुडकी जिले सहारनपुर हस्ताक्षर
१५ अगस्त ७८[1] दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या १६५] पारसल-सूचना

[बाबू माधोलालजी][2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या १६६] पत्र

ला० मूलराज जी एम० ए० आनन्द रहो।[3]

विदित हो कि चिट्ठी आप को लिखी हुई १४ अगस्त को पहुंची। और एक पारसल डिप्लोमा और दो छपी हुई चिट्ठियों से युक्त पहुंचा। आप को चाहिये कि इन चिट्ठियों के छापने में जो कुछ खर्च हुआ है सो लिख भेजें। क्योंकि खर्च रुडकी वाले देवेंगे और आशा है कि यहां आर्य्यसमाज अवश्य वन जावेगा।

१७ अगस्त ७८[4] रुड़की दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या १६७] पत्र

[मन्त्री आर्यसमाज मुलतान][5]

रुड़की में व्याख्यान नित्य होते हैं। दृढ़ आशा है कि आर्य-समाज अवश्य वन जायेगा। मौलवी मुहम्मद कासिम भी हमसे मुबाहिसा करने के लिये आया है। और १८ ता० निश्चित है। सो अभी कुछ ठीक-ठीक नहीं, जब कुछ होगा सूचना दी जायेगी।

---

१. भाद्र कृष्ण २, बृहस्पतिवार, सं० १९३५।

२. इस पारसल के भेजने की सूचना ऋ० द० के १५ अगस्त सन् १८७८ पूर्णसंख्या १६४ के पत्र में है।

३. प० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित पृ० ८३२,८३३ (हिन्दी स० पृष्ठ ८६६) पर उद्धृत।

४. भाद्र कृष्ण ४, शनिवार सं० १९३५।

५. प० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित पृष्ठ ७५७-७५८ (हिन्दी स० पृष्ठ ७८४) पर उद्धृत है।

हम बहुत आनन्द और कुशल में हैं। सब सभासदों को नमस्ते।

१७ अगस्त १८७८[1]   दयानन्द सरस्वती
रुड़की

—:०:—

[पूर्ण संख्या १९८]   पत्र

[मौलवी मुहम्मद कासिम]

[2]हजारों बार धन्यवाद परमेश्वर का है कि अन्तत. आप शास्त्रार्थसम्बन्धी नियमों पर सहमत तो हुए, परन्तु तो भी इस अवसर पर मुझे इस बात का दु.ख है कि आप इस कृपापत्र में यह नहीं लिखते कि हम शास्त्रार्थ की बातचीत लिखने में सहायक होंगे। इस के विपरीत आप कहते हैं कि तुम को अधिकार है, तुम से लिखा जाये तो लिख लेना। हम अपने भाषण को जब समाप्त कर लेंगे तभी बैठेंगे। इस से तो यह पाया जाता है कि आप हमारे संकल्प के विरुद्ध प्रयत्न करेंगे। यदि कोई मनुष्य धीरे-धीरे भाषण दे तो उसका लिखना कुछ कठिन नहीं। परन्तु यदि कोई इस विचार से बोले कि दूसरा मेरा भाषण न लिख सके, तो वास्तव में दूसरा नहीं लिख सकता। शास्त्रार्थ के लिखे जाने का नियम इतना आवश्यक है कि आप के द्वारा इस को स्वीकार किये बिना शास्त्रार्थ पर कदापि सहमत नहीं। कहने का अभिप्राय यह है कि एक ओर से प्रश्न हो, जब तक कि वह न लिखा जाये दूसरा पक्ष उत्तर न दे। और जब तक उत्तर न लिखा जावे, दूसरा प्रश्न न हो। बोलना ऐसे धीरे से चाहिये कि लिखने में कठिनाई न आवे। प्रश्नोत्तर के लिये अवधि कल शास्त्रार्थ आरम्भ होने से पूर्व निश्चित हो जावेगी। इन बातों में यदि आप

---

१. भाद्र कृष्ण ४, शनिवार, स० १९३५।

२. यह पत्र प० लेखरामकृत जीवनचरित हिन्दी संस्करण पृष्ठ ७८४ पर छपा है। यह पत्र पूर्ण है अथवा कुछ भाग, यह स्पष्ट ज्ञात नहीं होता है। इसके आरम्भ में जीवनचरित में लिखा है इसके (मौलवी मुहम्मद कासिम के १७ अगस्त १८७८ के पत्र के) उत्तर में स्वामी जी ने दो पत्र भेजे। मौलवी साहब का पत्र तीसरे भाग में देखें।

सहमत हों तो इस पत्र लानेवाले के द्वारा अभी सूचित कर।

१७ अगस्त सन् १८७८[1] दयानन्द सरस्वती

— ० —

[पूर्ण संख्या १९९] पत्र

[मौलवी मुहम्मद कासिम]

'आप के उस कृपापत्र के उत्तर में फिर दो चार बातें निवेदन करता हूं ताकि आप को एक बार सोचने और न्याय करने का अवसर मिले। कोई बुद्धिमान् और न्यायप्रिय इस प्रबन्ध के गुणों से इन्कार नहीं कर सकता कि शास्त्रार्थ के समय एक लेखक मेरी ओर से नियत हो जावे और एक आप की ओर से। वह दोनों जो कुछ बातचीत हो लिखते जाय। तत्पश्चात् दोनों लेखों को मिलाकर मेरे आपके हस्ताक्षर हो जायें। ताकि शास्त्रार्थ के पश्चात् दोनों पक्षों के उत्तर और सत्यता में सन्देह न हो। यदि आप उचित नियम को स्वीकार नहीं करते तो आप जानें। इससे तो आप का केवल शास्त्रार्थ न करने का विचार विदित होता है। मैं किसी आवश्यक बात से फिरना कदापि स्वीकार नहीं कर सकता। इस समय आपका दूसरा[3] पत्र आया है। मेरे कुछ मित्रों ने कप्तान साहब को लिखा है[4]। जिस समय परिणाम निकलेगा। आप को सूचित करूंगा।

१७ अगस्त सन् १८७८[1] [दयानन्द सरस्वती]

---

१. भाद्र कृष्ण ४, शनिवार, सं० १९३५।

२. यह पत्र पं० लेखरामकृत जीवनचरित हिन्दी सं० पृष्ठ ७८४ पर छपा है। पत्र पूरा है अथवा कुछ भाग, यह हम नहीं कह सकते।

३. यह पत्र पं० लेखरामकृत जीवनचरित हिन्दी सं० पृष्ठ ७८४ पर 'एक और पत्र' के रूप में छपा है, परन्तु वहां एक ही तारीख के दो पत्र होने से क्रम-भेद हो गया है। हमने तीसरे भाग में कुछ क्रम को ठीक कर दिया है।

४. कप्तान साहब को लिखा गया पत्र और उस का कप्तान साहब की ओर से दिया गया उत्तर पं० लेखरामकृत जीवनचरित हिन्दी सं० पृष्ठ ७८५ पर छपे हैं। हम कप्तान साहब को लिखा पत्र आगे पूर्ण संख्या २०० पर तथा उसका उत्तर पूर्ण संख्या २०० के नीचे टिप्पणी में छाप रहे हैं।

[पूर्ण संख्या २००] पत्र

To Captain W. stuart, R. E. Rurkee.[1]

Sir,

We beg leave to state that some Muhamedans of the station applied to cantonment Magistrate for permission for a religious discussion between Maulvi Muhammad Qasim and Swami Dayanand, the Magistrate said in reply that he coud not

---

१. यह पत्र यद्यपि ऋषि दयानन्द ने नहीं लिखा था। परन्तु उनके अगले पूर्णसंख्या २०१ के पत्र में इस का उल्लेख होने से हम इसे यहां दे रहे हैं। मूल पत्र मय भाषानुवाद के पं० लेखरामकृत जीवनचरित हिन्दी सं० पृष्ठ ७८५ पर छपा है। इस पत्र का जो उत्तर कप्तान स्टुअर्ट ने दिया, उसका निर्देश भी अगले पत्र में होने से उसे हम नीचे दे रहे हैं—

To Pandit Umrao Singh and friends.

Colonel Maunsell has already said that he had no objection to a few people meeting and discussing their affairs in a quiet orderly way like philosophers

I think, therefore, that all concerned, both Muhammadans and Aryans, should adopt his suggestion, and meet as they do at present at the Swami's residence.

I would willingly give my own house, but it would not admit of more than twenty four people attending.

Dated 17th August 1878. (Sd) W Stuart.

[भाषानुवाद]

पण्डित उमरावसिंह और उनके मित्रों के नाम

कर्नल मानसल ने कहा है कि थोड़े मनुष्यों की सभा को, जो फिलास्फरों (दार्शनिकों) के समान अपना काम करना चाहे, कोई रुकावट नहीं है। इसलिये मेरे विचार में मुसलमान और आर्य इस समय उसी मकान पर अपना शास्त्रार्थ करें जहां पर स्वामी जी रहते हैं। मैं अपना मकान भी देने को उद्यत था, परन्तु उसमें चौबीस मनुष्यों से अधिक नहीं आ सकते।

१७ अगस्त सन् १८७८ स्टुअर्ट

यह मूल अंग्रेजी का पत्र तथा भाषानुवाद पं० लेखरामकृत जीवनचरित हिन्दी सं० पृष्ठ ७८५-७८६ पर छपा है।

sanction such a meeting to be held in the civil or cantonment station A similar reply was received by the Muhamedans on their application to Colonel Maunsell The Muhamedans in this case propose to us the holding of the assemblage in the jungle out of the station where all could attend, but we believe that it would be inconvenient, and request the favour or being allowed to hold a meeting in the place where Swami ji presently stops.

We beg to remain,
Sir,
Your's obediently
Umrao singh.

17th August, 1878.

भाषानुवाद

सेवा में श्रीमान् कप्तान स्टुअर्ट साहब, रुड़की ।

निवेदन है कि कुछ मुसलमानों ने श्रीमान् मैजिस्ट्रेट साहब बहादुर छावनी की सेवा में स्वामी दयानन्द और मौलवी मुहम्मद कासिम के मध्य शास्त्रार्थ की आज्ञा प्राप्त करने के लिये प्रार्थनापत्र दिया था, जिस पर उन्होंने हुक्म दिया कि मैं ऐसा शास्त्रार्थ सिविल या छावनी स्टेशन पर होने की आज्ञा नहीं देता, जिसमें मुसलमानों ने जंगल में स्टेशन से बाहर शास्त्रार्थ करने के लिये कहा, जिसको हम लोग पसन्द नहीं करते । आप से प्रार्थना है कि उसी मकान पर शास्त्रार्थ की आज्ञा मिल जाये, जहां कि स्वामी जी इस समय रहते हैं ।

निवेदनकर्ता
उमरावसिंह

१७ अगस्त सन् १८७८

—:o:—

[पूर्ण संख्या २०१] पत्र

इस्लाम मत के नेता मौलवी साहब[1]

परमेश्वर आपका, हमारा और सब का मार्ग प्रदर्शन करे । मैं दुःख से कहता हूं कि ईदगाह के समीप सभा कदाचित् उचित प्रतीत नहीं होती । कारण यह कि मनुष्यों की संख्या नियत किये

१. यह पत्र प० लेखरामकृत जीवनचरित हिन्दी स० पृष्ठ ७८६ पर छपा है ।

बिना वहां पूर्णप्रबन्ध नहीं हो सकता, और आप भी अपने अतिरिक्त औरों की ओर से किसी अवैधानिक कार्यवाही का उत्तरदायित्व नहीं ले सकते। इसलिये मेरा मकान या कप्तान साहब आदि का मकान ही उचित प्रतीत होता है। कप्तान साहब की सेवा में कल हमने इस प्रार्थना पत्र[1] के उपस्थित करने की चर्चा की थी। उसका उत्तर[2] आ गया। दोनों प्रतिलिपियां सेवा में भेजता हूं। अवलोकन करके निर्णय कीजिये।

१८ अगस्त सन् १८७८[3] दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या २०२] पत्र

लाला मूलराज जी एम० ए० आनन्द रहो।[4]

विदित हो कि तारीख १८ अगस्त को बाबू हरिश्चन्द्र और श्याम जी कृष्ण वर्मा हम से मिलने के लिये बम्बई से अलीगढ़ को चले हैं, और २१ वा २२ तारीख तक वे वहां आ पहुंचेंगे और हम भी २२ तारीख को अलीगढ़ पहुंच जावेंगे।

आप को उचित है कि आप भी २२ वा २३ तारीख को अलीगढ़ पहुंच जाय, परन्तु आप अकेले ही चले आना। और स्टेशन के पास ही ठाकुर मुकुन्दसिंह जी का बगीचा पूछ लेना, वहीं पर हम ठहरेंगे। हम बहुत आनन्द में हैं।

और इस चिट्ठी तथा अपने आगमन की प्रसिद्धि न कर[ना]	हस्ताक्षर **दयानन्द सरस्वती** रुड़की, जि० सहारनपुर	२० अग० १८७८[5]

—:o:—

१. यह पत्र उमराव सिंह आदि ने कप्तान स्टुअर्ट को भेजा था। इसे पूर्ण संख्या २००, पृष्ठ २६७ पर देखें।

२. यह उत्तर भी भाषानुवाद सहित हम ने पूर्ण संख्या २०० के नीचे पृष्ठ २६७ पर टिप्पणी में दे दिया है।

३. भाद्र कृष्ण ५, रविवार, सं० १९३५।

४. मूलपत्र रायबहादुर मूलराज जी के पास है।

५. भाद्र कृष्ण ७ मंगलवार, सं० १९३५।

[पूर्ण संख्या २०३] पत्र

नं० ३४०

लाला मूलराजजी एम० ए० आनन्द रहो।[1]

विदित हो कि हम और हरिश्चन्द्र चिन्तामणिजी कल २६ अगस्त को यहां से सवार होकर मेरठ पहुंचेंगे, और बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि, श्यामजी कृष्ण वर्मा और मूलजी ठाकुरशी, २७ अगस्त दिन मंगलवार मेल ट्रेन पर सवार होकर बुधवार २८ ता० को प्रात काल ८ बजे लाहोर आवेंगे। सो आप सब आर्य लोक स्टेशन पर मौजूद रहें, और उनको अच्छी प्रकार खातिर के साथ लेकर अपनी बैठक वा आर्य्यसमाज वा किसी और अच्छे मकान में ठहरा देवें। और हर तरह की खातिर रक्खें।

एक व्याख्यान हरिश्चन्द्र चिन्तामणि देवेंगे। और दो व्याख्यान श्यामजी कृष्ण वर्म्मा देवगे एक अंग्रेजी और एक संस्कृत। फिर वे अमृतस[र] आवेंगे, सो आप सब लोक अच्छी तरह से उनका इस्तकबाल करें। रुड़की में आर्यसमाज बन गया है। हम बहुत आनन्द में हैं। सब सभासदों को नमस्ते॥ हस्ताक्षर

२५ अगस्त १८७८[2] दयानन्द सरस्वती

अलीगढ़

— ० —

[पूर्ण संख्या २०४] पत्र

ला० मूलराज जी एम० ए० आनन्द से रहो।[3]

आपने लिखा था कि ता० २४ को छपी हुई चिट्ठी भेज देंगे। सो अब तक नहीं आई। जो अब तक रवाना न की हो तो मेरठ भेजना।

२७ अगस्त ७८[4] दयानन्द सरस्वती

मेरठ

:०

---

१ मूल पत्र रायबहादुर मूलराज जी के पास है।

२. भाद्र कृष्ण १२ रविवार, सं० १९३५।

३ पं० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित पृ० ८३३ (हिन्दी सं० पृष्ठ ८६६) पर उद्धृत।

४. भाद्रकृष्ण १४, मंगलवार, सं० १९३५।

## [पूर्ण संख्या २०५]		पत्र

न० ३७१		१

पंडित रामनारायणजी[1] आनंद रहो !

विदित हो कि आपकी पहिले चिट्ठी आयी थी[2] जिसमें लिखा था कि लाला भिखीमल ने लाजरस साहब से पुस्तके लेकर प्रयाग को रवाना कर दयी हैं ॥ परंतु दूसरी चिट्ठी उनके पहुंचने की अभी तक नहीं लिखी, और आपने वे पोथी सभाल लीं वा नहीं,

इस पत्र का उत्तर शीघ्र भेजये, और यह भी लिखें कि ब्रजभूषणदास ने क्या उत्तर आपको लिखा है, रुड़की में आर्य्यसमाज बन गया है और आशा है कि यहां मेरठ में भी हो जावेगा, हम बहुत आनंद में हैं ॥

हस्ताक्षर

१ सितम्बर १८७८		दयानन्दसरस्वती

मेरठ

हमने आपके पास भेजने के लिये बाबू श्यामलाल को जो कि पोस्ट आफिस सहारनपुर में नौकर हैं १००) दे दिये हैं आप लिखये कि आप के पास पहुंचे वा नहीं ॥

:o:

## [पूर्ण संख्या २०६]		पत्र

न० ३७७

पण्डित रामाधार बाजपेई जी आनन्द रहो ![3]

विदित हो कि आपको लिखते हैं कि आप के पास जो रुपया जमा है वा किसी ग्राहक से वसूल हो और पुस्तकादि के मूल्य की बाबत जो हो और सब ग्राहकों से रुपया वसूल करके मेरठ के पते से हमारे पास भेज दो, क्योंकि हम को रुपये की बहुत जरूरत है और इसी कारण आपको लिखा है कि जल्दी कुल रुपया हमारे

---

१. यह पण्डित रामनारायण को भेजे गए पत्र की प्रतिलिपि है, जो परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान है।

२. यह पत्र हमें प्राप्त नहीं हुआ।

३. मूलपत्र आर्यसमाज लखनऊ के संग्रह में सुरक्षित है।

पास भेज दो और यह भी लिखो कि स्वामी गंगेश[1] आज कल कहां हैं। उत्तर शीघ्र भेज दीजिये ॥

	हस्ताक्षर
२ सितम्बर १८७८[2]	दयानन्द सरस्वती
	मेरठ

:o:

[पूर्ण संख्या २०७] पत्र

मौलवी अब्दुल्ला साहिब सलामत[3]

दरजवाब[4] आपके लिखा जाता है। बेहतर है कि आप अपनी हस्बमन्शा बजरिये मुअज़िज़ रईसान शहर और सदर के सिलसिला जुम्बानी कीजिये। मुझको कुछ उजर नहीं। और जुमला मुआमलात तहरीरी होने चाहियें न कि तकरीरी। फक्त ॥

ता० ७ सितम्बर सन् १८७८[5] दयानन्द सरस्वती

o

[पूर्ण संख्या २०८] पत्र

मौलवी अब्दुल्ला साहब सलामत।[6]

दर जवाब आप के लिखा जाता है। बेहतर है कि आप हस्ब मन्शा अपनी बजरिये मुअज़िज़ रईसान शहर और सदर के सिलसिला जुम्बानी कीजिये। मुझ को कोई उजर नहीं। और जुमला मुआमलात तहरीरी होनी चाहिये न कि तकरीरी। फक्त।[7]

ता० ७ सितम्बर १८७८ दयानन्द सरस्वती

o:—

---

१. गंगेश स्वामी के विषय में पूर्व पृष्ठ ९३, टि० ४ देखें।

२. भाद्र शु० ६ सोमवार, सं० १९३५।

३ पं० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित पृ० ३९६ (हिन्दी सं० पृ० ४३६) से उद्धृत किया।

४ यह पत्र मौलवी अब्दुल्ला के जिस पत्र के उत्तर में लिखा गया है, उसे तीसरे भाग में देखें।

५. भाद्र शु० ११, शनिवार सं० १९३५।

६. यह पत्र मौलवी अब्दुल्ला के पत्र के उत्तर में लिखा गया था। यह पत्र पं० लेखरामकृत जीवनचरित हिन्दी सं० पृष्ठ ४३६ पर छपा है।

७ इस पत्र द्वारा मौलवी साहब के जिस पत्र का उत्तर स्वामी जी

[पूर्ण संख्या २०९] पत्र

लाला मूलराज जी एम० ए० आनन्द रहो !

विदित हो कि पण्डित श्यामजी कृष्ण वर्म्मा ९ सि० को यहां से रवाना होकर लाहौर गये हैं सो पहुंचे होंगे। सो उन को अपने मकान पर वा जहां पर आराम हो ठहरा देना, और ये संस्कृत तथा इङ्गलेण्ड भाषा में व्याख्यान देवेंगे। बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि एक जरूरी कार्य्य के कारण से मुम्बई को वापिस चले गये हैं। यहां पर नित्य व्याख्यान होता है और हम बहुत आनन्द में हैं। सब सभासदों को नमस्ते। शायद समाज भी हो जावेगा ॥

हस्ताक्षर
११ सि० १८७८[1] | दयानन्द सरस्वती
मेरठ

—॰—

[पूर्ण संख्या २१०] पत्र

४४६

पंडित रामनारायणजी[2] आनंद रहो

आगे पत्र आपका आया[3] सब हाल मालूम हुआ,

ब्रजभूषणदास कठिनता से पुस्तकें देने पर प्रसन्न हुए हैं और पुस्तकों का निकलना भी वहां से कठिन था सो अब जैसे हो पुस्तकें निकाल लें जो लाला भिखमलजी को अवकाश न हो तो किसी और के पास पुस्तकें रखवा दो कि वे आपके पास भेज देवें।

क्योंकि जैसे तैसे वे पुस्तक देने पर राजी हुए हैं सो अब देर

ने दिया है उसे तृतीय भाग में देखें। ऋ० द० के इस पत्र का जो उत्तर मौलवी अब्दुल्ला ने दिया, उसका अभिप्राय प० लेखरामजी कृत जीवन चरित, हिन्दी सं० पृष्ठ ४३६ पर इस प्रकार दिया है "शास्त्रार्थ मौखिक उचित है, लिखित नहीं होना चाहिये।" इसे तीसरे भाग में देखें।

१. माघ शु० १५ बुधवार, सं० १९३५।

२. यह पण्डित रामनारायण को भेजे गये पत्र की प्रतिलिपि है, जो परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान है।

३. यह पत्र हमें प्राप्त नहीं हुआ।

लेने न कीजये और जब वे पुस्तकें दे देवे पत्र द्वारा हमको विदित कर दीजये, हम बहुत प्रसन्न हैं ॥

हस्ताक्षर

११ सि० १८७८ दयानन्दसरस्वती

मेरठ

और शनि को आप जाकर व्रजभू० से पुस्तकें लेकर रविवार को चले आवें वा किसी और को भेज दो जहां वह लेकर चले आवें और पुस्तकों का पत्र तुमको भेज चुके और जो आने जाने में व्यय हो हमारे हिसाब में लगा लेना ॥

—:o:—

[पूर्ण संख्या २११] धनप्राप्ति की रसीद

[बाबू माधोलाल जी दानापुर]

१०।=)॥ दस रुपये साढ़े छः आने प्राप्त हुए ।[1]

१३ सितम्बर १८७८ दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या २१२] पत्र-सारांश

[बा० हरिश्चन्द्र चिन्तामणि, बम्बई]

दो ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका बाबू माधोलाल के पास दानापुर भेज दो ।[2]

१३ सितम्बर १८७८ दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या २१३] पत्र

४६५

बाबू माधोलाल जी आनन्द रहो ![3]

विदित हो कि पत्र आपका १०।=)॥ के साथ पहुंचा सो रसीद भेजते हैं। और मुम्बई को लिख दिया है, वहां से १०-११

१ इस की सूचना अगले पूर्णसंख्या २१३ के पत्र में है।

२. यह पत्र सारांश अगले पूर्णसंख्या २१३ के पत्र के आधार पर बनाया है।

३. मूलपत्र आर्यसमाज दानापुर के संग्रह में सुरक्षित है। इस की प्रतिकृति श्रीमद्दयानन्द चित्रावली में है।

दिन में २ वेदभाष्यभूमिका आप के पास पहुंचेंगी।

हम आज कल मेरठ में हैं। यहां से दिल्ली की ओर का विचार है। जब पूर्व को बढ़ेंगे आप को लिख भेजेंगे। यहां पर भी व्याख्यान नित्य होता है, आशा है कि समाज भी हो जावेगा। हम बहुत आनन्द में हैं। सब सभासदों को नमस्ते॥

मेरठ   हस्ताक्षर
१३ सि० १८७८[1]   दयानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या २१४]   शास्त्रार्थ के नियम[2]

१—चूंकि सबसे पहले सभा के प्रबन्धकों का निश्चित किया जाना आवश्यक है इसलिये हमारी दृष्टि में उचित है कि निम्नलिखित सज्जन दोनों पक्षों की ओर से प्रबन्धक नियत किये जायें—

(स्वीकृति के आधीन)

१—पण्डित गंगाराम साहब	१—ला० किशनसहाय साहब, रईस।
२ ला० रामशरणदास साहब, रईस	२—बख्तावरसिंह साहब, रईस।
३—राय गणेशीलाल साहब प्रबन्धक छापाखाना 'जल्वये तूर'	३—हकीमबलदेवसिंह साहब
४—बाबू छेदीलाल साहब गुमास्ता कमसिरियट।	४—ला० अम्बाप्रसाद साहब, वकील।

१. आश्विन कृष्ण २, शुक्रवार सं० १९३५।

२. ये शास्त्रार्थ के नियम प० लेखराम कृत जी० च० हिन्दी स० पृष्ठ ४४०-४४३ पर छपे हैं। प० देवेन्द्रनाथ संकलित जी० च० के पृष्ठ ४९८-५०० तक छपे हैं। उनमें कुछ सामान्य सा अन्तर है।

इन नियमों को लिखवाने का निर्देश ऋ० द० के १८ सितम्बर १८७८ ई० के पत्र (पूर्णसंख्या २१५) में मिलता है। इसलिये हम इन्हें यहा छाप रहे हैं। प्रतिपक्ष की ओर से इन नियमों के विपरीत नियम प० लेखराम-कृत जी० च० पृष्ठ ४४३-४४५ में देखें।

५—पण्डित मेदनलाल साहब, अध्यापक गवर्नमेण्ट स्कूल।	५—ला० तुलसीधर साहब, वकील।
६—पण्डित जगन्नाथ साहब,	६—लाला हुलासराय साहब साहूकार।

२—इन सज्जनों में से कोई एक सज्जन और जहां तक सम्भव हो, श्रीमान् सब जज साहब बहादुर प्रबन्ध समिति के सभापति नियत किये जायें।

३—प्रबन्धकों के अतिरिक्त, सभा में उपस्थित लोगों की संख्या दोनों ओर से पचास-पचास से कम और दो-दो सौ से अधिक न हो तो अच्छा है।

४—सभा में आने वाले लोगों की जितनी संख्या निश्चित की जावे उतने ही टिकट छापकर दोनों पक्षों के प्रबन्धकों को आधे-आधे बांट दिये जावें।

५—दोनों पक्ष अपनी-अपनी ओर के लोगों को नियम में रखें और उनके सब प्रकार से उत्तरदायी हों।

६—दोनों ओर से योग्य पंडितों की संख्या दस-दस से अधिक न हो; कम रखने का अधिकार है।

७—दोनों ओर से केवल एक-एक ही पंडित सभा में बातचीत करे अर्थात् एक ओर से स्वामी दयानन्द सरस्वती और दूसरी ओर से पंडित श्री गोपाल।

८—इस सभा में वेदों के प्रमाण से ही प्रत्येक बात का खण्डन और मण्डन किया जावेगा।

९—वेद के मन्त्रों के अर्थ के निश्चय के लिये ब्रह्मा जी से लेकर जैमिनी मुनि जी तक के ग्रन्थों की, जिनको दोनों पक्ष स्वीकार करते हैं—साक्षी देनी होगी। इन ग्रन्थों का विवरण निम्नलिखित है:

१—ऐतरेय, २—शतपथ, ३—साम, ४—गोपथ, ५—शिक्षा, ६—कल्प, ७—व्याकरण, ८—निरुक्त-निघण्टु, ९—छन्द, १०—ज्योतिष, ११—पूर्व मीमांसा, १२—वैशेषिक, १३—न्याय, १४—योग, १५—सांख्य, १६—वेदान्त शास्त्र, १७—आयुर्वेद, १८—धनुर्वेद, १९—गान्धर्ववेद, २०—अर्थवेद आदि।

१०—विदित हो कि (उपर्युक्त) ऐतरेय ब्राह्मण से लेकर अर्थवेद आदि तक ऋषियों और मुनियों की ही साक्षी और प्रमाण

होगा और यदि इन में भी कोई वाक्य वेदविरुद्ध हो तो दोनों पक्ष उसको स्वीकार न करेंगे।

११ उभयपक्षों को वेदों और प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों, सृष्टि-क्रम और सत्यधर्म से युक्त बातचीत करनी और माननी होगी।

१२ इस सभा में जो व्यक्ति किसी का पक्षपात और रियायत करेगा उसको सहस्र ब्रह्महत्या का पाप होगा।

१३—चूंकि बहुत बड़ी बात केवल एक पाषाण आदि की मूर्तियों का पूजन ही है, इसलिये इस सभा में मूर्तिपूजन का खण्डन और मण्डन होगा और यदि वेदों की रीति से पण्डित जी पाषाण आदि की मूर्तियों के पूजन का मण्डन कर दें तो पण्डित जी की अन्य सब बातें भी सत्य समझी जावेंगी और स्वामी जी उसी समय से मूर्तिपूजन का खण्डन करना छोड़कर मूर्तिपूजन करने लगेंगे और जो स्वामी जी वेदों के प्रमाण से पाषाण आदि की मूर्तियों के पूजन का खण्डन कर दें तो स्वामी जी की अन्य बातें भी सत्य समझी जावेंगी और पण्डित जी उसी समय से पाषाण आदि की मूर्तियों का पूजन छोड़कर मूर्तिपूजा का खण्डन आरम्भ कर देंगे। ऐसा ही दोनों पक्षों को स्वीकार भी करना होगा।

१४—प्रश्न और उत्तर दोनों ओर से लिखित होने चाहिये अर्थात् प्रत्येक प्रश्न मौखिक किया जावे और तत्काल लिख लिया जावे। यही नहीं, जहां तक सम्भव हो वक्ता का एक-एक शब्द लिखा जावे।

प्रत्येक प्रश्न के लिए पांच मिनट और १५ मिनट प्रत्येक उत्तर के लिये नियत हों और नियत समय में कमी करने का वक्ता को अधिकार होगा परन्तु अधिक करने के विषय में नियन्त्रण में रहना होगा।

१५—सभा में स्वामी जी, पण्डित जी तथा अन्य सज्जनों की ओर से परस्पर कोई कठोर भाषण न हो प्रत्युत अत्यन्त सभ्यता और कोमलता से सत्यासत्य का निश्चय करें।

१६ सभा का समय ६ बजे शाम से ९ बजे रात तक रहे तो उत्तम है।

१७ प्रश्नों और उत्तरों को लिखने के लिये तीन लेखक नियुक्त होने चाहिये और प्रत्येक लेख पर सभा में परस्पर मिलाने

के पश्चात् दोनों पक्षों के हस्ताक्षर प्रतिदिन हों और उस लेख की एक एक प्रति प्रत्येक पक्ष को दे दी जावे और एक प्रति बक्स में दोनों पक्षों और सभापति के ताले में बन्द होकर सभापति के सुपुर्द कर दी जावे ताकि लेख में कुछ न्यूनता अथवा अधिकता न होने पावे और आवश्यकता के समय काम आवे।

१८—सभा का मकान समस्त प्रबन्धकों की सम्मति से निश्चित होगा।

१९—जम्मू और काशी जी आदि स्थानों की सम्मति पर इस सभा के निर्णय का निश्चय न होना चाहिये क्योंकि उक्त स्थान मूर्तिपूजन के घर हैं और वहां पंडितों से इस विषय में शास्त्रार्थ भी हो चुका है। इसलिये वेद और उपर्युक्त शास्त्र आदि जिनमें प्रत्येक बात को भली प्रकार स्पष्ट किया हुआ है—मध्यस्थ और साक्षी होने को पर्याप्त हैं। यदि दूसरे पक्ष को कुछ सन्देह हो तो निस्सन्देह उसको यह अधिकार है कि आज १७ तारीख सन् १८७८ से दो दिन के भीतर उपर्युक्त स्थानों से या और किसी स्थान से जो पंडित उनकी सम्मति में सर्वोत्तम और अच्छे हों—उनसे तार द्वारा आने-जाने के विषय में बातचीत करके निश्चय कर लें अथवा उनके आने का प्रबन्ध कर लें और आज से ६ दिन के भीतर अर्थात् २२ सितम्बर रविवार तक उनको यहां बुला लेवें। यदि दूसरे पक्ष की ओर से इस अवधि में उचित प्रबन्ध न हो तो अथवा इस के विरुद्ध आचरण हो तो उस पक्ष की समस्त बातें कच्ची और निर्मूल समझी जायेंगी, और यदि स्वामी जी इस बीच में कहीं चले जावें अथवा इस लेख के अनुसार न चलें तो उनकी बात भी कच्ची और निर्मूल समझी जायेगी।

२०—दोनों पक्षों के वे सब पुस्तकें सभा में साथ लानी चाहियें जिनका वे शास्त्रार्थ के समय प्रमाण दें। बिना मूल पुस्तक के कोई मौखिक साक्षी किसी भी पक्ष की स्वीकार न होगा। इति

लिखित १७ सितम्बर सन् १८७८।

—:o:—

[पूर्ण संख्या २१५]　　　**पत्र**

लाला किशनसहाय जी साहब आनन्द रहिये ![1]

जो के कल हस्बुलईमा आपके पं० मानसिंह और नीज़ दोगर साहिबान ने सभा के नियम लिखवा दिये हैं[2]। हम उनके बखूबी पाबन्द हैं। अगर आप को फिलहकीकत और बदिल निश्चय करना सत्य और असत्य का मंजूर है तो आप उन पर गौर कीजिये और अमल फरमाइये। वरना अमूरात मुनासिब में तहरीर और तकरीर खिलाफ मरजी के नतायज भी बहरंग बेरूही होवेंगे। फक्त।

१८ सितम्बर १८७८[3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या २१६]　　　**पत्र-सारांश**

[ला० किशनसहाय··· ··· ······　·]

[4]आप को केवल उन पण्डितों के कहने पर जो वेदों से परिचित नहीं, ऐसा लिखना योग्य नहीं। अब उत्तम यही है कि यदि आप उचित समझें कि मैं अपने [दो][5] विद्यार्थियों को आप के यहां सभा में भेज दूं और वे आपकी सम्मति से आपके पण्डित लोगों से वेद के विषय में कुछ पूछें जिससे आप को पण्डितों की वास्तविकता विदित हो जायेगी और यदि आप को यह स्वीकार न हो तो आप

---

१. पं० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित पृष्ठ ४०४ (हिन्दी संस्करण पृष्ठ ४४५) पर उद्धृत है।

२. पत्र में निर्दिष्ट "सभा के नियम" इसे ऊपर छपा पूर्ण संख्या २१४ का "शास्त्रार्थ के नियम" समझें।

३. आश्विन कृष्ण ६, बुधवार सं० १९३५।

४. यह पत्र-सारांश पं० लेखरामकृत जीवनचरित हिन्दी सं० पृ० ४४५ पर छपा है। लगभग ऐसा ही सारांश पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ५०१ पर भी छपा है। इस पत्र-सारांश से पूर्व पं० लेखराम ने लिखा है—[ला० किशन सहाय के पत्र के] उत्तर में स्वामीजी ने एक लम्बा चौड़ा पत्र विशेषरूप से अपने निजी हस्ताक्षर से लाला जी के पास भेजा, जिस का सार यह था ··· ·········।

५. यह कोष्ठगत पद पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जी० च० के पाठ में है।

कृपा करके मेरे निवास स्थान पर या बाबू छेदीलाल के मकान पर पण्डितों सहित पधारें और समस्त सन्देह निवृत्त करलें ।[1]

[दयानन्द सरस्वती]

—:०:—

[पूर्ण संख्या २१७] पत्रांश

[श्याम जी कृष्ण वर्मा, बम्बई]

वल्लभदास (लाहोर) को पुस्तक भेजने के विषय में १५ सितम्बर १८७८ का पत्र भेज रहा हूं।[2]

दयानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या २१८] पत्र-टिप्पणी[3]

इन पुस्तकों में से शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण को छोड़के और सब पुस्तक आधे हमारे पास भेजो और आधे वल्लभदास जी के पास भेजिये।

द: बलदेवप्रसाद [दयानन्द सरस्वती]

—:०:—

[पूर्ण संख्या २१९] पत्र

४८१ १

पंडित रामनारायण जी[5] आनंद रहो !

---

१. यह पत्र संभवत: १६ सि० १८७८ को भेजा था । इस पत्र के उत्तर में लिखा गया ला० किशनसहाय का पत्र तीसरे भाग में देखें ।

२. आश्विन कृष्ण ६, बुधवार सं० १९३५ ।

३. इस के लिये अगली पत्र टिप्पणी, पूर्णसंख्या २१८ तथा उसकी टिप्पणी देखें ।

४. यह टिप्पणी श्री स्वामी जी महाराज के नाम १५ सितम्बर १८७८ के वल्लभदास जी (लाहौर) के पत्र के ऊपर ही ऋषि दयानन्द ने लिख कर, उसे श्याम जी कृष्ण वर्मा के पास बम्बई भेजा था। [ऊपर की पत्रटिप्पणी और यह नीचे की टिप्पणी मेरी पत्र और विज्ञापन पुस्तक पर लिखी हुई है । इसका मूल सम्प्रति मुझे स्मरण नहीं आ रहा है ।]

५. यह पण्डित रामनारायण को भेजे गए पत्र की प्रतिलिपि है, जो परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान है ।

विदित हो कि इससे पहिले एक पत्र आपके पास भेजा गया था[1], सो अब तक उसका उत्तर नहीं मिला ॥ इसलिये आपको फिर लिखते हैं कि आप व्रजभूषणदास जी से पोथी मंगा लीजिये और सूचीपत्र से जो पुस्तकों का आपके पास पहिले भेजा गया है मिलाकर हमको पत्र द्वारा विदित कर दीजिये ॥ और हम को अंग्रेजी, नागरी, और उरदू का जानने वाला एक मुनशी चाहिये है जो मुंबई में जाकर वेदभाष्य ठीक ठीक सब ग्राहकों के पास भेजा करे और प्रूफ भी शोधा करे ॥ तथा जो कहीं से चिट्ठी पत्र आवे उसका उत्तर भी ठीक ठीक लिख दिया करे, मासिक उसका २०) से ३०) तक देवेंगे, परन्तु वह मोतबिर होना चाहिये और किसी अच्छे प्रतिष्ठित मनुष्य की जान पहिचान भी हो, क्योंकि कुछ थोड़ा बहुत रुपया भी उसकी सपुर्दगी में रहेगा, और शीघ्र उत्तर भेजियेगा ॥ हम बहुत आनंद में हैं।

हस्ताक्षर
दयानन्दसरस्वती
मेरठ

१८ सि० १८७८

—:०:—

[पूर्ण संख्या २२०] विज्ञापन[2]

विदित हो कि सत्यार्थप्रकाश[3] के १०७ पृष्ठ पंक्ति १४ में रोहिणी बलदेव की स्त्री थी, इसके स्थान में रोहिणी बलदेव की माता और वसुदेव की स्त्री थी ऐसा जानें।

—:०:—

---

१. यह किस तारीख के पत्र के लिये लिखा है, यह ज्ञातव्य है। सम्भव है ता० १ सितम्बर १८७८ के पूर्ण संख्या २०५ के पत्र की ओर हो।

२. यह विज्ञापन ऋग्वेद और यजुर्वेदभाष्य के तीसरे अङ्क पर छपा था। यह सम्भवत: आश्विन सं० १९३५ के आरम्भ में लिखा गया था।

३. अर्थात् सं० १९३२ (सन् १८७५) के छपे सत्यार्थप्रकाश के।